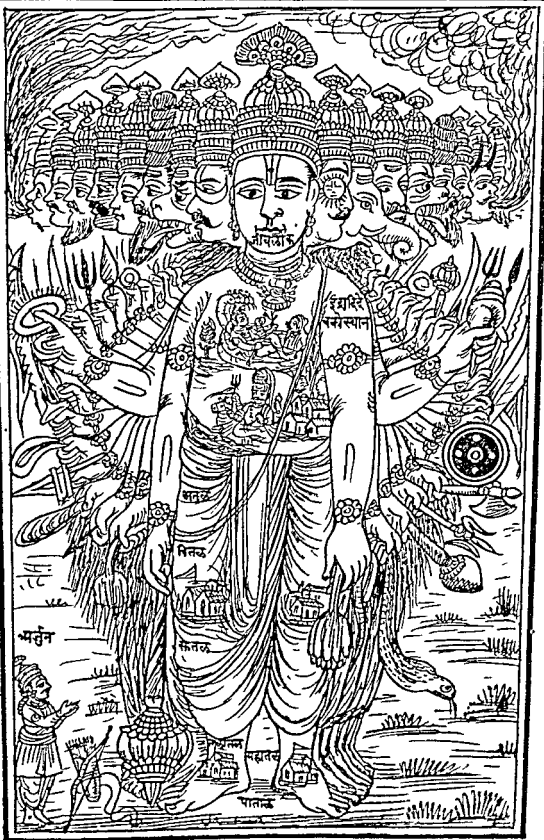




॥ अथ श्रीभगवद्गीतार्थवाङ्मयी मूर्तिः ॥ ॥ श्लोकः ॥ चक्राणिपंचजा
नीहिपंचाः ध्यायाननुक्रमात् ॥ दशाध्यायासुजाश्रैकसुदरं द्वीपदांबुजे ॥
॥ १ ॥ एवमष्टादशाः ध्यायी वाङ्मयी मूर्तिरैश्वरी ॥ जानीहिज्ञानमात्रेण
महापातकनाशिनी ॥ ॥ श्रीरुघ्वाजयति ॥ ॥ ६ ॥ ॥



भक्तुं

भक्त

नित्य

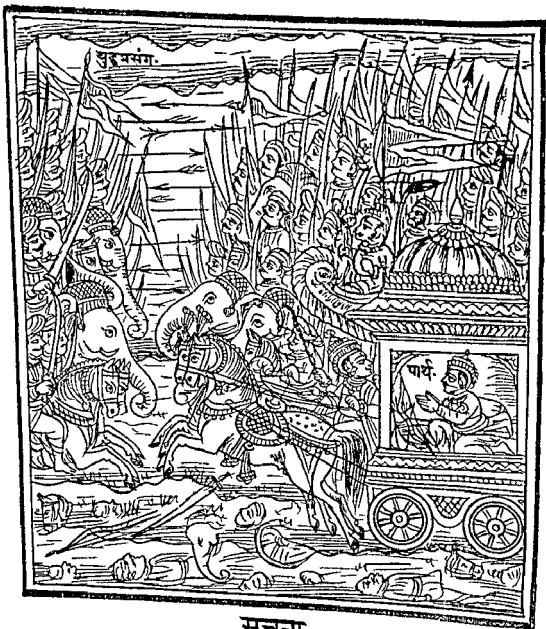
सिद्धि

इंद्राक्षरे
परमस्थान

जीवन्मोक्ष

पातक

महाव



सूचना.

इस टीकामें प्रथम मूल श्लोक छिरे जाते हैं वैसे कि जहां तक क्रियापदकी संगति मिलती है वहां तक मूल श्लोक लिखिके फिरे अन्वय लिखते हैं- उसके नीचे अन्वयके क्रमसें भाषा टीका छिरे जाते हैं. कारणकि नवीन विद्यार्थियों को इसमें परिश्रम न होयगा और पदपदके अर्थ जाननेमें भी सुगमता होयगी इस वास्ते दीनचत्सन् इर्षा रहित सज्जन लोगोको इसपर विशेष निगाह रखना चाहिये यही टीका कर्ता की प्रार्थना है.

॥ श्रीर्जयति ॥

श्रीमद्भगवद्गीता वाक्यार्थबोधि

भाषा टीका.



अथ मंगलम् ॥ ॥ शुक्लांबरधरंविष्णुंशशिवर्णंचतु
र्भुजम् ॥ प्रसन्नवदनंध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ १ ॥
नारायणंतमस्कृत्यनरंचैवनरोत्तमम् ॥ देवींसरस्वतींचै
वततो जयमुदीरयेत् ॥ २ ॥ व्यासंवसिष्ठनप्तारंशक्तेःपौ
त्रमकल्मषम् ॥ पराशरात्मजंवंदेशुकतातंतपोनिधिम्
॥ ३ ॥ व्यासायविष्णुरूपायव्यासरूपायविष्णवे ॥ न
मोवैब्रह्मविधयेवासिष्ठायनमोनमः ॥ ४ ॥ अचतुर्वदनो
ब्रह्माद्विबाहुरपरोहरिः ॥ अफाललोचनःशंभुर्भगवान्वा
दरायणिः ॥ ५ ॥ ॥ इति मंगलम् ॥ ॥ ॥
श्रीगणेशाय नमः ॥ ओं नमो भगवते वासुदेवाय ॥ जन्माद्यस्य
यतो देवं तं न त्वास्वहृदि स्थितम् ॥ वाक्यार्थबोधिर्नीरम्यांगीता
व्याख्यां करोम्यहम् ॥ ५ ॥ श्रीश्रीनिवासतातार्यशिष्यो ब्रह्मकुलो
द्भवः ॥ रघुनाथप्रसादोऽहं सुकुलो हरिसेवकः ॥ २॥ उपोद्घातः ॥
प्रथम श्रीमद्भगवद्गीताके प्रगट होनेका कारण कहता हौं कि,
राजा पांडु औं राजा धृतराष्ट्र ये दोनौ वैमात्र भाई थे, जिनमें
राजा पांडुके दोस्त्री थीं, पहिलि कुंती, दूसरी माद्री, जिनमे कुंतीके
तीन पुत्र थे युधिष्ठिर, भीम औं अर्जुन औं माद्रीके दो पुत्र नकुल
औं सहदेव. औं राजा धृतराष्ट्रके सौं पुत्र थे, जिनमे दुर्योधन ज्ये-

२ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

पुत्र था, परंतु राजा धृतराष्ट्र जन्मांध धे; इसवास्ते राज्यकार्य सर्व दुर्योधनके स्वाधीनथा, जब राजा युधिष्ठिरको चौपडखेलाई छल करिके राज्य लैलिया औ वनवास दिया, जब ये वनवाससे श्राये श्री राज्य मागा तब इन्होंने राज्य न दिया, इसलिये युद्धके वास्ते कुरुक्षेत्रको चलनेलगे; तब धृतराष्ट्रनेभी तयारीकी. जब व्यासजीने कहा कि, तुम नेत्रविना युद्धमे क्या करेंगे? तब धृतराष्ट्रबोले की, हम युद्धका वृत्तांतही सुनाकरेंगे, सो सुनिके व्यासजीने कहा की, यह संजय तुम्हारा सारथी हमारा शिष्य है, इसको हस्तवरदान देते हैं सो इसको इहांही बैठे सर्व वृत्तांत दृष्टिगोचर होयगा, सो सुनिके राजा धृतराष्ट्र हस्तिनापुरहीमे रहे और सर्व कुरुक्षेत्रमे जायके युद्धका प्रारंभ किया तहां. अर्जुनने देखाकि, दोनौ सेनौंमे हमारेही सुहृद, मित्र औ कुटुंबी हैं, इनको हम कैसे मारें? ऐसा समुझिके धनुषवान डारि दिया औ रथमे पश्चाद्भागमे जा बैठा, जब श्रीकृष्णने देखा कि, इस अर्जुनने अपना क्षत्रियधर्म त्यागी दिया औ धर्मत्यागनेसे इसका कल्याण न होयगा. इसवास्ते, इसको तत्वज्ञानका उपदेश करना चाहि ये, जब यह स्वधर्ममे प्रवर्त होयगा, ऐसा विचारिके गीताशास्त्र उपदेश किया, सोई गीता श्रीमन्महाभारतमे वेदव्यासजीने युक्त किया, तिसमे सर्व श्लोक श्रीकृष्णमुखारविंदनिर्मित हैं औ कुछ श्लोक प्रबंध रचनाके वास्ते व्यासजीनेभी निर्माण किये हैं, तहां प्रथम श्लोक धृतराष्ट्रके प्रश्नका है, धृतराष्ट्र संजयसे पूंछा है-

मूलम्-

धृतराष्ट्र उवाच ॥ धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ॥ मामकाः पांडवाश्चैव किमकुर्वत संजय ॥ १ ॥

अन्वयः

हेसंजय, मामकाः च पांडवाः युयुत्सवः संतः धर्मक्षेत्रे
कुरुक्षेत्रे समवेताः एव किमकुर्वत ॥ १ ॥

टीका.

धृतराष्ट्र संजयको पूछते भये कि, हे संजय, धर्मभूमिकु-
रुक्षेत्रमें हमारे पुत्र और पांडुके पुत्र युद्धकी इच्छा करिके येकठे
भये हैं, ये क्या करते हैं; इस श्लोकमें धर्मक्षेत्र ऐसा वाक्य
कहा, इसका तात्पर्य कि, कुरुक्षेत्र धर्मक्षेत्र है, इसमें धर्महीसे
जय है और हमारे पुत्र अधर्मी है इनका पराजय जरूर
होयगा, ऐसे भयसे धृतराष्ट्र संजयसे पूछते भये. ॥ १ ॥

मूलम्.

संजय उ० ॥ दृष्ट्वा तु पांडवानीकं व्यूढं दुर्योधनस्तदा
॥ आचार्यमुपसंगम्य राजा वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

अन्वयः

संजयः उवाच ॥ राजा दुर्योधनः व्यूढं पांडवानीकं दृष्ट्वा
तदा आश्चर्यं उपसंगम्य वचनं अब्रवीत् ॥ २ ॥

टीका.

संजय धृतराष्ट्रको कहते भये कि, राजा दुर्योधन व्यूहरच-
नायुक्त पांडवनकी सेनाको देखिके तिसकालमें द्रोणाचार्यके
नजीक जायके वचन बोले. ॥ २ ॥

मूलम्.

पश्यैतां पांडुपुत्राणामाचार्यमहतीं चमूं ॥ व्यू-
ढां द्रुपदपुत्रेण तव शिष्येण धीमता ॥ ३ ॥

अन्वयः

हे आचार्य, धीमता तव शिष्येण द्रुपदपुत्रेण व्यूढां पांडु-
पुत्राणां एतां महतीं चमूं पश्य ॥ ३ ॥

टीका.

दुर्योधन द्रोणाचार्यसे कहते हैं कि, हे आचार्य, बुद्धिमान
श्री आपका शिष्य ऐसा जो द्रुपदराजाका पुत्र घृष्टकेतु
नसे व्यूहरचना करिके सजा है, ऐसी जो पांडुपुत्रोंकी यह
श्रेष्ठ सेना इसको तुम देखो. ॥ ३ ॥

मूलम्.

अत्रशूरामहेष्वासाभीमार्जुनसमायुधि ॥ युयु
धानोविराटश्चद्रुपदश्चमहारथः ॥ ४ ॥ घृष्टकेतु
श्चेकितानःकाशिराजश्चवीर्यवान् ॥ पुरुजित्कुं
त्तिभोजश्चशैव्यश्चनरपुंगवः ॥ ५ ॥ युधामन्यु
श्चविक्रांतउत्तमौजाश्चवीर्यवान् ॥ सौभद्रोद्रौप
देयाश्चसर्वेएवमहारथाः ॥ ६ ॥

अन्वयः

अत्र अस्यां सेनायां युधि संग्रामे भीमार्जुनसमाः महे
ष्वासाः संति ते इमे युयुधानः विराटः महारथः द्रुपदः
॥ ४ ॥ घृष्टकेतुः चेकितानः च वीर्यवान् काशिराजः
पुरुजित् कुंतिभोजः च नरपुंगवः शैव्यः ॥ ५ ॥ विक्रांतः
च द्रौपदेयाः एते सर्वे महारथाः एव ॥ ६ ॥

टीका.

इस सेनामे जे शूर वीर हैं वे संग्राम करनेमेभी औ अर्जु-

नके समान बडे धनुषधारी हैं ते ये युयुधान, विराट औ महारथ
दुपद ॥४॥ धृष्टकेतु, चेकितान औ प्राक्रमी काशीका राजा पुरु-
जित, कुंतिभोज तथा नरनमे श्रेष्ठ शैव्य ॥ ५ ॥ ऐसाही शूरवीर
प्राक्रमवालौमे श्रेष्ठ औ बलवान् ऐसा युधामन्यु औ सुभद्राका
पुत्र अभिमन्यु तथा द्रौपदीके पांचौ पुत्र ये सर्व महारथी हैं, जो
दसहजारशूर वीरोंको एकही जीते औ शस्त्र तथा शास्त्रमे प्रवी-
ण होई उसको महारथीकहते हैं. ॥ ३ ॥

मूलम्.

अस्माकंतुविशिष्टायतान्निबोधद्विजोत्तम ॥ ना
यकाममसैन्यस्यसंज्ञार्थतान्ब्रवीमि ॥ ७ ॥
भवान्भीष्मश्चकर्णश्चकृपश्चसमितिंजयः ॥ अ
श्वत्थामाविकर्णश्चसौमदत्तिस्तथैवच ॥ ८ ॥ अ
न्येचवहवःशूरामदर्थेत्यक्तजीविताः ॥ नानाशस्त्र
प्रहरणाःसर्वयुद्धविशारदाः ॥ ९ ॥

अन्वयः . .

हेद्विजोत्तम, येतु अस्माकंसैन्यस्य नायकाः विशिष्टाः ता
न्निबोध तान् ते संज्ञार्थं ब्रवीमि ॥७॥ भवान् भीष्मः च
कर्णः च समितिंजयः कृपः अश्वत्थामा विकर्णः तथाएव
सौमदत्तिः ॥ ८ ॥ मदर्थे त्यक्तजीविताः नानाशस्त्रप्रहरणाः
अन्ये चवहवःशूराःसन्ति एतेसर्वे युद्धविशारदाःसन्ति ॥९॥

टीका

दुर्योधन द्रोणाचार्यसे कहते हैं कि, हे द्विजोत्तम, जे हमारी
सेनाकेशरदार श्रेष्ठ हैं तिमको तुम जानौ, मैंउनके नामजानने-

६ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

केवास्ते कहता हौं ॥७॥ आप भीष्म, कर्ण औ संग्रामजीतने वाले कृपाचार्य, अश्वत्थामा, विकर्ण, तैसाही सोमदत्तराजाका पुत्र भूरिश्रवा ॥ ८ ॥ औ मेरेवास्ते त्यागे हैं जीवन जिन्होंने ऐसे नानाशस्त्रोंके प्रहार करनेवाले औरभी बहुत गुरवीर हैं, ये सर्व युद्ध करनेमे चतुर हैं. ॥ ९ ॥

मूलम्

अपर्याप्तं तदस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितम् ॥ ५
र्याप्तं त्विदमेतेषां बलं भीष्माभिरक्षितम् ॥ १० ॥
अयनेषु यथाभागं अवस्थिताः ॥ भीष्म
मेवाभिरक्षन्तु भवन्तः सर्वे एव हि ॥ ११ ॥

अन्वयः

अस्माकं बलं भीष्माभिरक्षितं तत् अपर्याप्तं तु एतेषां
इदं बलं भीष्माभिरक्षितं अपर्याप्तं ॥ १० ॥ अतः सर्वेषु अ
यनेषु यथाभागं अवस्थिताः संतः भवन्तः सर्वे हि भीष्म
एव अभिरक्षन्तु ॥ ११ ॥

टीका

हमारी ग्यारह अक्षौहिणी सेना भीष्मकरिके रक्षित हैतौभी,
असमर्थ दीखती है औ इनौकी सेना सात अक्षौहिणी है तौभी,
भीष्मकरिके रक्षित समर्थ दीखती है, इहां दुर्योधनके मनकायह
तात्पर्य है कि, भीष्मपितामह उभयपक्षपाती हैं, कदापि उनका
पक्षकिया तौ हमारी सेनाका रक्षक कोईभी नहीं, इसवास्ते आ
पविचार करो ॥ ११ ॥ इसवास्ते जहां जहां परसेना प्रवेशकेस्थान
है याने नाके हैं, उन सर्व नाके नाकेपर यथाभाग याने आपआ

पके यूय लैके सावधानखडे व्हेकेआपलोग भीष्महीकी रक्षाकरौ याने कोई परसेनाका दूतभीभीष्मके समीप न आने पावै ॥ ११ ॥

मूलम.

तस्यसंजनयन्हर्षंकुरुवृद्धः पितामहः ॥ सिंहना
दंविनद्योच्चैःशंखंदध्मौप्रतापवान् ॥ १२ ॥

अन्वयः

प्रतापवान् कुरुवृद्धः पितामहः तस्य हर्षं संजनयन्
सन् उच्चैः सिंहनादं विनद्य शंखं दध्मौ ॥ १२ ॥

टीका.

प्रतापी औ कुरवांशिनमे वडे तथा पितामह जो भीष्म सो
दुर्योधनके हर्ष उत्पन्न करते हुवे, उंचेस्वरसे सिंहसरीखे गर्जना
करिके आपका शंख वजाते भये. ॥ १२ ॥

मूलम.

ततःशंखाश्चभेर्यश्चपणवानकगोसुखाः ॥ सहस्रै
वाभ्यहन्यंतसशब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

अन्वयः

ततः शंखाः च भेर्यः पणवानकगोमुखाः सहस्रा एव अ-
भ्यहन्यंत सशब्दस्तुमुलोऽभवत् ॥ १३ ॥

टीका.

भीष्मने शंख वजाया तदनंतर सर्वसैनौंमे शंख, भेरी, ढोल,
नगारे, रणसिंहे ये सर्व वाजे एकाएकी वजने लगे, सो शब्द बहुत
भारी होता भया. ॥ १३ ॥

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

मूलम्.

ततःश्वेतैर्हयैर्युक्तेमहतिस्वन्दनेस्थितौ ॥ माधवः

पांडवश्चैवदिव्यौशंखौप्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

अन्वयः

ततः श्वेतैर्हयैर्युक्ते महतिस्वन्दनेस्थितौ माधवः च पांडवः.
एव दिव्यौ शंखौ प्रदध्मतुः ॥ १४ ॥

टीका.

सर्व बाजे बाजनेके पीछे शुक्लवर्णके घोड़ोंसे जुडा ऐसा जो
बडा रथ तिसपर बैठेहुये श्रीरुष्ण और अर्जुन ये दोनौ आप
आपके दिव्यशंख याने अप्राकृतशंखोंको बजाते भये. ॥ १४ ॥

मूलम्.

पांचजन्यंहृषीकेशोदेवदत्तंधनंजयः ॥ पौंड्रं

ध्मौमहाशंखंभीमकर्मावृकोदरः ॥ १५ ॥ अनं

तविजयंराजाकुंतीपुत्रोयुधिष्ठिरः ॥ नकुलःसहदे

वश्चसुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

अन्वयः

हृषीकेशः महाशंखं पांचजन्यं दध्मौ, धनंजयः देवदत्तं द
ध्मौ, भीमकर्मा वृकोदरः पौंड्रं दध्मौ ॥ १५ ॥ कुंतीपुत्रः
राजायुधिष्ठिरः अनंतविजयं शंखं दध्मौ, नकुलः च सह
देवः एतौ सुघोषमणिपुष्पकौ ॥ १६ ॥

टीका.

हृषीकेश जो श्रीरुष्ण ते आपका जो श्रेष्ठ शंख पांचजन्य
उसको बजाते भये, धनंजय जो अर्जुन सो देवदत्तनामा शंख

वजाते भये औ भयंकर हैं कर्म जिनके औ उदरसे जिनके वृ
क नाम अग्नि अति प्रबल है ऐसे जोभीम सो पौंड्रनाम महाशं-
ख वजाते भये ॥ १५ ॥ कुंतीके पुत्र राजायुधिष्ठिर अनंतविज-
यनाम शंख वजाते भये, नकुल सुयोगनाम शंख वजाते भये.
सहदेव मणि पुष्पक नाम शंख वजाते भये. ॥ १६ ॥

मूलम्.

काश्यश्चपरमेष्वासःशिखंडीचमहारथः ॥ घृष्ट-
द्युन्मोविराटश्चासात्यकिश्चापराजितः ॥ १७ ॥
द्रुपदोद्रौपदेयाश्चसर्वशःपृथ्वीपते ॥ सौभद्रश्च
महाबाहुःशंखान्दध्मुःपृथक्पृथक् ॥ १८ ॥ सघो
पोधार्तराष्ट्राणांहृदयानिव्यदारयत् ॥ नभश्चपृ
थिवीचैवतुमुलोव्यनुनादयन् ॥ १९ ॥

अन्वयः

परमेष्वासःकाश्यःचमहारथःशिखंडीघृष्टद्युम्नः विराटः
च अपराजितःसात्यकिः॥१७॥ ॥हेष्टथिवीपतेद्रुपदःच
सर्वशःद्रौपदेयाःचमहाबाहुःसौभद्रःइमेसर्वे पृथक्पृथक्
शंखान्दध्मुः॥१८॥सतुमुलो धोपः नभःच पृथिवीव्यनु
नादयन्सन् धार्तराष्ट्राणां हृदयानि व्यदारयत् ॥१९॥

टीका.

श्रेष्ठ है धनुष्यजिसकाऐसाकाशिराज औ महारथीशिखंडी
औघृष्टद्युम्न,विराटतथा शत्रुघ्नकरिके अजित ऐसा सात्यकि१७
हेष्टथिवीपतेघृतराष्ट्राजाद्रुपदऔद्रौपदीकेसर्व पुत्रऔविशालहै
वाहैं जिनकीऐसा सुभद्राकापुत्र अभिमन्यु, ये सर्वन्यारे न्यारे
आपआपके शंख वजातेभये॥ १८ ॥ सोकोलाहलशब्दआका

१० गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

श औपृथ्वीको शब्दायमान करता करता तुझारे पुत्रोंका हृदय विदीण किया. ॥ १९ ॥

मूलम्.

अथव्यवस्थितान्दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रान्कपिध्वजः ॥
प्रवृत्तेशस्त्रसंपाते धनुरुद्यम्य पांडवः ॥ २० ॥ हृषी-
केशं तदा वाक्यमिदमाह महीपते ॥ सेनयोरुभयो-
र्मध्ये रथं स्थापय मेऽच्युत ॥ २१ ॥

अन्वयः

हे महीपते अथ शस्त्रसंपाते प्रवृत्ते सति कपिध्वजः पांडवः
धार्तराष्ट्रान् व्यवस्थितान् दृष्ट्वा तदा धनुः उद्यम्य हृषी-
केशं इदं वाक्यमाह, हे अच्युत! उभयोः सेनयोः मध्ये
मे रथं स्थापय ॥ २१ ॥

टीका.

संजय घृतराष्ट्रको कहते हैं कि, हे महीपते! वह बड़ा घोरशब्द
निवृत्तहुये पीछे शस्त्रोंके चलनेकी तयारी भई, तब कपिनाम
वानरका चिन्ह है ध्वजामें जिनके ऐसे पांडुके पुत्र जो अर्जुन
सो तुझारे पुत्रोंको युद्ध करनेको खड़े देखिके धनुषको हाथमे
ऊँचालैके श्रीकृष्णसे ये वचन बोलते भये कि, हे अच्युत!
दोनों सेनोंके मध्यमे मेरा रथ स्थापित करौ ॥ २१ ॥

मूलम्.

यावदेतान्निरीक्ष्ये हं योद्धुकामान् अवस्थितान् ॥ कै-
र्मया सह योद्धव्यमस्मिन्रणसमुद्यमे ॥ २२ ॥

अन्वयः

अहं यावत् एतान् योद्धुकामान् अवस्थितान् निरीक्ष्ये
अस्मिन् रणसमुद्यमे मया सह कैः योद्धव्यं ॥ २२ ॥

टीका

मैं प्रथम ये जो युद्ध कि इच्छा करिके स्थित हैं तिनको देखौंगा कि, इस रणके प्रारंभमें मेरेको कोनकोनसे युद्ध करना योग्य है. २२

मूलम्

योत्स्यमानानवेक्ष्येऽहं य एतेऽत्र समागताः ॥

धार्तराष्ट्रस्य दुर्बुद्धेर्युद्धे प्रियचिकीर्षवः ॥ २३ ॥

अन्वयः

य एते दुर्बुद्धेः धार्तराष्ट्रस्य युद्धे प्रियचिकीर्षवः अत्र समागताः तान् योत्स्यमानान् अहं अवेक्ष्ये ॥ २३ ॥

टीका.

जे ये यतने दुर्बुद्धि धृतराष्ट्रके पुत्रदुर्योधनके युद्धमें प्रिय करनेकी इच्छा करनेवालोंको मैं देखा चाहता हूँ. ॥ २३ ॥

मूलम्.

संजय उवाच ॥ एवमुक्तो हृषीकेशो गुडाकेशेन भारत ॥

त ॥ सेनयोरुभयोर्मध्ये स्थापयित्वा रथोत्तमम् ॥

॥ २४ ॥ भीष्मद्रोणप्रमुखतः सर्वेषां च महीक्षितां ॥

उवाच पार्थ पश्यैतान् समवेतान् कुरूनिति ॥ २५ ॥

अन्वयः

संजय उवाच हे भारत गुडाकेशेन एवमुक्तः हृषीकेशः उभयोः सेनयोः मध्ये रथं स्थापयित्वा भीष्मद्रोणप्रमुखतः च सर्वेषां महीक्षितां प्रमुखतः इति उवाच हे पार्थ एतान् समवेतान् कुरून् पश्य ॥ २५ ॥

टीका.

संजय धृतराष्ट्रसे कहते भये कि, हे भारत याने भरतवंशमें उत्पन्न हे धृतराष्ट्र ! गुडका जो निद्रा उसका जीतनेवाला जो

अर्जुन तिसने जब कहाकि, हे कृष्ण, हमारा रथ दोनौ सेनाके बीचमें खडाकरो, तव श्रीकृष्णजीने दोनौ सेनाके मध्यमे रथ खडा करिके भीष्म, द्रोणाचार्य और सर्व राजोंके सन्मुख ये-वाक्य बोलेकि, हे पृथाके पुत्र! ये जो यकष्टे भये है कुरुवंशी इनको तुम देखो ॥ २५ ॥

मूलम्.

तत्रापश्यत्स्थितान्पार्थःपितृन्तथपितामहान् ॥
आचार्यान्मातुलान्भ्रातृन्पुत्रान्पौत्रान्सखीं
स्तथा ॥ २६ ॥ श्वशुरान्सुहृदश्चैवसेनयोरुभयोर
पि॥ तान्समीक्ष्यसकौंतेयःसर्वान्वंधून्वस्थितान्
॥ कृपयापरयाविष्टोविपीदन्निदमब्रवीत् ॥ २७ ॥

अन्वयः

अथपार्थः तत्रस्थितान् पितृन् पितामहान् आचार्यान्
मातुलान् भ्रातृन् पुत्रान् पौत्रान् तथासखीन् ॥ २६ ॥
श्वशुरान् च सुहृदःएव अपश्यत् स कौंतेयः उभयोःसेन
योः अपि तान् सर्वान् वंधून् अवस्थितान् समीक्ष्य पर-
या कृपया विष्ट विपीदन् सन् इदं अब्रवीत् ॥ २७ ॥

टीका.

जब श्रीकृष्णने दोनौ सेनाके मध्यमे रथ स्थापित करिके कहाकी, हे अर्जुन, ये कुरुवंशी खडे हैं इनको देखो. तव पृथाकापुत्र पार्थ याने अर्जुन दोनौ सेनाके देखते हैं तौ पितायाने पितास दृश भूरिश्रवादिक काका, पितामह, भीष्म, सोमदत्तादिक आचार्य द्रोणाचार्यादिक मातुल शल्य, शकुनि इत्यादिक भ्राता, दुर्योधनादिक पुत्र द्रौपदीसे उत्पन्नपांच पौत्र लक्ष्मादिकोंके बेटे स

खा अश्वत्थामा जयद्रथादिक ॥ २६ ॥ श्वशुर द्रुपद आदिक औ सुहृद वे जो प्रत्युपकार विना प्रीतिकरैते कृतवर्मादिक इन स-
वको देखता भया, इन सर्वबंधुनको युद्धकेवास्ते खडे देखिकेअ
ति कृपा करिके युक्त अगाडी कहैंगे वै वचन श्रीकृष्ण भगवानसे
बोला; इहां कौंतेय यानें कुंतिपुत्र कहनेका तात्पर्यकि, ऐसी
जगह करुणा करना पुरुष बुद्धिवालेका धर्म नहीं है ॥ २७ ॥

मूलम्.

अर्जुनउवाच ॥ दृष्ट्वेमं स्वजनं कृष्णायुयुत्सुं समुप-
स्थितं ॥ सीदंति मम गात्राणि मुखं च परिशुष्यति ॥
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च जायते ॥ २९ ॥ गांडी
वंस्रंसते इस्ता त्वक्कैव परिदह्यते ॥ न च शक्नोम्यव-
स्थातुं भ्रमतीव च मे मनः ॥ ३० ॥ निमित्तानि च
पश्यामि विपरीतानि केशव ॥ न च श्रेयोऽनुपश्या-
मि हत्वा स्वजनमाहवे ॥ ३१ ॥

अन्वयः

अर्जुनउ० ॥ हे कृष्ण युयुत्सुं समुपस्थितं इमं स्वजनं दृ-
ष्ट्वा मम गात्राणि सीदंति च मुखं परिशुष्यति मे शरीरे वेप-
थुः च रोमहर्षः जायते ॥ २९ ॥ हस्तात् गांडीवं स्रंसते च
त्वक् एव परिदह्यते अहं अवस्थातुं शक्नोमि च मम मनः
भ्रमति इवा ३० ॥ हे केशव निमित्तानि च विपरीतानि पश्या-
मि आहवे स्वजनं हत्वा अनुश्रेय अपि न पश्यामि ॥ ३१ ॥

टीका

अर्जुन कहते भये कि, हे श्रीकृष्ण! युद्ध कि है इच्छा जिनके ऐसे
जो ये हमारे ही बंधुजन नजीक स्थित हैं इनको देखिके मेरे गा

त्र शिथिल होते हैं, और सुखभी सुखता है और मेरे शररीमेकंपा और रोमांचभी होते हैं. ॥ २९ ॥ हाथसे गांडीव धनुषभी पड़ा जाता है, औ त्वचाभी जली जाती है, मै खड़े होनेकोभी नहीं सकता हौं, और मेरा मनभी घ्रमता जैसा है. ॥ ३० ॥ हे केशव! निमित्त याने शकुन वेभी विपरीत ही देखता हौं औ संग्राममें आपके बंधुजनोंका बध करिके पीछे कल्याण होयगा सो भी नहीं देखता हौं. ॥ ३१ ॥

मूलम्.

नकांक्षेविजयंकृष्णनचराज्यंसुखानिच ॥ किं
नोराज्येनगोविंदकिंभोगैर्जीवितेनवा ॥ ३२ ॥ ये
पामर्थेकांक्षितंनोराज्यंभोगाःसुखानिच ॥ तइमे
ऽवस्थितायुद्धेप्राणांस्त्यक्त्वाधनानिच ॥ ३३ ॥

अन्वयः

हे कृष्ण अहं विजयं न कांक्षे च राज्यं न कांक्षे च सु
खानि न कांक्षे, हे गोविंद नः अस्माकं राज्येन किं वा
भोगैः किं वा किं जीवितेन ॥ ३२ ॥ नः अस्माभिः
येपामर्थे राज्यं कांक्षितं च भोगाः कांक्षिताः सुखानि
कांक्षितानि ते इमे प्राणान् धनानि त्यक्त्वा युद्धे
अवस्थिताः ॥ ३३ ॥

टीका.

हे कृष्ण, मै संग्रामजीतना नहीं चाहता हौं औ राज्यभी नहीं चाहता हौं औ सुखभी नहीं चाहता हौं, हे गोविंद! हमको राज्यसे क्या प्रयोजन है? अथवा भोगोंसे क्या प्रयोजन है! अथवा जीवनेसभी क्या प्रयोजन है ॥ ३२ ॥ हमने जिनके वास्ते राज्य चाहता और भोग चाहेथे औ सुखभी चाहेथे तै सब

प्राण और धनोको त्यागिके युद्धमे खडे हैं. ॥ ३३ ॥

मूलम्.

आचार्याःपितरःपुत्रास्तथैवचपितामहाः ॥ मातु

लाःश्वशुराःपौत्राःश्यालाःसंबंधिनस्तथा ॥ ३४ ॥

एतान्नहंतुमिच्छामि घ्नतोऽपिमधुसूदन ॥ अपि

त्रैलोक्यराज्यस्यहेतोःकिंनुमहीकृते ॥ ३५ ॥

अन्वयः

इमे आचार्याःपितरः पुत्राःतथा एव पितामहाः मातुलाः

श्वशुराः पौत्राः श्यालाः तथा संबंधिनः संति ॥ ३४ ॥ हे

मधुसूदन त्रैलोक्यराज्यस्य हेतोःअपि एतान् घ्नतोपि हं

तुंन इच्छामि महीकृते किंनु ॥ ३५ ॥

टीका.

अर्जुन कहतेभये कि,जे ये सन्मुख लढनेको खडे हैं ते येसब कोई आचार्य,कोई पितासदृश,कोई पुत्रतथा पितामह, मामा ससुर, पौत्र, शाले तथा औरभी संबंधीही हैं, इसवास्ते हे मधुसूदन! तीन लोकके राज्यके वास्ते भी जो ये मेरेकोमारें तौभी मैं इनके मारनेकी इच्छा नहीं करताहौं औ पृथ्वीके वास्ते तोक्या मारौं? ॥ ३५ ॥

मूलम्.

निहत्यधार्तराष्ट्रान्नःकाप्रीतिःस्याज्जनार्दन ॥ पा

पमेवाश्रयेदस्मान्हत्वैतानाततायिनः ॥ ३६ ॥

तस्मान्नाहर्वावयंहंतुंधार्तराष्ट्रान्स्वबांधवान्॥ स्वज

नंहिकथंहत्वासुखिनःस्याममाधव ॥ ३७ ॥

अन्वयः

हे जनार्दन धार्तराष्ट्रान् निहत्यनःकाप्रीतिःस्यात् एतान्
 आततायिनःहत्वा अस्मान् पापं एव आश्रयेत् ॥ ३६ ॥ त
 स्मात् स्वबंधवान् धार्तराष्ट्रान् हंतुं वयं अर्हाः न हेमाध-
 व हि स्वजनं हत्वा वयं कथं सुखिनः स्याम् ॥ ३७ ॥

टीका.

हे जनार्दन! धृतराष्ट्रके पुत्रोंको मारिके हमारी क्या प्रसन्नता
 होयगी? इन आततायिनको मारिके हमको पापही होयगा. ॥
 ॥ ३६ ॥ तिसीवास्ते हमारे बंधु जे धृतराष्ट्रके पुत्र इनको मारने
 को हम योग्य नहीं हैं. हे माधव! अपने बंधुनको मारिके हम कै-
 से सुखी होयगे? ॥ ६७ ॥ आततायि छप्रकारके होते हैं. जो आ-
 गिलगावे १ विपदेई २ शस्त्र लैके सन्मुख युद्ध करनेको आवे
 ३ धनहरै ४ पृथ्वीहरै ५ औ स्त्रीहरण करै यह छठा ॥ ६ ॥

मूलम्.

यद्यप्येतेन पश्यंति लोभोपहतचेतसः ॥ कुलक्ष
 यकृतं दोषं मित्रद्रोहे च पातकं ॥ ३८ ॥ कथं न ज्ञेय
 मस्माभिः पापादस्मान्निवर्तितुं ॥ कुलक्षयकृतं दो
 षं प्रपश्यद्भिर्जनार्दन ॥ ३९ ॥

अन्वयः

हे जनार्दन लोभोपहतचेतसः एतैः कुलक्षयकृतं दोषं च मित्र
 द्रोहे पातकं यद्यपि न पश्यंति तथापि कुलक्षयकृतं दोषं प्र
 पश्यद्भिः अस्माभिः अस्मात्पापात् निवर्तितुं कथं न ज्ञेयं ॥ ३९ ॥

टीका.

हे जनार्दन! लोभकरिके नष्ट भई हैं बुद्धि जिनकी ऐसजे ये दु
 र्योधनादिक कुलक्षयका दोष औ मित्रद्रोहका पाप यद्यपि नहीं
 देखते हैं तौ भी कुलक्षय कृत दोष जानने वाले जो हम तिनक-

रिक्के इस कुलक्षयकृत पापसे निवर्त होनेको कैसे न जानना चाहिये, याने जाननाही चाहिये. ॥ ३९ ॥

मूलम्-

कुलक्षये प्रणश्यंति कुलधर्माः सनातनाः ॥ धर्मेन
ऋकुलं कृत्स्नमधर्माभिभवत्युत ॥ ४० ॥

अन्वयः

कुलक्षये सति सनातनाः कुलधर्माः प्रणश्यंति उत धर्मे
नष्टे सति कृत्स्नं कुलं अधर्मः अभिभवति ॥ ४० ॥

टीका.

कुलके नाश होनेसे सनातन कुलधर्म नष्ट होते हैं, फिरि
धर्मनष्ट होनेसे समस्त कुलपर अधर्म फैलिजाता है. ॥ ४० ॥

मूलम्.

अधर्माऽभिभवात्कृष्णप्रदुष्यंति कुलस्त्रियः ॥ स्त्री
पुट्टासु वाष्णैयजायते वर्णसंकरः ॥ ४१ ॥

अन्वयः

हे कृष्ण अधर्माभिभवात्कुलस्त्रियः प्रदुष्यंति. हे वाष्णैय
पुट्टासु स्त्रीषु वर्णसंकरः जायते ॥ ४१ ॥

टीका.

हेकृष्ण, कुलमे अधर्म फैलनेसे कुलकी स्त्रियांव्यभिचारिणी
होती हैं: हे वाष्णैय, याने हे वृष्णिवंशोत्पन्न हे भगवन्, उन दुष्ट
स्त्रियोंमे वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं, वाष्णैय कहनेसे उभयकुल
शुद्धता सूचन किया; जैसे पितृकुल तौ यादव, मातृकुल वृष्णि
हैं- इसमे यह तात्पर्य है कि, आपसरीखा हमाराभी कुल शुद्ध
रहना चाहिये. ॥ ४१ ॥

मूलम्.

संकरोनरकायैवकुलग्नानांकुलस्यच ॥ पतंतिपि
तरोह्येषालुप्तपिंडोदकक्रियाः ॥ ४२ ॥

अन्वयः

संकरःकुलग्नानां कुलस्य नरकाय एव, हियस्मात् लुप्त-
पिंडोदकक्रियाः एषां पितरः पतंति ॥ ४२ ॥

टीका

वह वर्णसंकर कुलघातके कुलको नरकहीके वास्ते है,
क्योंकि, लुप्तभई पिंडोदकक्रिया जिनकी ऐसे उनके पितर स्व-
र्गसे पडते हैं. ॥ ४२ ॥

मूलम्

दोषैरेतैःकुलग्नानांवर्णसंकरकारकैः ॥ उत्साद्यंते
जातिधर्माःकुलधर्माश्चशाश्वताः ॥ ४३ ॥

अन्वयः

वर्णसंकरकारकैः एतैःदोषैः कुलग्नानां जातिधर्माःच शा-
श्वताः कुलधर्माः उत्साद्यंते ॥ ४३ ॥

टीका.

वर्णसंकरके किये जो ये मतने दोष तीनों करिके कुलघा-
तियोंके जातिधर्म औ सनातन कुलधर्मसमूल नष्ट होते हैं. ॥४३

मूलम्.

उत्सन्नकुलधर्माणामनुष्याणांजनार्दन ॥ नरके
नियतंवासोभवतीत्यनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

अन्वयः

हे जनार्दन उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां नरके नियते
वासो भवतिइति अनुशुश्रुम ॥ ४४ ॥

टीका.

हेजनार्दन, उच्छिन्न भये हैं कुलधर्म जिनके ऐसे मनुष्योंको नरकमें अवश्य वास होता है, ऐसेहमने धर्मशास्त्रमें सुनाहै. ४४

मूलम्.

अहोवतमहत्पापंकर्तुं व्यवसिता वयम् ॥ यद्राज्य
सुखलोभेन हंतुं स्वजनमुपताः ॥ ४५ ॥

अन्वयः

अहो वत वयं महत्पापं कर्तुं व्यवसिताः यत् राज्यसु-
खलोभेन स्वजनं हंतुं उद्यताः ॥ ४५ ॥

टीका.

अहो! बहुत पछितानेकी घात है. जोहम बड़ा पाप करनेका निश्चय करते हैं, जो राज्यसुखके लोभसे आपके बंधुजनोंको मारनेका उपाय करते हैं. ॥ ४५ ॥

मूलम्.

यदिमामप्रतीकारमशस्त्रं शस्त्रपाणयः ॥ धार्तरा
ष्ट्रारणेहन्युस्तन्मेक्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

अन्वयः

शस्त्रपाणयः धार्तराष्ट्राः यदिअशस्त्रंअप्रतीकारं मां रणे
हन्युः तत् मे क्षेमतरं भवेत् ॥ ४६ ॥

टीका.

शस्त्र हाथमें हैं जिनके ऐसे जो घृतराष्ट्रके पुत्र जो शस्त्र-
रहित और सन्मुख न लड़तेहुये मेरेको रणमें मारेंगे तौभी
मेरा अति भला होपगा. ॥ ४६ ॥

मूलम्.

संजय उ० ॥ एवमुक्त्वाऽर्जुनः संस्येरथोपस्थ उपा

विशत्॥विसृज्यसशरंचापंशोकसंविभ्रमानसः॥ ४७

अन्वयः

संजय उ० ॥ शोकसंविभ्रमानसः अर्जुनः संख्येएवं उक्त्वा
सशरं चापं विसृज्य स्थोपस्थे उपाविशत् ॥ ४७ ॥

टीका.

संजय घृतराष्ट्रको कहते हैं कि, हे राजन्! शोक करिके है
व्याकुल मन जिसका ऐसे अर्जुन संग्रामभूमिमें ऐसे कहिके वा-
णसहित धनुषको त्यागिके रथमें पिछाड़ी जा बैठा. ॥ ४७ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
गशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादे अर्जुनविषादयोगो
नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्सजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां
श्रीमद्भ० वाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

मूलम्.

संजय उवाच ॥ तं तथा कृपया विष्टमश्रु पूर्णाकुलेक्ष-
णम् ॥ विपीदं तं मिदं वाक्यमुवाच मधुसूदनः ॥ १ ॥

अन्वयः

संजय उवाच ॥ तथा कृपया आविष्टं अश्रुपूर्णाकुलेक्षणं
विपीदं तं तं मधुसूदनः इदं वाक्यं उवाच ॥ १ ॥

टीका.

संजय कहते हैं कि, तैसी पूर्वाक्तकरुणाकरिके व्याप्त औ आंशु-
श्रौंके भरनेसे व्याकुल हैं नेत्र जिसके ऐसे अर्जुनको यह
वाक्य बोलते भये. ॥ १ ॥

मूलम्.

कुतस्त्वाकश्मलमिदं विषमेसमुपस्थितं ॥ अनार्य

जुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन ॥ २ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन अनार्यजुष्टं अस्वर्ग्यं अकीर्तिकरं इदं कश्मलं
विपमे त्वा कुतः समुपस्थितं ॥ २ ॥

टीका.

प्रथम श्लोकमे कहा कि, भगवान् अर्जुनको यह वाक्य कहते
भये, सो अब खुलासा कहते हैं. हे अर्जुन! अनार्य जो अधमजन
तिनोंके सेवनेयोग्य औ स्वर्गप्राप्तिका बाधक औ कीर्तिकाभी
नाशक ऐसा जो यह मोह सो विपम याने ऐसे कठिन युद्धके
समयमें तुमको कहाँसे प्राप्त भया? ॥ २ ॥

मूलम्.

क्लैव्यं मास्मगमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ॥

क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ परंतप ॥ ३ ॥

अन्वयः

हे पार्थ क्लैव्यं मास्मगमः एतत् त्वयि न उपपद्यते हे परं-
तप क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वा उत्तिष्ठ ॥ ३ ॥

टीका

हे पार्थ, याने पृथाके पुत्र अर्जुन! तुम कादरताको न गृहण
करौ. यह कादरता तुमको न प्राप्तहोना चाहिये, कारण कि, तुम
शत्रुनको संतापित करनेवाले हौ, इसवास्ते तुच्छ अंतःकरणकी
दुर्बलताको त्यागिके उठौ. ॥ ३ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ कथं भीष्ममहं संख्येद्रोणं च मधुसूद

न ॥ इपुभिः प्रतियोत्स्यामि पूजार्हा वरि मूदन ॥ ४ ॥

अन्वयः

अर्जुन उ० ॥ हे मधुसूदन अहं सर्व्वे भीष्मं च द्रोणं प्रति
इपुभिः कथंयोत्स्यामि हे अरिसूदन इमौ पूजाहौं ॥ ४ ॥

टीका.

अर्जुन बोलेकि, हे मधुसूदन, मैं संग्राममें भीष्म और द्रोणाचार्यसे बाणों करिके कैसे युद्ध करौंगा? हे अरिसूदन, ये दोनौ पूजाके योग्य हैं. इस श्लोकमें दो संबोधनदिये, जिसमें मधुसूदनका यह तात्पर्य है कि, आप दैत्यनाशक हौ; परंतु सज्जनजनैसे युद्ध कैसे करातेहो? और अरिसूदन कहनेसे यह आया कि, आप शत्रु-हंताहौ परंतु ये हमारे बड़े गंधपुष्पादिकोंकरिके पूजने योग्य. तिनपर बाणप्रहार क्यों करवाते हौं? ॥ ४ ॥

मूलम्.

गुरुनहत्वाहिमहानुभावांश्छ्रेयोभोक्तुंभैक्ष्यम
पीहलोके ॥ हत्वार्थकामांस्तुगुरुनिहैवभुंजीय
भोगान् रुधिरप्रदिग्धान् ॥ ५ ॥

अन्वयः

इहलोके महानुभावान् गुरुन् अहत्वा भैक्ष्यं अपिभोक्तुं
श्रेयः तु श्रर्थकामान् गुरुन् इह एव रुधिरप्रदिग्धान्
भोगान् भुंजीय ॥ ५ ॥

टीका.

इस लोकमें बड़े प्रतापी गुरुनको मारे विना जो भीख
मागिके, खाना वह भी श्रेष्ठहै, परंतु श्रर्थकामनावाले गुरु-
नकोमारिके जो भोग मिलैं वे भोग इस लोकहीमें रक्त
केसने भये हैं. तात्पर्य परलोक तौ विगडही जायगा. ॥ ५ ॥

मूलम्.

नचैतद्विद्मः कतरन्नोगरीयोयद्वाजयेम यदि वानोजये

युः॥यानेवहत्वानजिजीविषामस्तेवस्थिताःप्रमुखे
धार्तराष्ट्राः ॥६॥कार्पण्यदोषोपहतस्वभावःपृच्छा
मित्वांधर्मसंमूढचेताः ॥ यच्छ्रेयःस्यान्निश्चितं ब्रूहि
तन्मेशिष्यस्तेऽहंशाधिमांत्वांप्रपन्नम् ॥ ७ ॥

अन्वयः

जयाजययोर्मध्ये नः कतरन् गरीयः किं नामाधिकतरं य-
द्वाजयेम यदिवा नः अस्मान् इमे जयेयुः एतत् च न वि-
द्मः यान् हत्वा वयं नजिजीविषामः ते धार्तराष्ट्राः प्रमुखे
एव अवस्थिताः ॥ ६ ॥ कार्पण्यदोषोपहतस्वभावः धर्म
संमूढचेताः अहं त्वां पृच्छामि मे यत् निश्चितं श्रेयः स्यात्
तत् ब्रूहि अहं ते शिष्यः अतः त्वां प्रपन्नं मां शाधि ॥ ७ ॥

टीका.

अर्जुनका अभिप्राय यह है कि, जो कदापि हम अधर्मभी
श्रांगिकार करिके युद्ध करैंगे तौभी, जीतीहारिका निश्चय नहीं.
इसी अभिप्रायकरिके श्रीकृष्णसे बोले कि, हे कृष्ण! जय औ प-
राजय इन दोनौमे हमको कौनसा अधिक है. क्योंकि हम इनको
जीतैंगे अथवा ये हमको जीतैंगे. हम यहभी नहीं जानत है.
श्रौर भी यह जय भी श्रंतमे पराजय समान है. जैसे कि जिन-
कोमारिके हम जीना भी नहीं चाहते हैं. तेही धृतराष्ट्रके पुत्र-
सन्मुख खडे हैं ॥ ६ ॥ इनको मारिके हम कैसे जीवैंगे? यह
कृष्णपना और कुलक्षय करनेका दोष इन दोनौ करिके परा
भवको प्राप्तहुआ है स्वभाव जिसका ऐसा जो मै तैसेही धर्ममे
मूढ है चित्तजिसका याने युद्ध छोडिके भिक्षा मागना यह क्ष-
त्रियका धर्म है अथवा अधर्म है ऐसा संदिग्ध चित्तमै तुमको-
पूछता हौं. जो मेरा निश्चय कल्याण कारक होय सोई कहौं.

क्योंकि मैं तुझ्पारा शिष्य हूँ. इसवास्ते आपके शरण आया हूँ.
मेरेको सिखावो. क्योंकि शिष्यको सिखानाही चाहिये. ॥७॥

मूलम्.

नहिप्रपञ्चामिममापनुद्याद्यच्छोकमुच्छोषण
मिन्द्रियाणां ॥ अवाप्यभूमावसपत्नमृद्धंराज्यं
सुराणामपिचाधिपत्यम् ॥ ८ ॥

अन्वयः

भूमौ असपत्नं ऋद्धं राज्यं अवाप्य च सुराणां अपि आ-
धिपत्यं अवाप्य यत् मम इन्द्रियाणां उच्छोषणं शोकं
अपनुद्यात् तत् तत् उपायं हि न पश्यामि ॥ ८ ॥

टीका.

अर्जुनने मनमे शंकाकिया कि, कदाचित् भगवान् कहिदेइंगे
कि आपना कल्याण आपही विचारसे करौ, इसवास्ते ये वचन
बोले कि, हे कृष्ण, जोइहां पृथ्वीमे शत्रुरहित समस्त राज्य मि-
लै औ परलोकमे देवतोंकाभी राज्य मिलै तौभी, जो मेरे इं-
द्रियोंके सुखाने वाले शोकको दूरकरै सो उपाय, निश्चयकरिके
मैं नहीं देखताहूँ अर्थात् आपही उपदेश करौ यह अभिप्राय ॥ ८

मूलम्.

संजय उवाच ॥ एवमुक्त्वा हृषीकेशं गुडाकेशः परंतपः ॥
नयोत्स्य इति गोविंदमुक्त्वा तूष्णीं बभूव ह ॥ ९ ॥

अन्वयः

संजय उवाच परंतपः गुडाकेशः हृषीकेशं एवं उक्त्वा ह प्र-
सिद्धं नयोत्स्य इति गोविंदं उक्त्वा तूष्णीं बभूव ॥ ९ ॥

टीका.

संजय धृतराष्ट्रसे कहते भये कि, हे राजन्, शत्रुनको संतापित

करनेवाला औ निद्राके भी जीतनेवाला ऐसा जो अर्जुन सो हृषीकेश याने इंद्रियोंके प्रेरक ऐसे कृष्णसे पूर्वोक्त वाक्य बोलिके औ प्रसिद्ध जैसे होय तैसे याने सबके सुनते बोला कि, मै युद्ध न करौंगा, ऐसे गोविंद याने समस्त इंद्रियोंके अंतर्ग्रामि कृष्णसे कहिके चुपहोकर बैठ रहा. इस श्लोकमें संजयने हृषीकेश प्रदसे तौ जनाया कि, सबकी इंद्रियोंके प्रेरक कृष्ण हैं, सो अर्जुनके पक्षपर हैं औ अर्जुनके विशेषण परंतप औ गुडाकेश कहनेमें यह देखाया कि, अर्जुन शत्रुनका संतापित करनेवाला औ निद्रा जित है. तुझारे पुत्र आलसी हैं इसवास्ते अर्जुनही जानैगा. गोविंदपदसे यह जनाया कि, सबकी इंद्रियोंके अंतर्ग्रामि कृष्णहै सो तुझारे पुत्रोंके मनके पापकोभी जानते है. इसवास्ते धर्मक्षेत्रमे पापीका नाशही करैगे. ॥ ९ ॥

मूलम्.

तमुवाचहृषीकेशः प्रहसन्निवभारत ॥ सेनयोरु
भयोर्मध्येविषीदंतमिदं वचः ॥ १० ॥

अन्वयः

हे भारत उभयोः सेनयोः मध्ये विषीदंतं तं प्रहसन्निव हृषीकेशः इदं वक्ष्यमाणं वचः उवाच ॥ १० ॥

टीका.

हे भारत, याने हे छुतराष्ट्र, दोनों सेनोंके मध्यमे विषादको प्राप्त हो रहे है, ऐसे अर्जुनको हसतेसरिखे याने ह्यजित करते हुवे श्रीकृष्ण भगवान् ये जो अगाडी कहेंगे सो वाक्य बोलत भये. याने आत्मा औ परमात्माका यथार्थज्ञान और उसके प्राप्तिका उपायरूप जो कर्मयोग औ भक्तियोग युक्तवाक्य नत्वे वाहं जातुनांसं, इहांसे लैके अहंत्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुच ॥ इसपर्यंत वाक्य बोलते भये. ॥ १० ॥

मूलम्

श्रीभगवानुवाच ॥ अशौच्यान्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादां
 श्रभाषसे ॥ गतासूनगतासूंश्च नानुशोचंति पण्डिताः ॥ ११

अन्वयः

श्रीभगवानुवाच ॥ त्वं अशौच्यान् अन्वशोचः च प्रज्ञावादां
 न भाषसे पण्डिताः गतासून् च अगतासून् न अनुशोचंति ११

टीका.

इसश्लोकका एक आचार्य ऐसा अर्थ कहते हैं कि, देह औ आ-
 त्माके अविवेकसे इसको शोक है उस विवेकके देखानेके वास्ते भ-
 गवान् बोले कि, तुम जो नहि शोचने योग्य बंधुतिनका शोक करते
 हो कि, इन स्वजनोंको देखिके मेरे गात्र शिथिल होते हैं. इत्यादि
 करिके तहां तुमको ऐसे विषम स्थानमें शोक क्यों उत्पन्न भया इ-
 त्यादि वाक्यों करिके ज्ञानभी दिया तौ भी प्रज्ञावाद याने हम
 भीष्मको कैसे मरेंगे? ऐसे पण्डितोंके सदृश केवल बोलते हो परंतु
 पण्डित नहीं हो क्यों कि, मरे हुवे बंधुनको औ जीवतेनको भी पं-
 डित लोग शोच नहीं करते हैं, याने मरे हुयेनका तौ मरनेका शो-
 क औ जीवते बंधुनविना कैसे जीवेंगे ऐसे शोक नहीं करते हैं, यह
 एक आचार्यकृत अर्थ. अब दूसरे सिद्धांती कृत अर्थ लिखते हैं
 श्रीकृष्णने देखा कि, इस अर्जुनको धर्म औ अधर्मका ज्ञान नहीं
 है इसवास्ते यह धर्मको अधर्म औ अधर्मको धर्म मानिरहा है.
 औ धर्म जाननेकी इच्छा करता है, तौ इसका मोह नाश करना
 चाहिये. तो मोह आत्मदर्शन विना नष्ट होनेका नहीं, औ ज्ञान
 विना आत्मदर्शन होनेका नहीं. औ निष्काम कर्म विना ज्ञान हो-
 नेका नहीं. तो निष्काम कर्म अध्यात्म शास्त्र विना होनेका नहीं.
 अध्यात्मशास्त्र कहते हैं देह औ आत्माके विवेकको ऐसा विचा-
 रिके भगवान् बोले कि, हे अर्जुन. तुम शोचने योग्य नहीं. तिनका

तौ शोक करते हौं औ वार्ते पंडितसदृश बोलते हौ जैसे कि हमारे पितर श्राद्धतर्पण न होनेके स्वर्गसे पडेंगे, सो यह स्वर्ग की प्राप्ति औ पडना श्राद्धादिक होने न होनेके स्वाधीन नहीं हैं क्यों कि, स्मृत पुण्यपापके स्वाधीन हैं क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोके विशान्ति इत्यादिक प्रमाणसे वै पुण्य पाप आत्माके स्वाधीन है, कुच्छ केवल देहके स्वाधीन नहीं हैं, यद्यपि पुत्रादिकृत श्राद्धादिकका पुण्यभी मिलता है क्यों कि, वैभी देह औ आत्माके संयोगहीसे हैं, परंतु श्राद्ध न होनेसे स्वर्गसै पात होनेका संभव तौ कोईभी कालमें नहीं है. यह देह नित्य नाशवान औ आत्मानित्य एक रस है. इसी लिएगतासु देह औ अगतासु आत्मा हैं. ये दोनौ शोचने योग्य नहीं. नासतो विद्यतेभावो नाभावो विद्यतेऽसतः इत्यादिप्रमाणोंसे ऐसा समुझिके पंडितजन शोक नहीं करते हैं, इसवास्ते तुमको भी यह योग्य नहीं है, कि मैं इनसे युद्ध न करौंगा औ भीख मागौंगा इस कहनेसे यह जानते है कि, तुम देहका स्वभाव औ देहातिरिक्त आत्माको भी नहीं जानते है, यह आत्मा ऐसा नहीं कि जन्मनेसे है औ मरनेसे नहीं जन्मता औ मरता यह देह है इसवास्ते इन दोनौका शोक न करना चाहिये, औ यह युद्धादिक कर्मनिष्काम करनेसे आत्मस्वरूप देखाने वाला है. स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः सिद्धिं विंदति मानवाः इत्यादि वाक्य प्रमाणोंसे युद्ध करौ यह अभिप्राय है. ॥ ११ ॥

• मूलम्.

नत्वेवाहं जातु नासं न त्वं ने मे जनाधिपाः ॥ न चैव न

भविष्यामः सर्वत्रयमतः परम् ॥ १२ ॥

अन्वयः

इतः पूर्वं अहं जातु न आसं अपितु आसं एव त्वं न
 आसीः अपितु आसीः एव इमे जनाधिपाः न आसन्
 अपितु आसन् एव अतः परं सर्वेवयं किं न भविष्यामः
 अपितु भविष्याम एव ॥ १२ ॥

टीका.

श्रीकृष्ण कहते हैं कि, हे अर्जुन, प्रथम आत्मनका स्वभाव
 तुम सुनौ. मैं सर्वेश्वर इस कालसे पूर्व अनादि कालमे क्या न
 था ऐसा नहीं मैं जबभी था और क्या तुम न थे यों नहीं तुझीये
 ऐसेही ये सर्व राजा न थे अर्थात् थे और इस कालसे अनंतर
 याने इसको बाद हमतुम और ये सर्व क्या न होयेंगे अर्थात् हो
 यर्हेंगे. इहाँ यह अभिप्राय है कि जैसे मैं सर्वेश्वर नित्य हौं, तैसे
 तुम सर्व क्षेत्रज्ञ नित्य हौं इहाँ एक सिद्धांती कहते हैं कि हम तुम
 और ये ऐसा कहनेमे दीखता है कि, अत्मा और परमात्माका भेद
 पारमार्थिक है इसीसे भगवानहीने कहा है. क्यों कि अज्ञानसे मो-
 हे भये अर्जुनके मोहनित्वकेलिये पारमार्थिकही उपदेशका
 संभव है जो कि औपादिक भेद होता तो तत्त्व उपदेशके समय-
 मे यह भेद न उपदेश करते इसवास्ते श्रीकृष्णने जो भेद कहा
 सोई सत्य है और श्रुतिभी कहती है तथाच श्रुतिः ॥ नित्यो नि-
 त्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामानिति श्रु-
 तिका अर्थ जो बहुतनित्यचेतन हैं तिनका जो एक नित्यचेतन
 है सो कामना पूरण करता है. जो कोई कहै कि भेद अज्ञान कृत है
 तो यह उत्तर है कि, परमार्थ दृष्टिके अधिष्ठाता और आत्मयाथा-
 त्म्यसें नित्यही निवृत्त है अज्ञान जिनका ऐसे जो नित्य स्वरूप
 परम पुरुष श्रीकृष्ण तिनके विषे अज्ञानकृत भेद दर्शनका कार्य
 कैसे संभव? तहाभी कोई कहै कि श्रीकृष्णभी अज्ञ है तो उत्तर है
 कि, भज्ञका उपदेश भी प्रमाण नहीं जब कोई कहै कि श्रीकृष्णने

अभेद निश्चय किया है इसवास्ते बाधितानुवृत्ति यह भेदज्ञान रूप अल्पज्ञता जलेहुये वस्त्रतुल्यबंधनकारक नहीं है. तबउत्तर यह है कि, मरीचिकांजल याने मृगतृणाजल सो बाधितानुवृत्ति है उसके जाननेवाला उसमेजल लेनेक्यों जायगा जो गया तो अज्ञ है ऐसेही जो भेद मिथ्या है श्री गीताशास्त्रमे उपदेश करतेहैं तो यहशास्त्र श्री उपदेशकारकभी अप्रमाण है औ भेदविना उपदेशकाभी संभव नहीं, औ परमेश्वरमे यहभी संभव नहीं है कि प्रथम अज्ञथे शास्त्र अध्ययनसे ज्ञान भया जिसको शास्त्राध्ययनसे ज्ञान होता है उसको कोई कोई कालमे अज्ञानभी होता है यह संभवभी श्रीकृष्णमे नहीं है, तथाच श्रुतिः यः सर्वज्ञः सर्वविंत् पराऽस्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रियाच वेदाहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ॥ भविष्याणि च भूतानि मां तु वेदन कश्चन ॥ इत्यादि करिके भेदही प्रतीत होता है भेदविना उपदेश किसको करे तहां कोई कहै कि अर्जुन कृष्णका प्रतिबिंब है सो आपको आपही कहते हैं तहां समझना चाहिये कि, मणि काच इत्यादिकौमे आपका प्रतिबिंब देखिके सेवाय उन्मत्त याने दिवाने विना कोईभी न वातैकरैगा औ जो करे सो उन्मत्त इसवास्ते उसके वाक्योंकाभी प्रमाण नहीं, जिसको गुरुपरंपरासेभी अभेदज्ञान होयगा उसकोभी उपदेश करनेका संभव नहीं हो सकता. इसवास्ते शिष्यको उपदेश देनेका प्रयोजन नहीं. जो कहै कि गुरु और ज्ञान कल्पित है देनेका शिष्य और ज्ञान भी कल्पित हुआतीभी उपदेश निष्प्रयोजन है. इसवास्ते भेदही सिद्ध है यह निश्चय होता है. ॥ १२ ॥

मूलम्-

देहिनोस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ॥

तथादेहांतरप्राप्तिर्धीरस्तत्रनमुह्यति ॥ १३ ॥

अन्वयः

यथाऽस्मिन् देहेदेहिनःकौमारं यौवनंजरा भवन्तितथा
देहांतरप्राप्तिः भवति तत्र धीरः, न मुह्यति ॥ १३ ॥

टीका.

जैसे इस देहमें जीवकी कुमारअवस्था, यौवन अवस्था और
वृद्धावस्था, होती हैं याने कुमार अवस्था नष्ट वहै के यौवन,
नष्ट होनेसे वृद्ध ऐसेही यह देह नष्ट भया दूसरा मिलैगा;
तहां स्थिर बुद्धी वाले धीर पुरुष शोक नहीं करते हैं तहां भगवान-
का अभिप्राय यह है कि, शास्त्रीय स्ववर्ण के उचित युद्ध करौ. १३

मूलम्.

मात्रास्पर्शास्तुकौंतेयशीतोष्णसुखदुःखदाः ॥

आगमापायिनो नित्यास्तांस्तितिक्षस्वभारत

॥ १४ ॥ यंहिनव्यथंत्येतेपुरुषंपुरुषर्षभ ॥ सम

दुःखसुखंधीरंसोऽमृतत्वायकल्पते ॥ १५ ॥

अन्वयः

हे कौंतेय मात्रास्पर्शाः तु शीतोष्णसुखदुःखदाः संतिहे

भारत ते आगमापायिनः अनित्याः तान् तितिक्षस्व

॥ १४ ॥ हे पुरुषर्षभ समदुःखसुखं यं धीरं पुरुषं हि ए-

ते न व्यथयन्ति सः पुरुषः अमृतत्वाय कल्पते ॥ १५ ॥

टीका.

हे कुंतिके पुत्र! मात्रा कहिये इंद्रिय तिनके स्पर्श शब्द स्पर्श
रूपादिक ये शीत उष्ण याने मृदु परुषादिक शब्द शीतोष्णश
स्वादिप्रहार संयोग वियोगादिक दुःख के देनेवाले हैं, तौभी
हे भारत, याने तुम भरतवंशी हौं. ये आगमापायी याने होते

औ जाते हैं, अर्थात् इनके किये हुये सुखदुःख होते औ जाते भी हैं, इसवास्ते ये अनित्य हैं इनको सहन करौ ॥ १४ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ सुख औ दुःख समान हैं जिसके ऐसे जिस धीर पुरुषको ये पीडित नहीं करिसकते हैं सो मोक्षको प्राप्त होता है. ॥ १५ ॥

मूलम्.

नाऽसतो विद्यते भावो नाऽभावो विद्यते सतः ॥

उभयोरपि दृष्टोऽतस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १६ ॥

अन्वयः

असतः भावः न विद्यते सतः अभावः न विद्यते तत्त्वदर्शिभिः

अनयोः उभयोः अपि अंतः दृष्टः ॥ १६ ॥

टीका.

जो आत्मन कानित्यत्व स्वाभाविक औ देहोंका नाशित्वभी अंशोक्तनिमित्तं कंहा गतासूनगतासूंश्चनानुशोचंतिपंडिताः ॥ इसवाक्य करिके सो अवस्पष्ट दर्शाते हैं, नासत इत्यादि करिके असत जो शरीर है उसका सद्भाव नहीं होता है. सत् जो आत्मा तिसका असद्भाव नहीं ऐसे देह औ आत्मा इन दोनोंका तत्त्वज्ञानी पुरुषोंने निर्णय करि देखा है. देह अचिद्वस्तु है इसका असत् स्वरूप है आत्मा चेतन है इसका सत् स्वरूप है ऐसा निर्णय किया है सोई यही अर्थअगाडिके श्लोकोंमे स्पष्ट करेंगे. अविनाशितु तद्विद्धि औ अंतवंतइमेदेहा इन श्लोकोंकरिके ॥ १६ ॥

मूलम्.

अविनाशितु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम् ॥ विनाश

मव्ययस्यास्य न कश्चित्कर्तुमर्हसि ॥ १७ ॥ अंत ति

वंतइमेदेहानित्यस्योक्ताशरीरिणः ॥ अनाशिनो

ऽप्रमेयस्य तस्माद्ब्रूयस्व भारत ॥ १८ ॥

अन्वयः

येन इदं सर्वं ततं तत् अविनाशि विद्धि अस्य अव्यय
स्य विनाशं कर्तुं कश्चित् न अर्हति ॥ १७ ॥ अनाशिनः
अप्रमेयस्य नित्यस्य शरीरिणः इमे देहाः श्रंतवन्तः उक्ताः
हे भारत तस्मात् युद्धयस्व ॥ १८ ॥

टीका

आत्मका अविनाशित्व कैसे है सो कहते हैं, जिस आत्मत्व
करिके यह सर्व अचेतन तत्व व्याप्त है वही आत्मतत्वको अ-
विनाशि जानौ, जो व्यापक वस्तु होता है सो अति सूक्ष्म होता
है, उसको दूसरा कोई भी नहीं नाश करि सकता है. और जिसमे
व्याप्त होता है उसको शस्त्र मुद्गरादिक वायु उत्पन्न करिके नाश
करिसकते हैं. इसवास्ते आत्मतत्व अविनाशि है क्यों कि अ-
व्यय है अर्थात् घटता बढ़ता नहीं. ॥ १७ ॥ नाशरहित औ प्र-
माणरहित नित्य ऐसा जो शरीरान्तर्यामि आत्मा तिसके जो ये
देह हैं ये ही नाशवान हैं, क्यों कि, ये देह घटते बढ़ते हैं जो घटे
बढ़ेगा उसका नाशभी होयगा औ यह अप्रमेय हैं अर्थात् अ-
चित इसका प्रमाण नहीं करिसकता और अचितका यह जान
नेवाला है-तेरहवे अध्यायमे कहेंगे. एतद्योवेत्तितं प्राहुः क्षेत्रज्ञमि-
तितद्विदः ॥ यह आत्मा देहके बढने घटनेसे बढता घटता नहीं औ
जानता है जैसे कि इस देहको मैं जानता हौं ऐसे देहसे यह आ-
त्मा अन्य प्रतीत होता है औ एकरस है नित्य है इसवास्ते आ-
त्माको अविनाशी औ देहनाशवान है. ये दोनों शोचनेयोग्य न-
हीं इसवास्ते शस्त्रपातपरुष वाक्यादिकस्पर्श आपमे अथवा दु-
सरोंमे प्राप्त भयोंको धीरज करिके सहन करौ औ मोक्षसाधन
फलानुसंधानरहित युद्धरूप आपका कर्म प्रारंभ करौ. ॥ १८ ॥

मूलम्.

यएनंवेत्तिहंतारंयश्चैनंमन्यतेहतम् ॥

उभौतौनविजानीतौनायंहंतिनहन्यते ॥ १९ ॥

अन्वयः

यः एनं हंतारं वेत्ति च यः एनं हतं मन्यते तौ उभौ न विजानीत. अयं न हंति न हन्यते ॥ १९ ॥

टीका.

जो इस आत्माको मारनेवाला करिके जानता है, औ जो इसके दूसरे कारणों करिके मरा जाता है, वै दोनों अज्ञानी है. यह आत्मा न मारता है न मरता है. जीना मरना शरीरसंयोग औ वियोगका नाम है. ब्राह्मण हिंसादिक न करनेका मतलब यह है कि, उत्तम शरीर बडे पुण्यसे मिलता है, इसवास्ते वियोग न करना. ॥ १९ ॥

मूलम्.

नजायतेघ्नियतेवाकदाचिन्नायंभूत्वाभवितावा

नभूयः ॥ अजोनित्यःशाश्वतोऽयंपुराणोनहन्यतेहैन्यमानेशरीरे ॥ २० ॥

अन्वयः

अयं आत्मा कदाचित् न जायते वा न घ्नियते न भूत्वा वा भूयः न भविता अयं अजःनित्यः शाश्वतः पुराणः शरीरे हन्यमाने न हन्यते ॥ २० ॥

टीका.

यह आत्मा कोई कालमेंभी न जन्मता है न मरता है. औ न भया है न फिर होईगा, इसवास्ते यह अजन्मा है, औ नित्य नाम एकरस है. शाश्वत सदा रहने वाला है पुरा-

३४ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका।

ए अर्थात् पहिलेभी ऐसाही था, इन कारणोंसे शरीर नष्ट होनेसेभी यह मरता नहीं ॥ २० ॥

मूलम. ५

वेदाविनाशिनं नित्यं एनमजमव्ययम् ॥

कथं सपुरुषः पार्थ कं घातयति हंतिकम् ॥ २१ ॥

अन्वयः

यः एनं अजं अव्ययं नित्यं अविनाशिनं वेद हे पार्थ
सः पुरुषः ककथं घातयति कं कथं हंति ॥ २१ ॥

टीका.

जो पुरुष इस आत्माको अजन्मा अविकारी नित्य एक-
रस नाशरहित जानता है, हे अर्जुन! सो पुरुष किसको औ
कैसे मरवावे, तथा किसको कैसे मारता है, अर्थात् इनको
मै मरवावोंगा अथवा मारोंगा, यह शोच करना अनात्मज्ञान
मूल है, इसलिये शोक त्यागिके युद्ध करौ ॥ २१ ॥

मूलम.

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृण्हाति न
शोऽपराणि ॥ तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्य
न्यानि संयाति नवानि देही ॥ २२ ॥

अन्वयः

यथा जीर्णानि वासांसि विहाय नरः अपराणि नवा-
नि गृण्हाति तथा जीर्णानि देहानि विहाय देही अ-
न्यानि नवानि संयाति ॥ २२ ॥

टीका.

यद्यपि शरीरनाश होनेसे आत्माका नाशनहीं तथापि शरी-
र वियोगका तो शोच करनाही चाहिये; ऐसा अर्जुनका अभि-

प्रायः समुद्रिके श्रीकृष्ण कहते हैं कि, जैसे जीर्णवस्त्रोंका त्याग करिके मनुष्यको नवीन वस्त्र गृहण करता है, तैसेही जीर्णदेहको त्यागिके यह जीव और नई देहको प्राप्त होता है. अर्थात् धर्मयुद्धमे शरीर त्यागनेसे मोक्ष अथवा दिव्य देवशरीरकी प्राप्ति होती है. इसवास्ते शोकका कारण नहीं है. ॥ २२ ॥

मूलम्.

नैनंछिंदंतिशस्त्राणिनैनं दहतिपावकः ॥ नचैनंक्ले
दयंत्यापोनशोषयतिमारुतः ॥ २३ ॥ अच्छेद्योऽ
यमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्यएवच ॥ नित्यःसर्व
गतःस्थाणुरचलोऽयंसनातनः ॥ २४ ॥ अव्यक्तो
यमचिंत्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ॥ तस्मादेवं
विदित्वैनंनानुशोचितुमर्हसि ॥ २५ ॥

अन्वयः

शस्त्राणि एनं न छिंदति च पावकः एनं न दहति च आपः
एनं न क्लेदयन्ति च मारुतः एनं न शोषयति ॥ २३ ॥ अतः
अयं अच्छेद्यः अयं अदाह्यः अयं अक्लेद्यः च अयं अशो-
ष्य एव अयं नित्यः सर्वगतः स्थाणुः अचलः सनातनः ॥
॥ २४ ॥ अयं अव्यक्तः अचिंत्यः अयं अविकार्यः उच्य-
ते तस्मात् एनं एवं विदित्वा अनुशोचितुं न अर्हसि ॥ २५ ॥

टीका.

अविनाशितुतद्विद्धि येन सर्वमिदंततं॥ यह वाक्य जो प्रथम
कहाथा उसी अविनाशित्वको सुखसे समुझनेको फिरिभी दृढ
करते हैं, शस्त्र इसको छेदन नहीं करते हैं. अग्नि जलाता नहीं. ज
लभि जोता नहीं. पवनमुखाता नहीं. इस कारणसे यह छेदने
योग्य नहीं, जलाने योग्य नहीं. भीजने योग्य नहीं औ सुखने

योग्य भी नहीं। इसीसे नित्य है सर्व देव मनुष्यादि शरीरोंमें व्यापक है, स्थिर स्वभाव अचल और सनातन है, अति सु-
 क्षमत्वसे प्रगट दिखाता नहीं और चिंतन करनेमें भी आता
 नहीं और विकाररहित है, इसवास्ते इसको ऐसा जानिके
 तुम शोच करने योग्य नहीं हो। ॥ २४ ॥

मूलम्.

अथैतन्नित्यजातं नित्यं वामन्यसे मृतम् ॥ तथा
 पित्वं महाबाहो नैनं शोचितुमर्हसि ॥ २६ ॥ जा
 तस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्ममृतस्य च ॥ तस्माद्
 परिहार्यैर्येन त्वं शोचितुमर्हसि ॥ २७ ॥

हे महाबाहो अथ एतन्नित्यजातं वानित्यं मृतं मन्यसे
 तथापि त्वं एतं शोचितुं न अर्हसि ॥ २६ ॥ जातस्य हि
 मृत्युः ध्रुवः च मृतस्य जन्म ध्रुवं तस्मात् अपरिहार्यैर्ये
 त्वं शोचितुं न अर्हसि ॥ २७ ॥

टीका.

भगवान् अर्जुनको कहते भये कि, हे महाबाहो, जो तुम इस
 आत्माको नित्य जन्मा अथवा नित्य मराही समझोगे तो भी
 शोच न करना चाहिये, कारण कि, जन्ममरण भी अनिवार्य हैं।
 ॥ २६ ॥ जैसे कि जो जन्मा है उसका मृत्यु निश्चय है और मरेका ज-
 न्म भी निश्चय है, इसवास्ते जिसका परिहार नहीं, उसका शोच भी
 न करना चाहिये, सो तुम भी शोच न करौ। ॥ २७ ॥

मूलम्.

अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि भारत ॥ अ
 व्यक्तनिधनान्येव तत्र का परिदेवना ॥ २८ ॥

हे भारत भूतानि अव्यक्तादीनि व्यक्तमध्यानि अव्य-
क्तनिधनानि एव तत्र परिदेवना का ॥ २८ ॥

टीका

विद्यमान द्रव्यकी प्रथम अवस्थाकी विरोधी अवस्थातर प्राप्ति देखनेसे जो अति अल्प शोक है उसका भी मनुष्यादिकों-
में शोकका संभव नहीं सो कहते हैं. हे भारत, भरतवंशोत्पन्न
अर्जुन! मनुष्यादिक भूत हैं, तौ भी जन्मसे प्रथम दीखते नथे औ
जन्मसे पीछे मरणके आदि ऐसे मध्यमे दीखते हैं. फिरी अंतमें-
भी नहीं दीखते हैं, तहां शोच क्यों करना चाहिये? ॥ २९ ॥

मूलम्.

आश्चर्यवत्पश्यतिकश्चिदेनमाश्चर्यवद्बदतितथैव
चान्यः ॥ आश्चर्यवच्चैनमन्यःशृणोतिश्रुत्वाप्ये
नवेदनचैवकश्चित् ॥ २९ ॥

अन्वयः

कश्चित् एनं आश्चर्यवत् पश्यति च तथा एव अन्यः आ-
श्चर्यवत् बदति च अन्यः एनं आश्चर्यवत् शृणोति च क-
श्चित् एनं श्रुत्वा अपि एव न वेद ॥ २९ ॥

टीका..

शरीरहीको आत्मा समुझे तौ भी शोकका कारण नहीं ऐसा कहा.
और शरीरसे पृथक् जो आत्मा तिसके विषे द्रष्टा, वक्ता, श्रोता औ
सुनिके जाननेवाला भी दुर्लभ है, सो कहते हैं. पूर्वकहे लक्षणयुक्त
समस्तसे विलक्षण जो आत्मा इसको कोई एक बडे तपसे जि-
सके पाप नष्ट भये होय औ पुण्य बढा होय ऐसा मनुष्य आ-
श्चर्य सदृश देखता है. तैसाही और मनुष्य आश्चर्य सदृश कह-

ता है औ तैसाही और पुरुष इसको आश्चर्य सरीखा सुनता है औ कोई एक मनुष्य सुनिकैभी निश्चै जानता नहीं; अर्थात् इस आत्मस्वरूपका निश्चय देखना कहना सुनना औ जाननाभी दुर्लभ है यह, कहा ॥ -२९- ॥

मूलम्.

देही नित्यमवधोऽयं देहे सर्वस्य भारत ॥ तस्मात्

त्वं सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ३० ॥

अन्वयः

हे भारत सर्वस्य देहे अयं देही नित्यं अवध्यः तस्मात्
त्वं सर्वाणि भूतानि शोचितुं न अर्हसि ॥ ३० ॥

टीका.

सर्व देवादिक चराचर शरीरोंमें यह जीव अवध्य है, अर्थात् उन देहोंके नष्ट होनेसे इसका नाश नहीं होता है, इसवास्ते इन सर्व भीष्मादिकोंका शोच करना तुमको योग्य नहीं है ॥ ३० ॥

मूलम्.

स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकंपितुमर्हसि ॥ धर्म्या

द्वियुद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ॥ ३१ ॥

अन्वयः

स्वधर्म अपि अवेक्ष्य त्वं विकंपितुं न अर्हसि क्षत्रियस्य
धर्म्यात् युद्धात् अन्यत् श्रेयः ही न विद्यते ॥ ३१ ॥

टीका.

जो यह वर्तमान युद्ध प्राणि हितायुक्त है तौभी अग्निष्टोम आदि यज्ञ सदृश तुह्यारा स्वधर्म है; इसको जानिकेभी तुमको दया न करना चाहिये, क्यों कि, क्षत्रियको धर्म युद्धके सेवाय दूसरा उपाय कल्याणकारक नहीं है जैसे अग्निष्टोम यज्ञमें जो छत्र

मारा जाता है उसका तुच्छछागदेह छूटके देवशरीर मिलता है इसीवास्ते उसयज्ञमें ब्राह्मणको छागमारनेका दोष न देखना चाहिये; उसमें पुण्यही है-ऐसेही युद्धमें जोशस्त्रलैके सन्मुख आयके लडै उसपर शस्त्र चलानेका दोष नहीं, क्योंकि, शस्त्रवाक्य है श्लोक ॥ द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमंडलभेदिनौ । यः सन्नाद्योगयुक्तश्चरणे चापि मुखेहतः ॥ १ ॥ इसका अर्थदोपुरुष मूर्यमंडलभेदन करिके श्रेष्ठपदको प्राप्त होते है, एकयोगयुक्तसंन्यासी, दूसरा जो रणमें सन्मुख युद्ध करिके मरता है, सो जबकी मनुष्य शरीरसे छूटके दिव्यागतीको प्राप्तहुआ, तब उसकर्ममें पाप नहीं, पुण्य ही है- जैसे किसीकी फटी कमली उतारिली, औ दुसाला ओढाया तब वह कार्य श्रेष्ठ है वा नीच है सो विचारिके युद्ध करौ ३१

मूलम्.

यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ॥

सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥ ३२ ॥

अन्वयः

हे पार्थ यदृच्छया उपपन्नं च अपावृतं स्वर्गद्वारं ईदृशं युद्धं सुखिनः क्षत्रियाः लभन्ते ॥ ३२ ॥

टीका.

हे पृथापुत्र, आपहीसे यत्नविना प्राप्त भया औ खुला भया स्वर्गका द्वार रूप ऐसा युद्ध सुखी अर्थात् पुण्यवान् क्षत्रिय पावते हैं. ॥ ३२ ॥

मूलम्.

अथ चेत्वमिमं धर्मसंग्रामं न करिष्यसि ॥ ततः

स्वधर्मकीर्तिं चाहित्वा पापमवाप्स्यसि ॥ ३३ ॥

अथकीर्तिं चापि भूतानि कथयिष्यन्ति तेऽन्ययाम ॥

संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

अन्वयः

अथ चेत् त्वं इमं धर्मं संग्रामं न करिष्यसि ततः स्वधर्मं च कीर्तिं हित्वा पापं अवाप्स्यसि च भूतानि ते अव्ययां अकीर्तिं कथायिष्यन्ति च संभावितस्य अकीर्तिः मरणात् अतिरिच्यते ॥ ३४ ॥

टीका.

जो कदाचित् तुम यह धर्मयुद्ध न करोगे तो स्वधर्म और कीर्तिकाभी नाश करिके पापको प्राप्त होउगे; और लोकभी तुम्हारी अखंड अकीर्तिवर्णनकरेंगे, सो अकीर्तिश्रेष्ठ और यशवाले पुरुषको मरणसेभी अधिक है. ॥ ३४ ॥

मूलम्.

भयाद्रणादुपरतं मंस्यंते त्वां महारथाः ॥ येषां च त्वं बहुमतो भूत्वा यास्यसि लाघवम् ॥ ३५ ॥ अवाच्यवादांश्च बहून् वदिष्यन्ति तवाहिताः ॥ निंदन्तस्तव सामर्थ्यं ततो दुःखतरं नु किम् ॥ ३६ ॥

अन्वयः

येषां त्वं बहुमतः भूत्वा तेषां लाघवं यास्यसि ते च महारथाः त्वां भयात् रणात् उपरतं मंस्यंते अतः तव अहिताः तव सामर्थ्यं निंदन्तः संतः बहून् अवाच्यवादान् वदिष्यन्ति ततः किं नु दुःखतरं अस्ति ॥ ३६ ॥

टीका.

अहो! जो मैं बंधुजनोंके स्नेह और करुणासे युद्ध न करौंगा, तो मेरी अकीर्ति कैसी होयगी? ऐसा अर्जुनका अभिप्राय समुद्रिके श्रीकृष्ण भगवान् कहने लगे कि, जिन कर्ण, दुर्योधनादिक

महारथियोंके इस कालसे प्रथम शूर वैरी ऐसे बहु मान्यये
तिनहीके अब युद्ध नकरनेसे अपमान योग्य होउगे, वेही महा-
रथी तुमको भयसे युद्ध न कियां, ऐसे मानैगे इसी कारणसे ये
जो दुर्योधनादिक तुम्हारे शत्रु तुम्हारी समर्थताको निंदते भये
न बोलनेके वाक्य बोलैंगे; अर्थात् कहैंगे कि अर्जुनकी सामर्थ्य
कुछ शूर वीरोंके सन्मुख नहीं है. केवल शोभाके वास्ते शस्त्र धा-
रण करता है, जैसे स्त्रियोंके आभूषणमें सिंह औ सर्पादिक चि-
त्रित होते हैं औ वे पहिरती हैं, परंतु साक्षात् सिंह सर्पादिक दे-
खनेसेही प्राण त्यागैगी ऐसेही अर्जुनके धनुष्यादिक शस्त्र हैं.
जब ऐसे वे बोलैंगे तब इससे अधिक दुःख कौनसा है, अर्थात्
इस दुःखसे मरणाही श्रेष्ठ मानौंगे. ॥ ३६ ॥

मूलम्.

हतोवाप्राप्स्यसिस्वर्गंजित्वावाभोक्ष्यसेमहीं ॥

तस्मादुत्तिष्ठकौंतेययुद्धायकृतनिश्चयः ॥ ३७ ॥

सुखदुःखेसमेकृत्वालाभालाभौजयाजयौ ॥

ततोयुद्धाययुज्यस्वनैवंपापमवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

अन्वयः

हे कौंतेय हतः वा स्वर्गं प्राप्स्यसि जित्वा वा महीं भो

क्ष्यसे तस्मात् युद्धाय कृतनिश्चयः सन् उत्तिष्ठ ॥ ३७ ॥

सुखदुःखे समेकृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ समौकृत्वा

ततः युद्धाययुज्यस्व एवं पापं न अवाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

टीका.

उस निंदाके दुःखसे शूरवीरको युद्धमें अन्यसे मारना अथवा
औरको मारना यही श्रेष्ठ हैं, ऐसा श्रीकृष्ण कहते हैं, कि धर्मयु-
द्धमें जो दूसरोंके मारनेसे मरौगे तो मोक्ष मिलैगा. औ जो दू-

सरे शत्रुनको मारौगे तौ पृथ्वीका अकंटक राज्य भोगैगे. तिस वास्ते हे कुंतीपुत्र! तुम युद्धका निश्चय करिके उठो, और सुख-दुःख लाभ अलाभ जय अजय इनको समान मानिके फिरी युद्धका उद्योग करौ, इस प्रकारसे पाप न होयगा. जो फलानुसंधान रहित युद्धरूपस्वधर्म करौगे तौ मोक्षही होयगा. स्वेस्वेकर्म-पंभिरतः सिद्धिं विंदंति मानवः इस प्रमाणसे मोक्षही होयगा ३८

मूलम्-

एषातेऽभिहितासांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमांशृणु ॥
बुद्ध्या युक्तो यथापार्थ कर्मबंधं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

अन्वयः

हे पार्थ एषा बुद्धिः ते सांख्ये अभिहिता योगेतु इमां शृ-
णु यथा बुद्ध्या युक्तः त्वं कर्मबंधं प्रहास्यसि ॥ ३९ ॥

टीका.

ऐसे आत्मस्वरूप उपदेश करिके अब उस आत्मस्वरूपज्ञानपूर्वक मोक्ष साधनभूत कर्मयोग कहनेको प्रारंभ करते हैं. हे पृथापुत्र यह बुद्धि मैंने तुमको सांख्यविषयमे कही अर्थात् आत्म अनात्म विवेक विषयमें कही अब इसी बुद्धिको तुम योग अर्थात् कर्म योग विषयमे सुनौ जिस बुद्धि करिके तुम कर्मबंध अर्थात् संसारदुःखको छोड़ौगे ॥ ३९ ॥

मूलम्.

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायोनविद्यते ॥
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् ॥ ४० ॥

अन्वयः

इह अभिक्रमनाशः न अस्ति प्रत्यवायः न विद्यते अ-
स्य धर्मस्य स्वल्पं अपि महतः भयात् त्रायते ॥ ४० ॥

टीका.

कहेंगे' जो बुद्धियुक्त कर्मयोग तिसकामाहात्म्य कहते हैं, इसबुद्धियुक्त कर्मयोगमें अर्थात् निष्काम कर्मयोगमें प्रारंभका भी नाश नहीं है, अर्थात् प्रारंभ करिके जो समाप्त नहोई तौभी वह निष्फल नहीं है, औन्यूनधिकताकाभी दोषनहीं है. इस धर्मका थोडा आरंभ भी सांसारिक बडे भयसे, रक्षण करता है. पार्थ नैवेहनामुत्रविनाशस्तस्यवियते ऐसे अगाडी कहेंगे. ॥ ४० ॥

मूलम.

व्यवसायात्मिकाबुद्धिरेकेहकुरुनन्दन ॥

बहुशाखाह्यनन्ताश्चबुद्ध्योऽव्यवसायिनाम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः

हे कुरुनन्दन व्यवसायात्मिका बुद्धिः एका च अव्यवसायिनां बुद्ध्यः बहुशाखाः च हि अनन्ताः संति ॥ ४१ ॥

टीका.

काम्य कर्म विषयिक बुद्धिसे मोक्ष साधन भूत बुद्धिको पृथक् देखाते हैं. इस शास्त्रीय स्वर्ग कर्ममें निश्चयात्मक बुद्धि एकही है. मुमुक्षुके करने योग्य कर्ममें जो बुद्धि है उसको व्यवसायात्मिका कहते हैं अर्थात् निश्चयात्मिकासो एकही है, इसमें आत्मस्वरूप निश्चय होता है औ काम्य कर्म विषयिक बुद्धि अव्यवसायात्मिका तहां कामाधिकारमें देहसे पृथक् आत्मस्वरूपका अस्तित्वमात्र है; परंतु आत्मस्वरूपका यथार्थ निश्चय नहीं इस निश्चयात्मक बुद्धिमें एक मोक्ष साधनही निमित्त सर्वकर्म हैं इसवास्ते एक है औ काम्यकर्म विषयिकमें स्वर्ग पुत्र पशु अन्न धन इत्यादिक अनेक कामना हैं इसवास्ते उन काम्य कर्मवालोंकी बुद्धि अनेक हैं तहां भी एक कामना निमित्त कर्म करिके अनेक

फलोंकी इच्छा करते हैं; जैसे कि पुत्र कामनासे यज्ञ करिके आयुष्य इत्यादिकिभी इच्छा करते हैं इसवास्ते बहुशाखा अर्थात् उन बुद्धियोंमे भी शाखें हैं इसवास्ते मोक्षसाधन भूतही कर्मश्रेष्ठ है यह अभिप्राय. ॥ ४३ ॥

मूलम्:

यामिमांपुष्पितांवाचंप्रवदंत्यविपश्चितः ॥ वेद
वादरताःपार्थनान्यदस्तीतिवादिनः ॥ ४२ ॥ का
मात्मनःस्वर्गपराजन्मकर्मफलप्रदां ॥ क्रियावि
शेषबहुलांभोगैश्वर्यगतिंप्रति ॥ ४३ ॥ भोगैश्वर्य
प्रसक्तानांतयापहतचेतसां ॥ व्यवसायात्मिका
बुद्धिःसमाधौनविधीयते ॥ ४४ ॥

अन्वयः

हेपार्थ! ये यां इमांपुष्पितां वाचं प्रवदन्ति तेषां समाधौ
व्यवसायात्मिकाबुद्धिःनविधीयते किंभूतास्तेअविपश्चितः
वेदवादरताः अन्यतनअस्ति इतिवादिनः कामात्मानः
स्वर्गपराः किंभूतां वाचं जन्मकर्मफलप्रदां भोगैश्वर्यगतिं
प्रतिक्रियाविशेषबहुलां कथंभूतानां तेषां भोगैश्वर्यप्रस
क्तानां तयापहतचेतसां ॥ ४३ ॥ इतिखंडान्वयः ॥ अथ
दंडान्वयः ॥ ये अविपश्चिताःवेदवादरताःअन्यतनअस्ति
इतिवादिनः कामात्मनः स्वर्गपराः एवंभूताःयां पुष्पितां
जन्मकर्मफलप्रदां भोगैश्वर्यगतिं प्रतिक्रियाविशेषबहुलां
महावाचंवदन्ति भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहतचेतसां
तेषां समाधौ व्यवसायात्मिकाबुद्धिःनविधीयते ॥ ४४ ॥

टीका.

जे अज्ञानी केवल वेदवाद करनेवाले अर्थात् वेदमे स्वर्ग-

दिक फल ग्रहण करनेवाले स्वर्ग प्राप्तिके समान दूसरा पदार्थ नहीं ऐसे कहनेवाले कामनामे है चित्त जिनका श्री आप भी स्वर्ग ही को श्रेष्ठ माननेवाला ऐसे जो पुष्पमात्र रमणीय औ जन्म कर्मरूप फलदायक तथा भोग औ ऐश्वर्य निमित्त क्रिया हैं बहुत जिसमें ऐसी इसवाणीको कहते हैं ऐसे भोग औ ऐश्वर्यमेआसक्त औ उसी वाणी करिके हरे गये हैं चित्त जिनके तिनके मनमें निश्चयात्मिक बुद्धि नहीं विधान होती है ॥४४॥

मूलम्.

त्रैगुण्यविषयावेदानिस्त्रैगुण्योभवारजुन ॥ निर्द्वंद्वो
नित्यसत्त्वस्थोनिर्योगक्षेमआत्मवान् ॥ ४५ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन वेदा त्रैगुण्यविषयाःत्वं निस्त्रैगुण्यःनिर्द्वंद्वः नित्यसत्त्वस्थः निर्योगक्षेमः आत्मवान्भव ॥ ४५ ॥

टीका

हजार हों माता पितासेभी अधिक पालन करनेवाले वेद सौ वै ऐसे अत्यल्प फलदायक औ पुनः जन्मप्रद कर्मोंको क्यों कहते हैं औ वेदोदित कर्मका त्याग करना कैसे कहते हैं, इस पर भगवान् कहते हैं कि, तीनिहू गुणजिनमें होय उनको त्रैगुण्य कहते हैं अर्थात् इसजगमे पुरुषबहुत्व है उनपुरुषनमे केतनेक सत्त्वगुणी, केतनेक रजोगुणी औ केतनेक तमोगुणी हैं उन सबोंके विषयनके बतानेवाले वेदही हैं तथा तुम निस्त्रैगुण्य हो अर्थात् रजोगुण तमोगुणोंको त्यागिके सात्त्विक होउ. औ निर्द्वंद्व याने सांसारिकसुख दुःखादिसे रहित होउ अर्थात् इनका सहन करौ औ नित्य सत्त्व गुणमें स्थित होउ; अर्थात् निष्कामकर्म करौ औ निर्योग क्षेम याने अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिको योग्य कहते

हैं औ प्राप्तकी रक्षाको क्षेम कहते हैं तुम उन दोनौकी इच्छा न-
 करौ औ आत्मस्वरूपके देखनेका उद्योग करौ दूसरा अर्थ वेदाः
 त्रैगुण्यविषयाः वेदतीनों गुणोंके प्रवर्त्त करनेवाले हैं, इसवास्ते
 हे अर्जुन! तुम निस्त्रैगुण्यहोउ याने निश्चैवैदिक कर्म करौ निस्त्रै-
 गुण्य शब्दके आदिमे जो निर भव्यय है उसका निश्चय अर्थभी
 होता है निर्निश्चय निषेधयोः ऐसे अमरकोशका प्रमाण है तहां
 अर्जुन के शंका आईकि, वैदिक कर्म तौ अनेक हैं मै कौनसे कर्म
 करौ तिसपर भगवान् बोले कि, निर्द्वंद्व वृहैके नित्य सात्त्विक कर्म
 करौ निर्द्वंद्व अर्थात् सुख दुःख लाभ अलाभ जय पराजय पाप
 पुण्य इत्यादिक समान मानिके सहन करते भये नित्य सत्वस्थ
 याने निष्काम कर्म करौ औ निर्योग क्षेमः याने योग कहते हैं
 सिद्धि औ असिद्धिकी समताको उसका निश्चयही रक्षण करौ
 सिध्यं सिध्योःसमत्वं योगः ऐसा अगाडी कहेंगे आत्मवान् याने
 अत्मा क्या वस्तु है उसको जानौ अथवा आत्मा जो मन है
 इसको वश करौ. ॥ ४५ ॥

मूलम्.

यावानर्थउदपानेसर्वतःसंप्लुतोदके ॥ तावान्सर्वे
 पुवेदेपुत्राह्यणस्यविजानतः ॥ ४६ ॥

अन्वयः

सर्वतः संप्लुतोदके उदपाने यावान् अर्थः स्यात् विजानतः
 ब्राह्मणस्य सर्वेषु वेदेषु तावान् अर्थः भवति ॥ ४६ ॥

टीका.

प्रथम जो कहा कि वेदमे त्रिगुणात्मक कर्म कहे हैं तहां तुम
 सात्त्विक कर्म करौ इसका खुलासा करते है. समग्र वेदोक्त कर्म
 सर्वके ग्रहण करने योग्य नहीं है क्यों की. जैसे कन्या बावडी त-

लाव इत्यादिक जलाशयोंमें सर्वत्र पानीभरा है, तथासे मनुष्यको जेतना चाहिये वतनाही लेता है, ऐसेही ब्राह्मण जो ब्रह्मपरमात्माका उपासक उसको सर्व वेदोंसे सात्विक ग्रहण करना चाहिये ॥ ४६ ॥

मूलम्.

कर्मण्येवाऽधिकारस्तेमा फलेषु कदाचन ॥ मा कर्म फलहेतुभूर्मातेसंगोऽस्त्वकर्मणि ॥ ४७ ॥

अन्वयः

ते तव कर्मणि एव अधिकारः अस्ति फलेषु कदाचन मा त्वं कर्मफलहेतुः मा भूः ते अकर्मणि संगः मा अस्तु ॥ ४७ ॥

टीका.

अब सत्त्वगुणमें स्थित जो मुमुक्षु तिसको यतनाही ग्रहण करना चाहिये सो कहते हैं. नित्य नैमित्त्य औ, काम्य इनमें कोईभी फल करिके युक्त जो सुननेमें आवै कर्म उसमें केवल कर्महीमें तुमको अधिकार है. फलबंधनकारक है इसवास्ते फलमें कोई कालमेंभी नहीं और जो कर्म करौ उसका कर्तृत्वभी तुम्हारे विषे न होउ औ फलकेभी भोक्तृत्वमें तुम कारण न होउ औ अकर्म जो कर्मका न करना जैसे कि तुमने कहा कि, मैं युद्ध न करौंगा; ऐसे अकर्ममेंभी तुम्हारी निष्ठा न होय. तात्पर्य कि कर्म करना योग्य है कारण कि अगाडी लिखैंग न कर्मणामनारंभो नैष्कर्म्यैपुरुषो श्रुते ॥ इसलिये कर्म करना फलकी इच्छा न करना निष्काम कर्मसे मोक्ष होती है. ॥ ४७ ॥

मूलम्.

योगस्थः कुरु कर्माणि संगंत्यक्त्वा धनं जय ॥

सिध्यसिध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते ॥ ४८ ॥

तदागंतासिनिर्वेदंश्रोतव्यस्यश्रुतस्यच ॥ ५२ ॥

अन्वयः

यदा ते बुद्धिः मोहकलिलं व्यतितरिष्यति तदां श्रोत-
व्यस्यच श्रुतस्यच निर्वेदं गंतासि ॥ ५२ ॥

टीका.

कहे भये प्रकार करिके कर्ममेऽप्रवर्त्त औ उसी वृत्तिकरिके
नष्ट भये हैं पाप जिसके ऐसे जोतुम सो तुझारी बुद्धि मोहरूप-
पापको छोडिकेअतिशुद्ध होइगी, तब जो मेरेसे इस कालसे प्र-
थम जो त्यागनेको सुना औ जो श्रव इस कालसे अगाडी फ-
लादिक सुनौगे उसके वैराग्यको आपही प्राप्त होउगे ॥ ५२ ॥

मूलम्.

श्रुतिविप्रतिपन्नातेयदास्थास्यतिनिश्चला ॥

समाधावचलाबुद्धिस्तदायोगमवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

अन्वयः

ते बुद्धिः श्रुतिविप्रतिपन्ना अचला यदा समाधौ निश्चला
स्यास्यति तदा योगं अवाप्स्यसि ॥ ५३ ॥

टीका.

योगमें इसको सुनौ इत्यादिके करिके कहा हुआ जो आ-
त्मयाथात्म्य ज्ञानपूर्वक बुद्धिविशेष तिस करिके संस्कार कि-
या हुआ जो कर्मानुष्ठान तिसका लक्षणभूत योगसंज्ञक फल
कहते हैं; श्रुतिजो श्रवण सो मेरेसे सुनिके विशेष करिके सूक्ष्म
तत्व विषयिक स्वयं अचल एकरूप ऐसी जो तुझारी बुद्धि सो
जब कर्मानुष्ठान करिके निर्मल किये भये मनमे निश्चल स्थित
होयगी, तब योग यानेआत्मदर्शन पावौगे ॥ ५३ ॥

अर्जुन उवाच ॥ स्थितप्रज्ञस्य काभापासमाधि
स्थस्य केशव ॥ स्थितधीः किंप्रभापेत किमासी
तत्र जेत किम् ॥ ५४ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच ॥ हे केशव स्थितप्रज्ञस्य समाधिस्थस्य का-
भापा स्थितधीः किंप्रभापेत किं आसीत् किं ब्रजेत् ॥ ५४ ॥

टीका.

जब भगवान् ने पृथाके पुत्र अर्जुनको ऐसे उपदेश किया तब वह अर्जुन निःसंग कर्मानुष्ठानरूप कर्मयोग साध्य जो योगसाधनभूत स्थितप्रज्ञता तिसका स्वरूप औ स्थितबुद्धिपुरुषका अनुष्ठानप्रकार पूछते भये. हे केशव! समाधिस्थ स्थितप्रज्ञ पुरुषका स्वरूप कैसा है औ स्थितप्रज्ञ अर्थात् स्थिर बुद्धिवाला पुरुष कैसा बोलता है कैसे बैठता है औ कैसे चलता है सो कहौ. ॥ ५४ ॥

मूलम्

श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ प्रजहाति यदा कामान् सर्वा
न्पार्थ मनोगतान् ॥ आत्मन्येवात्मना तुष्टः स्थित
प्रज्ञस्तदोच्यते ॥ ५५ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच ॥ हे पार्थ यदा आत्मनि एव आत्मना तुष्टः सन् मनोगतान् सर्वान् कामान् प्रजहाति तदा स्थितप्रज्ञः उच्यते ॥ ५५ ॥

टीका.

अब श्रीकृष्णभगवान् स्थिरबुद्धिवालेका स्वरूप कहते हैं तब ऐसा है कि, जब किसीका चाल चलन कहा तब उसका स्वरूप कहि चुके, इसवास्ते स्थिरबुद्धिकी वृत्ति अर्थात् चाल यानेरहनी

हे कुंतीपुत्र! आत्मदर्शन विना विषयानुराग निवर्त्त होतान-
 औ विषयानुसार निवर्त्त होने विना ज्ञानी पुरुष यत्न करता
 तौभी उसकी बलवान इंद्रिय हठिके मनको हरण करती
 श्रयात् मनको क्षोभायमान करती हैं. ॥ ६० ॥

मूलम्.

तानिसर्वाणिसंयम्ययुक्तआसीतमत्परः ॥

वशेहियस्येन्द्रियाणितस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥६१॥

अन्वयः

युक्तः योगयुक्तः पुरुषः तानि सर्वाणि संयम्य मत्परः आ-
 सीत इंद्रियाणि यस्य वशे संति तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५१

टीका.

योगी पुरुष उनसब इंद्रियोंका संयम करिके मेरेही स्वा-
 धीन व्हे रहे ये इंद्रिय जिसके वशहै उसकी बुद्धि प्रतिष्ठितहै;
 इस करिके जो अर्जुनने पूछाथा कि, स्थितप्रज्ञ कैसे रहे उस
 का उत्तरभी भया. ॥ ६१ ॥

मूलम्.

ध्यायतोविषयान्पुंसःसंगंस्तेषूपजायते ॥ संग्गा

त्संजायतेकामःकामात्क्रोधोभिजायते ॥६२॥

क्रोधाद्भवतिसंमोहःसंमोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥ स्मृ

तिभ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति ॥६३॥

अन्वयः

विषयान् ध्यायतः पुंसः तेषु संगः उपजायते संग्गात् का-
 मः संजायते कामात् क्रोधः अभिजायते ॥ ६२ ॥ क्रो-
 धात् संमोहः भवति संमोहात् स्मृतिविभ्रमः भवति स्मृति-
 भ्रंशात् बुद्धि नाशः भवति बुद्धिनाशात् प्रणश्यति ॥ ६३ ॥

द्रिय विषयोंसे सर्व प्रकारसे रुकी भयी हैं तिसीकी बुद्धि प्रतिष्ठित है, याने स्थिरबुद्धि है. ॥ ६८ ॥

मूलम्.

यानिशासर्वभूतानांतस्यांजागर्तिसंयमी ॥ य
स्यांजाग्रतिभूतानिसानिशापश्यतोमुनेः ॥ ६९ ॥

अन्वयः

सर्व भूतानां या निशा तस्यां संयमी जागर्ति यस्यां भू-
तानि जाग्रति पश्यतः मुनेः सा निशा ॥ ६९ ॥

टीका.

ऐसे जितेंद्रिय औ प्रसन्नमनवालेकी सिद्धि कहते हैं. सर्व भूत प्राणीमात्रकी जो रात्री अर्थात् रात्रिसदृश अप्रकाशक जो आत्मविषयाबुद्धि तिसमें इंद्रियसंयमी औ प्रसन्न मनवाला जगता है, अर्थात् आत्माको देखता भया रहता है, औ जो शब्दादि विषया बुद्धि तिसमें सर्वभूत प्राणीमात्र जागते हैं. या ने प्रबुद्ध होते हैं. सो शब्दादि विषयिक बुद्धि आत्माके देखनेवाले की रात्रि है, अर्थात् रात्रीतुल्य अप्रकाशक है. ॥ ६९ ॥

मूलम्.

आपूर्यमाणमचलप्रतिष्ठं समुद्रमापः प्रविशंति य-
द्वत् ॥ तद्वत्कामायं प्रविशंति सर्वे सशान्तिमाप्नोति-
नकामकामी ॥ ७० ॥

अन्वयः

यद्वत् आपूर्यमाणं अचलप्रतिष्ठं समुद्रं आपः प्रविशंति तद्वत्
यं सर्वे कामाः प्रविशंति सः शान्तिं आप्नोतिकामकामी ॥ ७० ॥

टीका.

जैसा आपही पूर्ण औ अचलप्रतिष्ठ याने एकरूप समुद्रमें-

कहते हैं हे अर्जुन! जब आपके स्वरूपही में आपके मन करिके संतुष्ट हुआ भया मनमें प्राप्तहुये सर्व कामनाओंका त्याग करै है तब वह स्थितप्रज्ञ कहाता है. ॥ ५५ ॥

मूलम्.

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ॥ वीतरा
गभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ॥ ५६ ॥

अन्वयः

यः दुःखेषु अनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः वीतरागभ-
यक्रोधः मुनिः स्थितधीः उच्यते ॥ ५६ ॥

टीका.

दुखमें जिसके मनमें उद्वेग न होय और सुखमें इच्छा न-
राखै और व्यतीत भये होय स्नेह भय और क्रोध जिसके ऐसे
मुनियाने मननशीलको स्थितधी कहते हैं. ॥ ५६ ॥

मूलम्.

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्यशुभाऽशुभम् ॥
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तदा सः स्थितप्रज्ञः उच्यते ॥ ५७ ॥

अन्वयः

यः सर्वत्र अनभिस्नेहः सन् तत् तत् शुभाशुभं प्राप्य न
अभिनन्दति न द्वेष्टि तदा सः स्थितप्रज्ञः उच्यते ॥ ५७ ॥

टीका.

जो सर्वमित्र वर्गोंमें भी उदासीन रहा भया प्रिय वस्तुका
संयोग वियोगादिक प्राप्त वहैके न-आनंद होय, और न विपाद
करै; तब वह स्थितप्रज्ञ कहिये. ॥ ५७ ॥

मूलम्.

यदासंहरते चायं कूर्मोऽगानीव सर्वशः ॥

इंद्रियाणींद्रियार्थेभ्यस्तस्यप्रज्ञाप्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

अन्वयः

अयं यदा कूर्मः इव सर्वशः श्रंगानि इंद्रियार्थेभ्यः इंद्रियाणि संहरते तदा तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥ ५८ ॥

टीका.

यह पुरुष जब कूर्म जैसे सर्व अंगोंको एकदम समेटि लेता है, तैसे सर्व इंद्रियोंके विषयोंसे इंद्रियोंको खींचि लेवै. तब तिसकी बुद्धि स्थिर है अर्थात् यह भी स्थितप्रज्ञ है. ॥ ५८ ॥

मूलम्.

विषयाविनिवर्ततेनिराहारस्यदेहिनः ॥

रसवर्ज्यंरसोप्यस्यपरं दृष्ट्वानिवर्तते ॥ ५९ ॥

अन्वयः

निराहारस्य देहिनः रसवर्ज्यं विषयाः विनिवर्तते अस्य रसः अपि परं दृष्ट्वा निवर्तते ॥ ५९ ॥

टीका.

इंद्रियोंके आहारविषयसो विषय न करनेसे विषयप्रीतिविना विषय निवर्त होतेहैं औ इसकी विषयप्रीति भीजब परयाने विषयोंसे परे जो आत्मस्वरूपउसको देखनेसे निवर्त होतीहैं ५९

मूलम्.

यततोह्यपिकौंतेयपुरुषस्यविपश्चितः ॥

इंद्रियाणिप्रमाथीनिहरंतिप्रसभंमनः ॥ ६० ॥

अन्वयः

हे कौंतेय हिविपश्चितः पुरुषस्य यततः अपि प्रमाथीनि इंद्रियाणि प्रसभं मनः हरंति ॥ ६० ॥

टीका.

नदियौका पानी प्रवेश करता है तैसेही जिसको सर्व कामना प्राप्त होती हैं सो शांतीको पावता है औ कामनामकी इच्छा करनेवाला शांतीको पावता नहीं. ॥ ७० ॥

मूलम.

विहायकामान्यःसर्वान्पुमांश्चरतिनिस्पृहः ॥
निर्ममोनिरहंकारःसशांतिमधिगच्छति ॥ ७१ ॥

अन्वयः

यः पुमान् सर्वान् कामान् विहाय निःस्पृहः सन् चरति
सः निर्ममः निरहंकारः शांतिं अधिगच्छति ॥ ७१ ॥

टीका.

जो पुरुष सर्व कामनाको छोडिके औ निस्पृह विचरता
तो निर्मम औ निरहंकार शांति पावता है. ॥ ७१ ॥

मूलम.

एपाब्राह्मीस्थितिःपार्थनैनांप्राप्यविमुह्यति ॥ स्थि
त्वाऽऽस्यामंतकालेपिब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ॥ ७२ ॥

अन्वयः

हे पार्थ एपा ब्राह्मीस्थितिः एनां प्राप्य नरः न विमुह्यति
अस्यां अंतकाले अपि स्थित्वा ब्रह्मनिर्वाणं ऋच्छति ॥ ७२ ॥

टीका.

हे पृथापुत्र यह जो ब्रह्मप्राप्ति करनेवाली निष्काम कर्मरूप
स्थितिसो मैने कही इसको प्राप्तवैके फिर मनुष्य संसाररूप
मोहको प्राप्त नहीं होताहै. जो इस स्थितिमे अंतिम अवस्था-
मेभीस्थित होय तौभी मोक्षको प्राप्त होय औ जो बाल्य अ-
वस्थासे लैके मरण पर्यंत ऐसेही कर्म करै वह ब्रह्मानंदको प्राप्त
होय इस मे तौ कहनाहीक्या है? ॥ ७२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां यो
गशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे सांख्ययोगो नाम द्वि
तीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृता
यां श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां द्वितीयोऽध्या
यः ॥ २ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ ज्यायसी चेत्कर्मणस्ते मता बुद्धि ॥ १ ॥
जर्नार्दन ॥ तत्किं कर्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ॥ १ ॥
व्यामिश्रेणैव वाक्येन बुद्धिं मोहयसी व मे ॥ तदेकं वदनिश्चित्येन श्रेयोऽहमाप्नुयां ॥ २ ॥

अन्वयः

हे जनार्दन चेत् कर्मणः बुद्धिः ते ज्यायसीमता तत् हे
केशव घोरे कर्मणि मां किं नियोजयसि ॥ १ ॥ व्यामि
श्रेण वाक्येन मे बुद्धिं मोहयसि इव तत् एकं निश्चित्य
वदथेन अहं श्रेयः अप्नुयां ॥ २ ॥

टीका.

अर्जुनने विचार किया कि, भगवानने मेरेको प्रथम अज्ञो
प्यानन्वशोचस्त्वं इत्यादि वाक्यों करिके ज्ञानयोग उपदेश
किया, फिर बुद्धियोगेतिमांशृणु इत्यादिक वाक्यों करिके कर्म
योग कहा, उसमेभी श्रुतिविप्रतिपन्नातेयदास्थास्यतिनिश्चला
इत्यादि करिके आत्मज्ञानकी प्राप्ति निष्कामकर्मसेकही इसवा-
स्तेनिश्चय होता हैकि, कर्मयोगसे आत्मज्ञानही अष्ट होयगा ऐ-
सा विचारिके अर्जुन भगवानसे बोले किहे जतार्दन! जो कि क-
र्मयोगसे आत्मज्ञान आपने अष्टमाना होय तोहेकेशव इसहिं-

सात्मक घोर कर्म मेरेको किसवास्ते युक्त करतेहौ ॥१॥ आप ऐसे मिश्रितवाक्योंकरिके मेरीबुद्धिको मोहतेसेही इसवास्तेसोई एक निश्चय करिके कहोकि, जिसकरिके मैकल्याणकोप्राप्तहोउं. २

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ लोकेऽस्मिन् द्विविधानिष्ठापु
राप्रोक्तामयाऽनघ ॥ ज्ञानयोगेन सांख्यानानां कर्म
योगेन योगिनां ॥ ३ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच ॥ हे अनघ अस्मिन् लोके मयापुरा
द्विविधा निष्ठा प्रोक्ता सांख्यानानां ज्ञानयोगेन योगिनां क
र्मयोगेन ॥ ३ ॥

टीका.

ऐसे अर्जुनके वाक्य सुनिके श्रीकृष्णभगवान् बोलते भये, हे
अनघ! अर्थात् हे पापरहित अर्जुन! जो मैनेपूर्व अध्यायमें कहा
गो तुम अच्छीतरह समझे नहीं विचित्र अधिकारियों करिकेप-
रेपूरित ऐसे इस लोकमेंप्रथमभी यथाधिकारी प्रतिदोप्रकारकी
निष्ठा कही. तहां आत्मज्ञानियोंको ज्ञानयोग निष्ठा औ कर्म-
योगवालोंको कर्मनिष्ठाकही. कारणकि जगतमें सर्वही लोग
मोक्षकी इच्छा करनेवाले नहीं हैं, जब मोक्षइच्छा करै तबही ज्ञान-
योगका अधिकारी होता है, सो जब प्रथम ईश्वराराधन रूप
निष्काम कर्म करिके निर्मलांतःकरण होता हे, तब सर्व इंद्रिय
उसकी स्थिर होती हैं. ऐसा पुरुषज्ञाननिष्ठाका अधिकारी होता
है, सो अगाड़ी कहेंगे ॥ यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततं ॥ स्वक
र्मणा तमभ्यर्च्यसिद्धिं विदति मानवः ॥ अनेकजन्मसंसिद्धस्त
तो याति परागतिं इत्यादि ॥ ३ ॥

मूलम्.

नकर्मणामनारंभान्निष्कर्म्यंपुरुषोऽश्नुते ॥ नच
संन्यसनादेवसिद्धिसमाधिगच्छति ॥ ४ ॥

अन्वयः

कर्मणा अनारंभात् पुरुषः नैष्कर्म्यं न अश्नुते च संन्यस
नात् एव सिद्धिं न समाधिगच्छति ॥ ४ ॥

टीका.

सर्व कोई भी मनुष्योंको मोक्षकी इच्छा होय तौभी ज्ञान-
काएकी दुष्कर हैऐसा कहते हैं. शास्त्रोक्तकर्मके आरंभ कियेविना
पुरुष निष्कर्मताको प्राप्त नहीं होता है, अर्थात् सर्व इंद्रियव्यापा-
ररूप कर्मकी निवृत्ति पूर्वक ज्ञाननिष्ठाको प्राप्त नहीं होताहै, और
कर्मके न करनेसे भी सिद्धिको प्राप्त नहीं होता, क्योंकि, निष्काम
कर्मकी सिद्धि परमेश्वराराधनही है. इसवास्तेउस शास्त्रीय कर्म
विना उस परम पुरुषाराधन रूप सिद्धिको भी नहीं पाता है॥४॥

मूलम्.

नहिकश्चित्क्षणमपिजातुतिष्ठत्यकर्मकृत् ॥ कार्यं
तेह्यवशःकर्मसर्वैःप्रकृतिजैर्गुणैः ॥ ५ ॥

अन्वयः

हि कश्चित् अपि जातु अकर्मकर्त् क्षणं न तिष्ठति सर्वैः
प्रकृतिजैः गुणैःअवशःसन् कर्म कार्यते ॥ ५ ॥

टीका.

प्रथम कहे वाक्यहीको स्पष्ट देखाते है. प्रसिद्ध हैकि इस-
लोकमे कोई भी पुरुष कोईभी कालमे कर्म कियेविना क्षणमात्र
भी नहीं रहि सकता है क्योंकि, प्रकृतिके जे सत्त्वादिक सौभा-
विक गुणहैं तिनौं करिके परवश हुआ कर्म करताही है अर्थात्

६२ गीतावाक्यार्थबोधिनी, भाषाटीका.
 जो ऐसा भी नेम करै कि मै कर्म न करौंगा तौ भी वै सौभाविक
 गुण कर्म कराय लेतेहैं ॥ ५ ॥

मूलम्.

कर्मेन्द्रियाणिसंयम्यय आस्ते मनसा स्मरन् सन्
 द्वियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥ ६ ॥

अन्वयः

यः कर्मेन्द्रियाणिसंयम्य इन्द्रियार्थान् मनसा स्मरन् सन्
 आस्ते सः विमूढात्मा मिथ्याचारः उच्यते ॥ ६ ॥

टीका.

जो कोई ज्ञानयोगार्थ प्रवर्त्त होनेके वास्ते कर्मइन्द्रियोंका
 केवल संयम करै औ विषयोंका मनमे स्मरण करता हुआ रहै
 अर्थात् विषय वासना निवर्त्त भये विनाहठसे कर्मेन्द्रियोंको
 कै सो मूर्ख मिथ्या आचार करनेवाला है ऐसे श्रेष्ठजन कह
 ते हैं ॥ ६ ॥

मूलम्.

यस्त्विन्द्रियाणि मनसानियम्यारभतेर्जुन ॥
 कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ ७ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन यः मनसा इन्द्रियाणि नियम्य तु कर्मेन्द्रियैः क
 र्मयोगं आरभते सः असक्तः सन् विशिष्यते ॥ ७ ॥

टीका.

हे अर्जुन जो कोई मनसे इन्द्रियोंको नियमित करिके औ
 कर्मेन्द्रियोंसे कर्मयोगका आरंभ करता है सो प्रथम कहे भये
 ज्ञान प्राप्तिकी यत्न करनेवालेसे श्रेष्ठ है ॥ ७ ॥

मूलम्

नियतंकुरुकर्मत्वंकर्मज्यायोह्यकर्मणः ॥

शरीरयात्रापिचतेनप्रसिद्धयेदकर्मणः ॥ ८ ॥

अन्वयः

त्वं नियतं कर्म कुरु हि अकर्मणः कर्म ज्यायः च अ-
कर्मणः ते शरीरयात्रा अपि न प्रसिद्धयेत् ॥ ८ ॥

टीका.

हे अर्जुन तुम नियतकर्मकरौ नियत उसकर्मको कहते है कि जो जिसको निश्चय अधिकार है उस कर्मको कर्म करना उस देह धारीको निश्चय अधिकार है इसवास्ते कर्मकरौ क्यों कि, कर्म किये विना केवल ज्ञानी व्हेके बैठनेसे कर्म करना श्रेष्ठ है औ जो तुम सर्व कर्म त्यागोगे तो ज्ञानके उपयोगी जो यह शरीर इसका भी रहना न होयगा. ॥ ८ ॥

मूलम्.

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्रलोकोऽयंकर्मबंधनः ॥

तदर्थकर्मकौंतेयमुक्तसंगःसमाचर ॥ ९ ॥

अन्वयः

हेकौंतेय यज्ञार्थात् कर्मणः अन्यत्र अयं लोकःकर्मबंध-
नः भवति त्वं मुक्तसंगः सन् तदर्थं कर्म समाचर ॥ ९ ॥

टीका

हेकुंतीपुत्र जो शंका करौंगे कि कर्मसे बंधन होता है तो उत्तर सुनौ जो कर्म यज्ञके निमित्त है उस कर्मसे जो अन्य कर्म उसीके करनेसे मनुष्य बंदनको प्राप्त होता है इसवास्ते तुम फला-संग छोडिके यज्ञार्थ कर्म करौ. ॥ ९ ॥

मूलम्.

सहयज्ञा.प्रजाःसृष्ट्वापुरोवाचप्रजापतिः ॥ अने

नप्रसविष्यध्वमेपवोस्त्वष्टकामधुक् ॥ १० ॥ दे
वान्भावयतानेनतेदेवाभावयंतुवः ॥ परस्परंभा
वयंतःश्रेयःपरमवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

अन्वयः

प्रजापतिः पुरासहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा उवाच यूयं अनेन
प्रसविष्यध्वं एपः वः इष्टकामधुक् अस्ति ॥ १० ॥ अ-
नेन यूयं देवान् भावयतः ते देवाः वः भावयंतु एवं पर-
स्परं भावयंतः संतः परं श्रेयः अवाप्स्यथ ॥ ११ ॥

टीका.

प्रजापति जो जगत्कारण भगवान् सो पुरा याने पूर्वसृष्टिके
उत्पत्ति समयमे यज्ञसंयुक्त प्रजाको उत्पन्न करिके प्रजासे बोले
कि, इस यज्ञ करिके तुम वृद्धिके प्राप्त होउ. यह तुमको सर्व का-
मना देनेवाला है ॥ १० ॥ इसी यज्ञ करिके तुम देवतोंका आ-
राधन करिके उनकी वृद्धि करौ वै देव तुम्हारा मनोर्थ पूरण कर
ते भये तुम्हारी वृद्धि करैगे ऐसे ही परस्पर बढाते भये तुम श्री
देवता सर्व बडे कल्याणको प्राप्त होउगे. ॥ ११ ॥

मूलम्

इष्टान्भोगान्निहिवोदेवादास्यंतेयज्ञभाविताः ॥
तैर्दत्तानप्रदायैभ्योयोभुंक्तेस्तेनएवसः ॥ १२ ॥

अन्वयः

यज्ञभाविताः देवाः वः इष्टान् भोगान् दास्यंति तैः दत्ता
न् एभ्यः अप्रदाय यः भुंक्ते सः स्तेनएव ॥ १२ ॥

टीका.

यज्ञ करिके पूजे भये देवता तुमको इच्छित भोग देइंगे. उन
देवताने दिये पदार्थों करिके उनका आराधन किये बिना जो स्व

ये भोग भोगता है, सोई चोर है। चोरका लक्षण यही है कि दूसरेके वस्तुपर उसक दियेविना आपसृष्टहा करै ॥ १२ ॥

मूलम्.

यज्ञशिष्टाशिनः संतो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ॥

भुंजते तेष्वर्घं पापाये पचन्त्यात्मकारणात् ॥ १३ ॥

अन्वयः

यज्ञशिष्टाशिनः संतः सर्वकिल्बिषैः मुच्यन्ते तु ये आत्मकारणात् पचति ते पापाः अर्घं भुंजते ॥ १३ ॥

टीका.

यज्ञ अर्थात् नित्ययज्ञ देवाधाराधनरूपयज्ञकाशेष भोगनेवाले पुरुष सर्व पापोंसे छूटते हैं और जो केवल आपके वास्ते पाप करिके भोजन करते हैं वे पापरूपही भोजन करते हैं अर्थात् पाप हीके वास्ते उनके भोजन हैं ॥ १३ ॥

मूलम्.

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसंभवः ॥ यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥ १४ ॥ कर्म ब्रह्माद्भवति विद्वि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ॥ तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥ एव प्रवर्तते तच्चक्रं नानुवर्तयतीहयः ॥ अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थस जीवति ॥ १६ ॥

अन्वयः

अन्नात् भूतानि भवन्ति पर्जन्यात् अन्नसंभवः अस्ति सः पर्जन्यः यज्ञात् भवति सः यज्ञः कर्मसमुद्भवः अस्ति ॥ १४ ॥ कर्म ब्रह्मात्सर्वगतं ब्रह्म यज्ञे प्रतिष्ठितं अस्ति ॥ १५ ॥

अन्वयः

अन्नात् भूतानि भवन्ति पर्जन्यात् अन्नसंभवः अस्ति सः पर्जन्यः यज्ञात् भवति सः यज्ञः कर्मसमुद्भवः अस्ति ॥ १४ ॥ कर्म ब्रह्मात्सर्वगतं ब्रह्म यज्ञे प्रतिष्ठितं अस्ति ॥ १५ ॥

अन्वयः

अन्नात् भूतानि भवन्ति पर्जन्यात् अन्नसंभवः अस्ति सः पर्जन्यः यज्ञात् भवति सः यज्ञः कर्मसमुद्भवः अस्ति ॥ १४ ॥ कर्म ब्रह्मात्सर्वगतं ब्रह्म यज्ञे प्रतिष्ठितं अस्ति ॥ १५ ॥

एवं इह प्रवर्तितं चक्रं यः न अनुवर्त्तयति हे पार्थ, सः इंद्रि-
यारामः अधायुः मोघं जीवति ॥ १६ ॥

टीका-

फिरीभी लोकदृष्टि करिके औ शास्त्रदृष्टि करिकेभी सर्वका मू-
ल यज्ञही है, ऐसा देखायके यज्ञकी नित्य कर्त्तव्यता औ न करने-
का दोष देखाते हैं अर्थात् इन श्लोकों करिके अन्नसे सर्व भूत प्रा-
णीमात्र होतेहैं औ उस् अन्नकी उत्पत्ति पर्जन्य याने वर्षासे है.
यह लोकप्रसिद्ध है, सो पर्जन्य यज्ञसे होता है यह शास्त्रसे जाना
जाता है, सो प्रमाण जैसे ॥ श्लोक ॥ अग्नौ प्रास्ताहुतिः संम्यगादित्य
मुपतिष्ठते ॥ आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नंततः प्रजाः ॥ १ ॥ सो यज्ञ
द्रव्यार्जनादिक कर्त्ताके व्यापाररूप कर्मसे होता है ॥ ११ ॥ सो
कर्म ब्रह्मसे होता है, इहां ब्रह्मशब्दकरिके प्रकृति परिणामरूप
शरीर जानना ॥ तदेव ब्रह्मनामरूपमन्नंच जायते ॥ ऐसे वेदमे ब्रह्म-
शब्द करिके प्रकृति कही है ममयोनिर्महद्ब्रह्म ऐसे इहांभी कहेंगे
इसवास्ते कर्मब्रह्मोद्भवं इस वाक्यका अर्थ यही है कि प्रकृतिप-
रिणाम रूप जो शरीर उससे कर्मकी उत्पत्ती है औ शरीररूप
ब्रह्म याने प्रकृतिविकार सो अक्षर जो जीवात्मा सो उसमेहै
अर्थात् अन्नपानादि करिके तृप्त औ अक्षर जो जीव तिस क-
रिके अधिष्ठित जो शरीर सो कर्ममे समर्थ होता है याने कर्म
साधन भूत शरीर जीवसमुद्भव है इसवास्ते सर्वगत याने
सर्वाधिकार योग्य शरीर नित्यही यज्ञमे प्रतिष्ठित है अर्थात्
यज्ञ मूल है ॥ १५ ॥ ऐसे परम पुरुष करिके प्रवर्त्त किया भ-
या यह चक्र जैसे कि अन्नसे भूत भूत याने सजीव शरीर प-
र्जन्यमे अन्न यज्ञसे पर्जन्य सो यज्ञकर्मसे कर्म सजीव शरीरमे
फिरि नद सजीव शरीर अन्नसे अन्न पर्जन्यसे इसप्रकारसे
परस्पर कारण कार्य भाव, कर्मिके चक्रवत् प्रवर्त्तमान है इसको

जो कर्माधिकारी अथवा ज्ञानकर्माधिकारी प्रवर्त्त नहीं करता है औ यज्ञ कियेविना शरीर पोषण करता है. सो केवल इंद्रियाराम पुरुष अघायु अर्थात् उसकी आयु: पापहीके वास्ते है. हे अर्जुन! वह वृथा जीवता है याने उसका जीवन वृथा है. तात्पर्य जो यज्ञशेषविना देह पोषण करता है वह रजोगुण तमोगुणरूपपापी पुरुष आत्मदर्शन विमुख है यहीसे केवल विषयभोगी होता है, इसवास्ते ज्ञानयोगादिकमे प्रवर्त्त है तोभी उसका जीवना वृथा है. ॥ १६ ॥

मूलम्.

यस्त्वात्मरतिरेवस्यादात्मतृप्तश्चमानवः ॥ आत्मन्येवचसंतुष्टस्तस्यकार्यंनविद्यते ॥ १७ ॥ नैवतस्यकृतेनार्थोनाकृतेनेहकश्चन ॥ नचास्यसर्वभूतेषुकश्चित्दर्थव्यपाश्रयः ॥ १८ ॥ तस्मादसक्तः सततंकार्यंकर्मसमाचर ॥ असक्तोह्याचरन्कर्मपरमाप्नोतिपुरुषः ॥ १९ ॥

अन्वयः

यः मानवः आत्मरतिः एवस्यात् च आत्मतृप्तः एवस्यात् च आत्मनि एवसंतुष्टः स्यात् तस्य कार्यं न विद्यते ॥ १७ ॥ इह कृतेन च अकृतेन तस्य कश्चन अर्थः एव सर्वभूतेषु कश्चित् अर्थव्यपाश्रयः न विद्यते ॥ १८ ॥ तस्मात् असक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ह्यस्मात् असक्तः कर्म आचरन् सन् पुरुषः परं आप्नोति ॥ १९ ॥

टीका:

अब महा यज्ञादिक कर्म किसको न करना चाहिये सो क-

हते हैं जिसकी आत्माहीमे प्रीति होय औ आत्माहीसे, तू
 आत्म व्यतिरिक्त अन्नादिकसे, प्रयोजन नहीं औ आत्महीमे
 संतुष्ट दूसरे वाग महल माला चंदन इत्यादिकों का भी काम न
 ही तिसको कुछभी कर्त्तव्यता नहीं ॥ १७ ॥ इसवास्ते जो कुछ
 आत्मदर्शनार्थ करै अथवा नकरै तौभी उसके कुछ प्रयोजन
 नहीं औ सर्व भूतोंमे भी इसका कोई भी प्रयोजना धार नहीं
 ऐसे मनुष्यको कर्त्तव्यता नहीं अर्थात् मुक्तको नहीं ॥ १८ ॥
 इसवास्ते कर्ममे आसक्त न भये हुये निरंतर करने योग्यकार्य
 करौ वयोंकि जो कर्ममे आसक्त नहीं है औ कर्म करता है
 तौ वह पुरुष कर्म करते करते परत्माको प्राप्त होताहै ॥ १९ ॥

मूलम्

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ॥ लोक
 संग्रहमेवापि संपश्यन् कर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

अन्वयः

हि जनकादयः कर्मणा एव संसिद्धिं आस्थिता लोक
 संग्रहं अपि संपश्यन् कर्म कर्तुं एव अर्हसि ॥ २० ॥

टीका

जिसवास्ते किज्ञान योगाधिकारीको भी कर्मयोगही श्रेष्ठहै
 इसवास्ते ज्ञानी जनोंमे अग्रगण्य जनकादिकभी कर्मही करिके
 आत्मदर्शन पावते भये ऐसे प्रथम सुमुखको ज्ञानयोगमे अधि-
 कार नहीं इसलिये कर्मयोगीको कर्मयोग करना कहां फिरज्ञानी
 कोभी कर्मही करना श्रेष्ठहै ऐसे कारणासहितकहा अंबदोनोंको
 भी कर्मही करना श्रेष्ठहै ऐसाकहते हैं कि, लोक संग्रहकोभी दे-
 खते भये कर्म करनेकोही योग्यहो इस संग्रहका कारण अगा-
 टीके श्लोकमेकहते हैं ॥ २० ॥

मूलम्.

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेव तरो जनः ॥ स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्त्तते ॥ २१ ॥

अन्वयः

श्रेष्ठः यत् यत् आचरति तत् तत् एव इतरः जनः आचरति स श्रेष्ठः यत् प्रमाणं कुरुते लोकः तदनुवर्त्तते ॥ २१ ॥

टीका.

श्रेष्ठ पुरुष जो जो आचरण करते हैं सोई सोई आचरण दूसरे लोग भी करते हैं औ सो श्रेष्ठ पुरुष जो प्रमाण तो है दूसरे भी वही के अनुसार चलता है ॥ २१ ॥

मूलम्.

न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिपुलोकेषु किंचित् ॥ ज्ञानं वाप्तमवाप्तव्यं वर्त्त एव च कर्मणि ॥ २२ ॥ यदि अहं न वर्त्तयं जातु कर्मण्यतद्रितः ॥ समवर्त्मानुवर्त्तते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ॥ २३ ॥ उत्सीदियुरि मे लोकान् कुर्यां कर्म चेदहं ॥ संकरस्य च कर्ता स्यामुपहन्यामि माः प्रजाः ॥ २४ ॥

अन्वयः

हे पार्थ त्रिपुलोकेषु मे किंचित् कर्तव्यं न अस्ति एवं अनवाप्तं च अवाप्तव्यं न अस्ति तथापि अहं कर्मणि एव वर्त्तते ॥ २२ ॥ हे पार्थ यदि अहं अतद्रितः सन् जातु कर्मणि न वर्त्तयं तदि हि सर्वशः मनुष्यः समवर्त्तते मनुष्यैः ॥ २३ ॥ चेत् अहं कर्म न कुर्यां तदि इमे लोकाः उत्सीदियुः तेन संकरस्य कर्ता अहं स्यां च अन्यामि इमाः प्रजाः ॥ २४ ॥

टीका.

हे अज्ञेन सबही कर्म प्रकृतिके सत्त्वादिगुणोने किये हैं, अथवा गुणों करिके होते हैं तौभी अहंकार करिके मूढ भया है आत्मस्वरूप जिसका ऐसा पुरुष आपको कर्ता मानता है ॥ २७ ॥ औ सत्त्वादिकगुण तथा तिनके कर्मोंके विभाग जाननेवाला पुरुष ऐसा जानता है कि, सत्त्वादिकगुण आप-आपके कार्योंमें वर्तमान हैं ऐसा मानिके मै कर्ता हौं ऐसे आसक्त नहीं होता है. ॥ २८ ॥

- मूलम.

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः सज्जन्ते गुणकर्मसु ॥ तान् कृत्स्नविदो मंदान् कृत्स्नविन्नविचालयेत् ॥ २९ ॥

अन्वयः

प्रकृतेर्गुणसंमूढाः गुणकर्मसु सज्जन्ते तान् कृत्स्नविदो मंदान् कृत्स्नवित् न विचालयेत् ॥ २९ ॥

टीका.

प्रकृतिके जे सत्त्वादिकगुणतीनों करिके सम्यक् मूढ ऐसे जे पुरुष तेही सत्त्वादिक गुणोंके कर्मोंमें याने कर्म फलोंमें आसक्त होते हैं तिन अंसर्वज्ञ मंदमतिन्हको सर्वज्ञ पुरुष कर्ममार्गसे चलायमान न करै. ॥ २९ ॥

- मूलम.

मयि सर्वाणिकर्माणिसंन्यस्याध्यात्मचेतसा ॥ निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्धस्वविगतज्वरः ॥ ३० ॥

अन्वयः

अध्यात्मचेतसा मयि सर्वाणि कर्माणि संन्यस्य निराशी. निर्ममः भूत्वा विगतज्वरः सन् युद्धस्व ॥ ३० ॥

अब श्रीकृष्ण भगवान् कहते हैं कि, हे अर्जुन! अज्ञानी कर्म-सक्त होते हैं, तुम ज्ञानी हो इसवास्ते कर्म फलको मेरेको अर्पण करिके युद्ध करौ, जो कहोगे कैसे करौ 'तौ सुनौ अध्यात्मचे तत्सा याने' क्षत्रिय स्वभावमे चित्त राखिके अध्यात्म कहते हैं, स्वभावको सो अष्टम अध्यायमे कहेंग, स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते तौ क्षत्रियके सौभाविक कर्म अठारहे अध्यायमे कहेंगे शौथे-तेजोधृतिर्दाक्ष्यं युद्धे जाप्यपलायनं ॥ दानभीश्वरभावश्चक्षात्रं कर्म स्वभावजं ॥ इसवास्ते इसवाक्यसे इहां भगवान् यही कहते हैं कि, शूरत्व प्रताप धैर्य चातुर्य युद्धमे संमुख लडना दानं औ सबको आपनेका वृमे करना इत्यादि क्षात्र स्वभावमे चित्त राखिके वै सब कर्म मेरे अर्पण करिके इनके फलकी आशा न करौ औ भै करता हौं ऐसा भी न समुझौ ऐसे ळैके विगतज्वर अर्थात् कर्मबंधन भयरूपज्वर छुटे भये युद्ध करौ, जो भगवानने युद्धादिक अर्पण करनेको कहा इसका कारण अठारहे अध्यायमे कहेंगे कि जैसे स्वस्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥ स्वकर्म-निरतः सिद्धियथाविंदति सच्छृणु ॥ यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमि-दंततं ॥ स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥ इत्यादि ॥ ३० ॥

मूलम्.

ये भे म तं मि दं नित्यमनुतिष्ठंति मानवाः ॥ श्रद्धावं-
तो नसूयंतो मुच्यंते तेऽपि कर्मभिः ॥ ३१ ॥ ये त्वे त द-
भ्यसूयंतो नानुतिष्ठंति मे म तं ॥ सर्वज्ञानविमूढास्ता-
न्विद्धिनष्टानचेतसः ॥ ३२ ॥

अन्वयः

इदं मे म तं मानवाः नित्यं अनुतिष्ठंति ये श्रद्धावंतः ये
अनुसूयंतः तेऽपि कर्मभिः मुच्यंते ॥ ३१ ॥ तु पुनः ये

टीका.

हे अर्जुन! देखौ मैं सर्वेश्वर अवाप्त सर्व काम सर्वज्ञ सत्यसं-
 क्त हौं इसवास्ते तीनहुं लोकमे देवमनुष्यादिक अवतारोंमे मे-
 रेको कुछभी कर्तव्यता नहीं है, ऐसेही कोईभी पदार्थ अप्राप्त
 नहीं है औ कर्म करिके कुछ पदार्थकी प्राप्तिकी इच्छाभी नहीं
 है तौभी, मैं कर्मही करता हौं ॥ २२ ॥ हे अर्जुन! जो मैं निरालस्य
 वृहिके कदाचित् कर्म न करौ तौ निश्चय यह है कि, सर्व मनुष्य
 मेरेको कर्म न करते देखिके कर्म न करैगे कारण कि, ऐसा विचा-
 रैगे कि साक्षात् वसुदेवनंदन श्रीरुष्ण कर्म नहीं करते है तो हम
 किसवास्ते करै? जो कर्म करनेमे कुछ तत्व होता तौ श्रीरुष्णजी
 क्यों न करते? ॥ २३ ॥ इसवास्ते जो मैं कर्म न करौ तौ मेरा आ-
 चरन देखिके कर्म न करनेसे सर्व लोग नष्टआचारभ्रष्ट हो-
 यंगे औ इसीसे वर्णसंकर होयंगे तौ उस वर्णसंकरताका कर-
 नेवालाभी मैं होउंगा औ इसी वास्ते इस प्रजाको मारनेवा-
 ला मैं ही होउंगा तात्पर्य श्रीरुष्ण अर्जुनसे यह जनातेहै कि
 तुमहुं पांडुपुत्र श्रेष्ठ जनौमे उत्तम हौ जो केवल ज्ञानयोगाश्र-
 य करिके कर्म न करौगे तौ तुमको देखिके दूसरे अज्ञानीभी
 कर्म छोडि देइंगे तब उनके कर्म छोडनेका पाप तुमको होय-
 गा इसवास्ते स्वधर्म युद्धरूप कर्म करौ ॥ २४ ॥

मूलम.

सक्तः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वति भारत ॥ कर्षा
 द्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहं ॥ २५ ॥ नव
 द्विभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनां ॥ जोपयेत्सर्व
 कर्माणि विद्वान्यक्तः समाचरन् ॥ २६ ॥

अन्वयः

हेभारत यथा आविद्वांसः कर्मणि सक्ताः संतः कर्म कर्षति
 तथा चिकीर्षुः विद्वान् असक्तः सन् लोकसंग्रहं यथास्या-
 त्तया कर्मकुर्यात् ॥ २५ ॥ युक्तः विद्वान् समाचन सन्
 कर्मसंगिनां अज्ञानां बुद्धिभेदं न जनयेत् किंतु सर्वक-
 र्माणि जोषयेत् ॥ २६ ॥

टीका.

हे अर्जुन! जैसे अविद्वानलोग कर्ममे आसक्त भये हुये क-
 मे करेहैं, तैसेही कर्मके जाननेकी इच्छा करनेवाला कर्मफला
 संग रहित भया हुआ लोकौको याने मनुष्योंको कर्मसंग्रह
 तैसे होय तैसे कर्म करे ॥ २५ ॥ ऐसे ज्ञानयोगयुक्त विद्वान्
 पुरुष सम्यक् प्रकार कर्मकर्ता हुआ कर्मासक्त अज्ञानीज-
 नोंको बुद्धिभेद न करे, अर्थात् कर्मविना आत्मदर्शनका और-
 भी उपाय है ऐसा न कहना चाहिये क्योंकि, सर्व कर्मकरना
 योग है ऐसाही उपदेश देना.

मूलम्.

प्रकृतेः क्रियमाणानि गुणैः कर्माणि सर्वशः ॥ अहं
 कारविमूढात्मा कर्ताऽहमिति मन्यते ॥ २७ ॥ त
 त्ववित्तु महाबाहो गुणकर्मविभागयोः ॥ गुणागु-
 णेषु वर्तते इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो सर्वशः कर्माणि प्रकृतेः गुणैः क्रियमाणानि
 सन्ति तथापि अहंकारविमूढात्मा पुरुषः अहं कर्ता इति
 मन्यते ॥ २७ ॥ त्वु गुणकर्म विभागयोः त्ववित्तु पुरुषः गु-
 णाः गुणेषु वर्तते इति मत्वा न सज्जते ॥ २८ ॥

एतत् मे मतं अभ्यसूयंतः संतः न अनुतिष्ठन्ति तान् सर्व
ज्ञानविमूढान् अचेतसः नष्टान् विद्धि ॥ ३२ ॥

टीका.

रा मत जे मनुष्य ग्रहण करैगे औ जे केवल ग्रहण क-
रनेकी श्रद्धाही राखैगे औ जिनाँने न ग्रहणकिया औ न श्रद्धावा-
न है परंतु निंदामात्र नही करते हैं यह मत श्रेष्ठ है इतना कहते
ही हैं वैभी कर्मरुत परमपुण्यसे रहित होयहैं ॥ ३१ ॥ और जे
मनुष्य इसमेरे मतकी निंदा करते हुये इसको ग्रहण नहीं करते
हैं तिनको सर्वत्र ज्ञान विषयमे मूढ अचेत औ नष्ट जाणौ ॥ ३२ ॥

मूलम्.

सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ॥

प्रकृतियांति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

अन्वयः

ज्ञानवान् अपि पुरुषः स्वस्याः प्रकृतेः सदृशं चेष्टते अतः

भूतानि प्रकृतियांति एवं सति निग्रहः किं करिष्यति ॥ ३३ ॥

टीका.

जो कहाकि कर्मस्वभावके स्वाधीन है उसीको स्पष्ट करते
हैं कि ज्ञानवान् पुरुषभी आपके स्वभावके सदृश चेष्टा करता
है तो आज्ञानको कहनाही क्या है इसीवास्ते भूतप्राणी मात्र
आप आपकी प्रकृतिको प्राप्त होते हैं जब ऐसा नेम है तो नि-
ग्रह कैसे करै? ॥ ३३ ॥

मूलम्.

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषो व्यवस्थितौ ॥

तयोर्नवशमागच्छेत्तौ ह्यस्य परिपंथिनौ ॥ ३४ ॥

अन्वयः

इंद्रियस्य इंद्रियस्य अर्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ स्तः तयोः
वशं न आगच्छेत् हि तौ अस्य परिपंथिनौ भवतः ॥ ३४ ॥

टीका.

जब कर्म स्वभाव हीसे है औ उसका निग्रह नहीं तब उपाय
क्या सो कहते हैं. कर्मद्रिय औ ज्ञानेन्द्रिय इनके निमित्त राग औ
द्वेष ये स्थित हैं अर्थात् इंद्रिय सुखमे प्रीति औ उनके सुखनमि-
लनेमे द्वेष होता है तौ इनके वश न होना क्यों कि ये राग औ
द्वेष दोनों इस ज्ञानीके पूर्ण शत्रु हैं ॥ ३४ ॥

मूलम्.

श्रेयान् स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥

स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ॥ ३५ ॥

अन्वयः

स्वनुष्ठितात् परधर्मात् स्वधर्मः विगुणः श्रेयान् स्वधर्म
निधनं श्रेयः परधर्मः भयावहः ॥ ३५ ॥

टीका.

अब रागद्वेषसे स्वधर्मका त्याग औ परधर्मका ग्रहण भी
होता है, उसको निवारण करते हैं, जैसे कि नेत्रादि इंद्रियोंकी प्री-
तिसे अर्जुन स्वधर्म त्यागने लगे कि इस स्वजनौको देखिके मेरे
को दया आती है इसवास्ते मे युद्ध न करौंगा भीख मागौंगा तौ
निवारण करते हैं अन्यका धर्म अच्छा भी दीखै तौ भी उस श्रेष्ठ
परधर्मसे न्यून भी आपका ही धर्म कल्याणकारक है जो आपके
धर्ममे मृत्यु होय तौ भी कल्याण होयगा औ दूसरेका धर्म सदा ही
भयकारक है इसवास्ते जो पराये धर्ममे इस लोकका सुख भी
मिलै तौ भी अपना धर्म छोडिके दूसरा ग्रहण न करना अर्थात्
आपके वर्णधर्ममे दृढ रहना यही कल्याणकारक है इहां कोई

धर्मशाब्दसे शैव शाक्त वैष्णव इत्यादिक न समझनायै तौ उपासना है इनमे तो जिस उपासनामे चमत्कार अपनेको दीखै याने देवता सिद्धिप्राप्ति होय सोई ग्रहण करना सो देवता सिद्धिकराना गुरुके स्वाधीन है इसवास्ते प्रथम गुरुको देखना कि इनके देवसिद्धी है यानही जो न होइ तौ दूसराही गुरु करना जो गुरुहीके देवसिद्धि न होयगी तौ शिष्यको कहाँसे मिलैगी? ॥ ३५ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ अथकेन प्रयुक्तोऽयं पापंचरति पुरु
पः ॥ अनिच्छन्नपि वाष्णैयवलादिव नियोजितः ॥ ३६ ॥

अन्वयः

अर्जुन उवाच हे वाष्णैय अथ अयं पुरुषः अनिच्छन् अपि वलात् नियोजितः इव केन प्रयुक्तः पापंचरति ॥ ३६ ॥

टीका.

जब भगवानने कहा कि स्वधर्मही श्रेष्ठ है औ दूसरेका धर्म भयकारक है सो सुनिके अर्जुन पूछते भये कि, हे वाष्णैय याने हे कृष्ण जिसको यह निश्चय है कि स्वधर्म श्रेष्ठ है औ वह स्वधर्म पूर्वक ज्ञानयोगमे प्रवर्तहुआ भया विषयोंको त्याग किया है तौ भी यह पुरुष विषयोंकी इच्छा नहीं करते भी जैसे कोई जोवरी करावै ऐसे तिसका प्रेरण कियाहुआ पाप आचरण करता है ॥ ३६ ॥

मूलम्

श्रीभगवानुवाच ॥ काम एषः क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ॥ महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ॥ ३७ ॥

अन्वयः

श्रीभगवानुवाच यः एषः कामः सः एषः रजोगुणसमु-

द्भवः महाशनः महापाप्मा क्रोधः एनं इह वैरिणंविद्धि ॥ ३७ ॥

टीका.

श्रीकृष्ण भगवान् उत्तरदेते हैं कि, जो यह काम है सोई यह जोगुणजन्यकाम अति विषय सेवन करता हुआ बड़ा पापी क्रोधरूप होता है इसको इस ज्ञानविषयमें शत्रु जानौं ॥ ३७ ॥

मूलम्.

धूमेनाव्रियतेवन्हिर्यथादर्शोमलेनच ॥

यथोल्बेनावृतो गर्भस्तथातेनेदमावृतम् ॥ ३८ ॥

अन्वयः

यथावन्धिः धूमेन आव्रियते च यथा आदर्शः मलेन आव्रियते यथा गर्भः उल्बेन आवृतः यथातेन इदं आवृतं ॥ ३८ ॥

टीका.

जैसे अग्नि धुआंकरिके आछादित होता है, जैसे दर्पण मैल करिके आछादित होता है औ जैसे गर्भ जरायु करिके आछादित होता है तैसे ही यह जंतुनका ज्ञान उस काम करिके आछादित है ॥ ३८ ॥

मूलम्.

आवृतं ज्ञानमेतेन जानिनो नित्यवैरिणा ॥ कामरूपेण कौंतेय दुःपूरेणानलेन च ॥ ३९ ॥ इंद्रियाणि मनो बुद्धिरस्याधिष्ठानमुच्यते ॥ एते विमोहयत्येपज्ञानमावृत्य देहिनं ॥ ४० ॥ तस्मात्त्रिभिर्द्रियाण्यदौ नित्यम्यभरतर्षभ ॥ पाप्मानं प्रजहि ह्येन ज्ञानविज्ञाननाशनम् ॥ ४१ ॥

अन्वयः

हेकौतैयज्ञानिनः नित्यवैरिणाच दुःपूरेण च अनलेन कां-
मरूपेण एतेन कामेन ज्ञानं आवृतं ॥ ३९ ॥ इंद्रियाणि मनः
बुद्धिः अस्याः अधिष्ठानं उच्यते एषः एतैः ज्ञानं आवृत्य देहि-
नं विमोहयति ॥ ४० ॥ तस्मात् त्वं श्रादौ इंद्रियाणि
नियम्य हे भरतर्षभ एनं ज्ञानविज्ञाननाशनं पाप्मानं
हि प्रजहि ॥ ४१ ॥

टीका

जो पूर्वश्लोकमें कहा कि इदं आवृतं याने यह आच्छादित है
सो अब स्पष्ट देखाते हैं हे कुंतीपुत्र! ज्ञानीकानित्यवैरि औ बड़े
दुःखसेभी पुरनेमेंन आवै ऐसे अपरिपूर्ण ऐसा इच्छारूप जोय-
ह काम इस करिके ज्ञानआच्छादित है ज्ञानीका नित्य वैरि कहने
में मूर्खका प्रथम मित्रवत् है औ परिणाममें शत्रु है औ ज्ञानीउस
के परिणामको जानता है इसवास्ते आदि औ अंतमेंभी शत्रु है
इसवास्ते ज्ञानीका नित्य वैरी है ॥ ३९ ॥ अब इसके रहनेका
स्थान कहते हैं कारणकि शत्रुका स्थान वगैरे जानेविना वह जी-
तनेमें आता नहीं इसवास्ते स्थानभी देखाते हैं सो यहकि सर्व
इंद्रिय औ मन तथा बुद्धि य इसके रहनेकी जय है इसवास्ते यह
काम इन इंद्रिय औ मन बुद्धिसे ज्ञानको आच्छादित करिके दे-
हधारीको मोहि लेता है ॥ ४० ॥ इसीवास्ते तुम प्रथम इंद्रियों
को वश करिके फिरि हे अर्जुन! यह जो ज्ञान जो आत्मज्ञान
औ विज्ञान जो परमात्मज्ञानकी इनका नाश करनेवाला
औ पापी याने पाप करनेवाला ऐसे कामको जीतौ ॥ ४१ ॥

मूलम्.

इंद्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियैश्च परं मनः ॥ मन

सस्तुपराबुद्धिर्योबुद्धेः परतस्तुसः ॥ ४२ ॥ एवंबु
द्धेः परंबुध्वासंस्तभ्यात्मानमात्मना ॥ जहिशत्रुंम
हाबाहोकामरूपंदुरासदम् ॥ ४३ ॥

अन्वयः

इंद्रियाणि पराणि इति पंडिताः आहुः इंद्रियेभ्यः परं मनः ।
मनसः परा बुद्धिः तु यः बुद्धेः परतः सः एव सः कामः ॥ ४२ ॥
हे महाबाहो एवं बुद्धेः परं कामरूपं दुरासदं शत्रुं बुध्वा आ-
त्मानं आत्मना संस्तभ्य एनं जहि ॥ ४३ ॥

टीका.

श्रव ज्ञानके विरोधियोंमे प्रधान कहते हैं, ज्ञानविरोधियोंमे
इंद्रिय प्रबल हैं ऐसा पंडितजन कहते हैं, इंद्रियोंसे मन प्रबल
है क्यों कि इंद्रियोंका नियंत्रण किया और मनको वश न किया
तौ वह मन इंद्रियोंको चलायमान जरूर करेगा और मनसे बुद्धि
प्रबल है कारण कि, मनकोभी बुद्धि चलायमान करती है और इस
बुद्धिसेभी जो प्रबल है सो काम है कारणकी कामना बुद्धिको-
भी चलायमान करै है ॥ ४२ ॥ हे अर्जुन! ऐसे बुद्धिसे प्रबल इस
कामरूप अति दुःसह शत्रुको जानिके फिर मनको बुद्धिसे करिके
रोकिके इस कामरूप शत्रुको जीतौ ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां यो
गशास्त्रेश्रीकृष्णार्जनसंवादे कर्मयोगो नाम तृती
योऽध्यायः ३ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां
भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवान्
हमव्ययं ॥ विवस्वान् मनवे प्राह मनुः इक्ष्वाकवे
ऽब्रवीत् ॥ १ ॥ एवं परंपराप्राप्तमिमं राजर्षयो
विदुः ॥ सकालेनेह महता योगानुष्ठः परंतप ॥ २ ॥
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ॥ भक्तोऽ
सि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमं ॥ ३ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच अहं इमं अव्ययं योगं विवस्वते प्रोक्त-
वान् विवस्वान् मनवे प्राह मनुः इक्ष्वाकवे अब्रवीत् ॥ १ ॥
एवं परंपराप्राप्तं इमं राजर्षयः विदुः हे परंतप स योगः इह
महता कालेन नष्टः ॥ २ ॥ स एव अयं पुरातनः योगः म
या अद्य प्रोक्तः यतः त्वं मे भक्तः असि च सखा असि
इति हियस्मात् एतत् उत्तमं रहस्यं अस्ति ॥ ३ ॥

टीका.

तीसरे अध्यायमे प्रकृती संसर्गिक मुमुक्षुको यकवारगीताज्ञान
योगमे अधिकार नहीं हो सकता, इसवास्ते उसको कर्मही कर-
ना कहा औ ज्ञानयोगीको भी कर्तृत्व त्याग पूर्वक कर्मही श्रेष्ठ
कहा औ शिष्टाचारके वास्ते भी कर्म करनाही श्रेष्ठ कहा अव च-
तुर्थ अध्यायमे इसी कर्म योगकी कर्तव्यता समस्त जगत उ-
द्धारके वास्ते मन्वन्तरके आदिमे कही थी सो दृढ करते हैं औ
इसके अंतर्गत ज्ञानयोग है इसवास्ते इसकी ज्ञानयोगाकारता
देखायके कर्म योगका स्वरूप औ उसके भेद औ कर्म योगमे
ज्ञानहीके अंशकी प्राधान्यता कहते है औ इसी प्रसंगसे भग-
वानके श्रवतारके निश्चयको भी कहते हैं ॥ श्रीभगवान् कह

तेहैं कि, मैंने यह योग तुझारेसे कहा सो केवल इसी कालमे दुद्धके उत्साहके बढानेको कहा; ऐसान समझौ क्योंकि मन्वंतरके आदिसे इसी मोक्षसाधन अखंडित योगको मैंने विवस्वान् याने सूर्यको उपदेश कियाथा, सो सूर्य राजा श्राद्धदेव मनुको कहते भये औ मनुने इक्ष्वाकुसे कहा, ऐसेपरंपरासे प्राप्तहै इसको इसीतरहराजऋषी जानते भये. हेपरंतप अर्जुन! सो योग इसलोकमे श्रोताजनोंकी बुद्धिमंदतासे बहुत काल करिके नष्टभयाथा ॥ २ ॥ सोई यह पुरातन योग मैंने तुझारेको आज कहा क्योंकि, तुम मेरे भक्तहौ औ सखाभी हौ इसवास्ते कहा; नही तौ यह उत्तम वेदांतोदित रहस्य याने ज्ञान है, अर्थात् दूसरेको कहना न चाहिये, अपना होय उसीको कहना. ॥ ३ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ अपरं भवतो जन्म परं जन्म विवस्वतः ॥ कथमेतद्विजानीयां त्वमादौ प्रोक्तवानिति ॥ ४ ॥

अन्वयः

अर्जुन उवाच भवतः जन्म अपरं विवस्वतः जन्म परं त्वं आदौ विवस्वते प्रोक्तवान् इति एतत् अहं कथं विजानीयां ॥ ४ ॥

टीका.

अब इस प्रसंगमे भगवान्के अवतारका यथार्थ निश्चय जाननेको अर्जुन बोले की, तुझारा जन्म इस कालमे भया है, औ सूर्यका जन्म अष्टादश चतुर्गुणके आदिमे भया था, जो तुम कहते हौ कि मैंने मन्वंतरकी आदिमे सूर्यसे कहा है, यह ऐसे हम कैसे जानै? ॥ ४ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ बहूनिमेव्यतीतानिजन्मानि
 तवचार्जुन ॥ तान्यहंवेद्विसर्वाणिनत्वंवेत्थपरं
 तप ॥ ५ ॥ अजोऽपिसन्नव्ययात्माभूतानामीश्व-
 रोऽपिसन् ॥ प्रकृतिंस्वामधिष्ठायसंभवाम्यात्म
 मायया ॥ ६ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हे अर्जुन हेपरंतप मे जन्मानिच त-
 व जन्मानि बहूनि व्यतीतानितानि सर्वाणि अहंवेद्वि
 त्वं न वेत्थ ॥ ५ ॥ अस्यकारणमाह अजोपीति निश्चये
 अजः सन् अव्ययात्मासन् भूतानां अपि ईश्वरः सन्
 स्वांप्रकृतिं अधिष्ठाय आत्ममायया संभवामि ॥ ६ ॥

टीका.

श्रीकृष्णभगवान् अब इसी उत्तरमे आपके अवतारका प्र-
 कार औ देहका निश्चय औ जन्मका कारण भी कहते हैं, जैसेकि,
 श्रीकृष्णभगवान् बोलते भये हे अर्जुन! मेरे जन्म औ तुम्हारेजन्म
 बहुत व्यतीत भये हैं, तिन सवनको मैं जानता हौं औ तुम नहीं
 जानते हो। ॥ ५ ॥ इसका कारण कहते हैं कि, निश्चय मैं अजन्मा-
 हुआभया औ एक रसहुआ भया भूत प्राणिमात्रका ईश्वर हु-
 आभया अर्थात् अजन्मत्व अव्ययत्व औ ईश्वरत्वको न छोड
 ता भया आपहीकी प्रकृतिका आश्रय करिके याने आपहीके
 स्वभावको आश्रित करिकेआपको जानता भया, स्वरूपग्रहण
 करता हौं;आपको भूलजाना यह जीवका धर्म है,इहां मायाश-
 ब्द ज्ञातवाचक हे,अर्थात् आपके ज्ञानसंयुक्त अवतार लेताहौं.
 मेरेको ज्ञान नित्य है जीवनको अनित्य है सो श्रुति प्रसिद्ध है.

परास्यशक्तिर्विविधैवश्रूयतेस्वाभाविकीज्ञानबलक्रियाचेति ॥६॥

मूलम्.

यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिभारत ॥ अभ्यु-
त्थानमधर्मस्यतदात्मानंसृजाम्यहम् ॥७॥

अन्वयः

हे भारत यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिः अधर्मस्य अभ्यु-
त्थानं भवति तदा अहं आत्मानं सृजामि ॥ ७ ॥

टीका.

अव अवतार प्रयोजन कहते हैं, जब जब वेदोक्त वर्णा-
श्रम धर्मकी मलिनता औ अधर्मकी वृद्धि होती है तब तब
मैं कहे भये प्रकारसे देह धारण करता हौं, कुछ कालकाभी
नियम नहीं है. ॥ ७ ॥

मूलम्.

परित्राणायसाधूनांविनाशायचदुष्कृतानाम् ॥
धर्मसंस्थापनार्थायसंभवामिच्युगेयुगे ॥ ८ ॥

अन्वयः

साधूनां परित्राणाय च दुष्कृतां विनाशाय च धर्मसंस्था-
पनार्थाय युगे युगे अहं संभवामि ॥ ८ ॥

टीका

सो अगाडी कहेंगे 'अनन्याश्रितयंतोमां' ॥ अपिचेत्सदुरा-
चारो भजते मामनन्यभाक् ॥ साधुरेवसमंतव्यः सम्यग्व्यवसितो
हिसः ॥ इत्यादि वाक्योंके प्रमाणसे जे मेरे अनन्य भक्त साधू
उनकी रक्षाकेवास्ते औ दुष्टोंके विनाश करनेके वास्ते ऐसेही
वेदोक्त धर्म स्थापन करनेके वास्ते मैं देन मनुष्यादिक रूपोंसे
युग युगमें अवतार लेताहौं. ॥ ८ ॥

मूलम्.

जन्मकर्मचमेदिव्यमेवंयोवेत्तितत्त्वतः ॥ त्यस्कां
देहंपुनर्जन्मनैतिमामेति सार्जुन ॥ ९ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन! मैं दिव्यं जन्म च दिव्यं कर्म एवं यः तत्त्वतः वे-
त्ति सः देहं त्यक्त्वा पुनः जन्म न एति किंतु मा एति ॥ ९ ॥

टीका.

हे अर्जुन! मेरे दिव्य ज्ञाने अप्राकृत अलौकिक जन्म और
साधुरक्षणरूप दिव्यकर्म इनको जो ऐसे निश्चय कारिके
जानता है सो इस देहको त्यागिके फिरी जन्म नहीं लेता है,
क्योंकि मेरेहीको प्राप्त होता है. ॥ ९ ॥

मूलम्.

वीतरागभयक्रोधामन्मयामामुपाश्रिताः ॥ वह
वोज्ञानतपसापूतामद्भावमागताः ॥ १० ॥

अन्वयः

वीतरागभयक्रोधाः मन्मयाः मां उपाश्रिताः एवं भूता-
वहवः ज्ञानतपसा पूताः मद्भावं आगताः ॥ १० ॥

टीका.

व्यतीत भये हैं संसारिके अनुराग भय और क्रोधजिनके और
मेरेमें हैं चित्त जिनके तथा मेरेही आश्रित ऐसे पुरुष बहुतसेइ-
समेरे स्वरूप ज्ञानरूप तपसे पवित्र हुये मेरेको प्राप्त भये हैं. ॥ १० ॥

मूलम्.

येयथामांप्रपद्यंतेतांस्तथैवभजाम्यहं ॥ मम
वर्त्मानुवर्तनंमनुष्याःपार्थसर्वशः ॥ ११ ॥

अन्वयः

हे पार्थ ये मा यथा प्रपद्यंते अहं तान् तथा एव भजामि
यतः सर्वशः मनुष्याः मम वर्त्मानु वर्तते ॥ ११ ॥

टीका.

हे पृथाकेपुत्र अर्जुन! जे मनुष्य मेरेको जैसे भजते हैं उनको
मैभी वैसाही भजता हौं, जैसे किसकाम वह के इंद्र, अग्नि इ-
त्यादिक मेरे स्वरूपको भजते हैं तौ मै उनको उसी रूपसे का-
मना देता हौं. क्योंकि, सर्व यज्ञका भोक्ता इंद्रादिरूपसे मही हौं-
अहं हि सर्व यज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ॥ इत्यादि प्रमाणोंसे औ जो
निष्काम वहेके सर्वेश्वर जानिके मेरेहीको भजाता है, याने जो
कुछ करता है सो सब मेरेही अर्पण करता है उसको मैभी सर्वो-
त्कृष्ट मोक्ष देता हौं, कारण वेदमे जो मार्ग है वै मेरेही कहे भये हैं
तौ जो जो मनुष्य सकाम अथवा निष्काम कर्म करते हैं वै मे-
रेही कहे प्रमाण चलते हैं, हसवास्ते उनके भजनानुकूल मैभी
उनको भजता हौं, याने वैसाही फल देता हौं. ॥ ११ ॥

मूलम्

कांक्षतः कर्मणां सिद्धिं यजंत इह देवताः ॥

क्षिप्रं हि मानुषे लोके सिद्धिर्भवति कर्मजा ॥ १२ ॥

अन्वयः

कर्मणां सिद्धिं कांक्षतः संतः जनाः इह मानुषे लोके देव-
ताः यजंत हि यस्मात् कर्मजा सिद्धिः क्षिप्रं भवति ॥ १२ ॥

टीका.

कर्म सिद्धिकी इच्छा करते हुए मनुष्य इस मनुष्यलोकमे इंद्रा-
दिक देवताँका यज्ञ करते हैं औ मेरेको स्वतंत्रतासे नहीं पूजते हैं.
क्योंकि, उनके कर्मकी सिद्धितत्कालहोती है औ निष्काम कर्मसे

तत्काल सिद्धि दीखती नहीं केवल अंतमे मोक्षप्राप्त होती है ॥ १२ ॥

मूलम्.

चातुर्वर्ण्यमया सृष्टं गुणकर्मविभागशः ॥

तस्य कर्तारमपि मां विद्वद्य कर्तारमव्ययं ॥ १३ ॥

अन्वयः

गुणकर्मविभागशः मया चातुर्वर्ण्यं सृष्टं तस्य कर्तारं
अपि मां अकर्तारं अव्ययं विद्धि ॥ १३ ॥

टीका.

गुण और कर्मोंके विभाग करिके चारौवर्ण संयुक्त इस संसार-
को मैंने उत्पन्न किया है जैसेकि, सत्त्वगुण प्रधान ब्राह्मण उनके
शम दमादिक कर्म सत्त्वरज प्रधान क्षत्रिय उनके शूरत्व युद्धादि-
क कर्म रज तम प्रधान वैश्य उनके कृषिवाणिज्यादिक कर्म तमो-
गुणप्रधान शूद्रउनका तीनौवर्णकी परिचर्यारूपकर्म ऐसेगुणऔं
कर्मके विभाग करिके जो चातुर्वर्ण्यमैंने उत्पन्न किया है उसका
कर्ता जो मैं तिसको अव्यय जानिके अकर्ता समझौं ॥ १३ ॥

मूलम्.

न मा कर्माणि लिप्यन्ति मे कर्मफले स्पृहा ॥ इति

मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न वदद्यते ॥ १४ ॥

अन्वयः

मां कर्माणि न लिप्यन्ति मे कर्मफले स्पृहान् अस्ति इति
यः मां अभिजानाति सः कर्मभिः न वदद्यते ॥ १४ ॥

टीका.

जो प्रथम कहाकी मेरेको अकर्ता जानौ उसका कारण कहते
हैं कि मेरेको कर्म लिप्त नहीं होते हैं. क्योंकि, मेरेको कर्म फलकी
वृष्णा नहीं इसवास्ते मेरेको कर्मबंधन नहीं ऐसे जो मेरेको जानता

है सोभी कर्मबंधनको प्राप्त नहीं होता है; अर्थात् जो कर्मबंधन रहित जानिके मेरा भजन करता है सो मुक्त होता है. ॥ १४ ॥

मूलम्.

एवंज्ञात्वाकृतंकर्मपूर्वरपिमुमुक्षुभिः ॥ कुरुकर्मैव
तस्मात्त्वंपूर्वःपूर्वतरंकृतं ॥ १५ ॥

अन्वयः

पूर्वैःमुमुक्षुभिःअपि एवं ज्ञात्वा कर्म कृतं तस्मात् त्वं
अपि पूर्वैःकृतंपूर्वतरं कर्म एव कुरु ॥ १५ ॥

टीका.

पूर्वकालके मन्वादिक मुमुक्षुजनोंनेभी ऐसा जानिके कर्म किया इसीवास्ते तुमभी पूर्व मुमुक्षुनका किया प्राचीन कहा हुआकर्मही करौ. ॥ १५ ॥

मूलम्.

किंकर्मकिमकर्मेतिकवयोऽप्यत्रमोहिताः ॥

तत्तेकर्मप्रवक्ष्यामियज्ज्ञात्वामोक्ष्यसेऽश्नुषु ॥ १६ ॥

शुभात्

अन्वयः

कर्मकिं अकर्मकिं इति अत्र कवयःअपि मोहिताःतत्
कर्म अहं ते प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा अशुभात् मोक्ष्यसे ॥ १६ ॥

टीका.

कर्म क्याहै औ अकर्म क्या है इस विषयमे कवी जे सारा-सार विवेकी वैभी मोहको प्राप्त होते है, याने निश्चय करिके नहीं जानते हैं सो कर्म मै तुमसे कहौंगा जिसको जानिके संसारसे मुक्त होउगे. ॥ १६ ॥

मूलम्.

कर्मणोह्यपिवोद्धव्यंबोद्धव्यंचविकर्मणः ॥

अकर्मणश्चबोद्धव्यंगहनाकर्मणोगतिः ॥ १७ ॥

अन्वयः

हि यस्मात् कर्मणः स्वरूपं बोद्धव्यं च विकर्मणः स्वरूपं बोद्धव्यं च अकर्मणः स्वरूपं बोद्धव्यं तस्मात् कर्मणः गतिः गहना ॥ १७ ॥

टीका.

जिसवास्ते कि कर्म जो करने योग कर्म उसका स्वरूप जानना चाहिये औ विकर्म जिस एक कर्ममे विविध प्रकार हैं उसकाभी स्वरूपजानना चाहिये औ अकर्म जो व्यवसायात्मिका बुद्धिकारिके एक ईश्वराराधनार्थ निष्काम कर्म है उसकाभी स्वरूप जानना चाहिये इसवास्ते कर्मकी गति दुर्गम है ॥१७॥

मूलम्.

कर्मण्यकर्मयःपश्येदकर्मणिचकर्मयः ॥

सबुद्धिमान्मनुष्येषुसयुक्तःकृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

अन्वयः

यः कर्मणि अकर्म पश्येत् च अकर्मणि यः कर्म पश्येत् सः मनुष्येषु बुद्धिमान् सः युक्तः सः कृत्स्नकर्मकृत् ॥ १८ ॥

टीका.

अब कर्म औ अकर्मका स्वरूप ज्ञातृत्व कहते हैं, जो मनुष्य क्रियमाण कर्ममे अकर्म याने आत्मज्ञान देखै औ अकर्म जो आत्मज्ञान तिसमे कर्म देखै जैसे कि, निष्काम कर्मसे आत्मज्ञान होता है औ आत्मज्ञान उस कर्मविना होतानहीं; इसवास्ते जो कर्मको ज्ञानाकार औ ज्ञानको कर्माकार समुझैसो मनुष्य सर्व मनुष्योमे बुद्धिमान् औ सोई योगी औ सोई सर्व कर्मका करनेवाला है. ॥ १८ ॥

मूलम्.

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः ॥
ज्ञानाग्निदग्धकर्माणंतमाहुःपंडितंबुधाः ॥ १९ ॥

अन्वयः

यस्य सर्वे समारंभाः कामसंकल्पवर्जिताः स्युः ज्ञानाग्नि-
दग्धकर्माणं तं बुधाः पंडितं श्राहुः ॥ १९ ॥

टीका.

प्रत्यक्ष क्रियमाण कर्म उसकी ज्ञानाकारता कैसे होय तो कहते हैं, जिसके समग्र लौकिक वैदिक श्रारंभ कामना संकल्प-से रहित होय तब ज्ञानरूप अग्नि करिके दग्ध भये है, बंधनकार-क कर्म जिसके उसको विद्वान लोग पंडित कहते हैं. ॥ १९ ॥

मूलम्.

त्यक्त्वा कर्मफलासंगं नित्यतृप्तो निराश्रयः ॥
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽपि नैव किंचित् करोति सः ॥ २० ॥

अन्वयः

यः कर्मफलासंगं त्यक्त्वा नित्यतृप्तः निराश्रयः कर्मणि अ-
भिप्रवृत्तः अपि सः किंचित् एव न करोति ॥ २० ॥

टीका.

जो कर्मकी फलासक्तिको त्यागिके नित्य आत्मामे तृप्त औ
अस्थिर प्रकृतिमे आश्रय बुद्धि रहित व्हेके कर्म करता है तौभी
तो कुछभी कर्म नहीं करता है क्योंकि, कर्मके भिससे ज्ञानही;
का अभ्यास करता है. ॥ २० ॥

मूलम्.

निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ॥
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषं ॥ २१ ॥

अन्वयः

यः निराशीः यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः सः केवलं
शारीरं कर्म कुर्वन् सन् किल्बिषं न आप्नोति ॥ २१ ॥

टीका.

जो मुमुक्षु कर्मफलकी इच्छा रहित औ चित्त तथा मनको
स्वाधीन किये होय औ केवल आत्माहीकी प्रयोजनता करिके
प्रकृति संबंधी वस्तुनमेममता रहित होय सो केवल शरीर संबं
धी कर्म करता हुआ कर्म बंधनको नही प्राप्त होता है ॥ २१ ॥

मूलम्.

यदृच्छालाभसंतुष्टोद्वंदातीतोविमत्सरः ॥ समः
सिद्धावसिद्धौ च कृत्वापि न निबध्यते ॥ २२ ॥

अन्वयः

यदृच्छालाभसंतुष्टः द्वंदातीतविमत्सरः सिद्धौ च असिद्धौ
समः एवंभूतः पुमान् कर्म कृत्वा अपि न निबध्यते ॥ २२ ॥

टीका.

आपहीसेप्राप्त भये पदार्थसे संतुष्ट सुखदुःख लाभ अलाभ
हर्ष शोक इत्यादिक द्वंद्वौ करिके रहित औ ईर्षारहित तथा सि-
द्धि औ असिद्धिमे समबुद्धि ऐसा पुरुष कर्म करिकेभी बंधनमे
आता नही ॥ २२ ॥ ॥

मूलम्.

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ॥ यज्ञा
याचरतः कर्मसमग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

अन्वयः

गतसंगस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः यज्ञाय कर्म आ-
चरतः जनस्य समग्रं प्रविलीयते ॥ २३ ॥

टीका.

त्यागे हैं आत्म व्यतिरिक्त संग जिसने और छोड़ी हैं संसार वासना जिसने और आत्मज्ञानमे स्थिर है चित्त जिसका ऐसा मुमुक्षू जो यज्ञ निमित्त कर्म करता है तौ उसी कर्मकरिके उसके बंधन कारक प्राचीन कर्म नष्ट होते हैं. ॥ २१ ॥

मूलम्.

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतं ॥ ब्रह्मै
वतेन गंतव्यं ब्रह्म कर्म समाधिना ॥ २४ ॥

अन्वयः

ब्रह्मार्पणं ब्रह्महविः ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतं तेन ब्रह्मकर्म समाधिना ब्रह्म एव गंतव्यं ॥ २४ ॥

टीका.

प्रकृतिसे भिन्न आत्मस्वरूपके अनुसंधान योग करिके कर्मका ज्ञानकारत्वकहा अब परब्रह्मके अनुसंधानके योग करिके ज्ञानाकारत्व उसी कर्मयोगका कहते हैं, जिसकरिके अर्पण करते हैं वहस्रुवा इत्यादिक वस्तु ब्रह्म हैं अर्थात् ब्रह्मका कार्य और हव्य है वहभी ब्रह्म अग्निभी ब्रह्म हवन करनेवाला भी ब्रह्म, उसीने हवन किया ऐसे सर्वकर्मब्रह्मात्मक है इसवास्ते उसी ब्रह्म कर्मकी धारणासे ब्रह्मही प्राप्तहोने योग्य है. ॥ २४ ॥

मूलम्.

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ॥ ब्रह्माग्नावं
परे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुव्हति ॥ २५ ॥

अन्वयः

अपर योगिना दैवं एव यज्ञं पर्युपासते अपरे ब्रह्माग्नौ यज्ञेन यज्ञं एव उपजुव्हति ॥ २५ ॥

टीका.

ऐसे कर्मकी ज्ञानाकरता कहिके अथ कर्मयोगके भेद कहते हैं, और केतनेक कर्मयोगी देवाराधनरूप यज्ञ अर्थात् देव प्रतिमादिक पूजन रूपही यज्ञ करते है और केतने ब्रह्ममय अग्नि मे यज्ञ साधन सामग्री करिके हवन रूप यज्ञ करते हैं. ॥ २५ ॥

मूलम्.

श्रोत्रादीर्नाद्रियाण्यन्येसंयमाग्निषुजुहति ॥

शब्दादीन्विषयानन्येइंद्रियाग्निषुजुहति ॥ २६ ॥

अन्वयः

अन्ये श्रोत्रादीनि इंद्रियाणिसंयमाग्निषु जुहति अन्ये शब्दादीन् विषयान् इंद्रियाग्निषु जुहति ॥ २६ ॥

टीका.

और केतनेक योगी श्रवण इत्यादिक इंद्रियोंको संयमरूप अग्निमे हवन करते हैं अर्थात् श्रोत्रादि इंद्रियोंको शुभकर्मही मे लगाते हैं और केतनेक योगी शब्दादिविषयोंको इंद्रियरूप अग्निमे हवन करते हैं, याने मितभाषणादिक करते हैं. ॥ २६ ॥

मूलम्

सर्वाणीन्द्रियकर्माणिप्राणकर्माणिचापरे ॥

आत्मसंयमयोगाग्नाजुहतिज्ञानदीपिते ॥ २७ ॥

अन्वयः

अपरे सर्वाणि इंद्रियकर्माणि च प्राणकर्माणि ज्ञानदीपिते आत्मसंयमयोगाग्नौ जुहति ॥ २७ ॥

टीका.

और केतनेक योगी सर्व इंद्रियोंके कर्मोंको औ प्राणोंके कर्मोंकोज्ञान करिके प्रदीप्त ज्येमनके संयमरूप अग्नि तिसमे हा-

मते हैं अर्थात् मन करिके इंद्रिय औ प्राणोंके कर्मोंकी प्रवृत्ति-
को निवारण करनेमे यत्न करते हैं. ॥ २७ ॥

मूलम्.

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञायोगयज्ञास्तथापरे ॥

स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्रयतयःसंशितव्रताः ॥ २८ ॥

अन्वयः

अपरे योगिनः द्रव्ययज्ञाः अपरे तपोयज्ञाः अपरे योग-
यज्ञाः अपरे संशितव्रताः यतयः स्वाध्यायज्ञानयज्ञाः
सन्ति ॥ २८ ॥

टीका.

और केतनेक योगी द्रव्य करिके दान देवप्रतिष्ठार्चनादि
करूप यज्ञ करनेवाले है केतने कृच्छ्रांचांद्रायणादिक तपरूप यज्ञ
करनेवाले हैं केतनेक पुण्य क्षेत्रादिक योगरूप यज्ञ करनेवा-
ले हैं; और केतनेक दृढव्रति यत्नशालि वेदाध्ययन औ वेदार्थ
विचाररूप यज्ञ करनेवाले हैं ॥ २८ ॥

मूलम्.

अपानेजुव्हतिप्राणंप्राणेऽपानंतथापरे ॥ प्राणा

पानगतीरुध्वाप्राणायामपरायणाः ॥ २९ ॥ अ

परेनियताहाराःप्राणान्प्राणेपुजुव्हति ॥ सर्वेऽ

प्येतेयज्ञविदोयज्ञक्षपितकल्मषाः ॥ ३० ॥ यज्ञ

शिष्टाऽमृतभुजोयातिब्रह्मसनातनं ॥ नायंलो

कोऽस्ययज्ञस्यकुतोऽन्यःकुरुसत्तम ॥ ३१ ॥

अन्वयः

अपरे नियताहाराः प्राणायामपरायणाः अपाने प्राणं

जुव्हती तथा अपरे एवंभूताः अपानं जुव्हति तथा अपरे एवंविधाः प्राणापानगतीरुध्वा प्राणान् प्राणेषु जुव्हन्ति एते सर्वे अपि यज्ञविदः यज्ञक्षपितकल्मषाः यज्ञशिष्टाऽमृतभुजः सनातनं ब्रह्म यांति हे कुरुसत्तम अयज्ञस्य अयं लोकः अपि न अस्ति तर्हि अन्यः कुतः ॥ १ ॥

टीका

और केतनेक कर्मयोगी प्राणायाममे निष्ठा करते हैं वै पूरक-रेचक, कुंभक, भेद करिके तीन प्रकारके हैं वै ऐसेकि निश्चयाने प्रमाण है आहार जिसका जैसेकि पेटके दो भाग अन्नसे भरना तीसरा जलसे भरना चौथा वायुके संचारकेवास्ते खाली राखना ऐसे प्रमाणसे आहार करनेवाले औ प्राणायाम कर्ममे तत्पर जे कर्मयोगी वै केतनेक तौ अपानवायुमे प्राणवायुको होमते हैं याने पूरक करते हैं तैसेही केतनेक योगी प्राणवायुमे अपानयुक्त करते हैं याने रेचक करते हैं, तैसेही और प्राण औ अपान इन दोनोंकी गतिको रोकिके प्राणोंको प्राणनहीमे युक्त करते हैं याने कुंभक करते हैं, ये सबही यज्ञके जाननेवाले जो हैं उनके उन्हीं यज्ञों करिके पापनष्ट भये हैं औ यज्ञका शेष अमृतरूप पदार्थ सेवन करते हैं वै सनातन ब्रह्मको प्राप्त होयंगे हे अर्जुन! जो यत्नी यज्ञोंमैसे कोईसीभी यज्ञ नहीं करता है उसको यही लोक सुखकारक नहीं है तौ परलोक तौ कहांसे होयगा? ॥ ३ १

मूलम्.

एवं बहुविधायज्ञावितता ब्रह्मणो मुखे ॥ कर्मजान् विदितान् सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे ॥ ३२ ॥

अन्वयः

एवं बहुविधाः यज्ञाः ब्रह्मणः मुखे वितता तान् सर्वान्

कर्मजान् विद्धि एवं ज्ञात्वा विमोक्षयसे ॥ ३२ ॥

टीका.

ऐसे बहुत प्रकारके यज्ञ वेदमे विस्तारसहित कहे हैं वे सबकर्मसे होती हैं ऐसे जानौ ऐसे जानिके कर्मानुष्ठान करिके संसारसे मुक्त होउगे. ॥ ३२ ॥

मूलम्.

श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञःपरंतप ॥ सर्वैक
र्माऽखिलंपार्थज्ञानेपरिसमाप्यते ॥ ३३ ॥ तद्धि
द्विप्रणिपातेनपरिप्रश्नेनसेवया ॥ उपदेक्ष्यंतिते
ज्ञानंज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥ ३४ ॥ यज्ज्ञात्वानपु
नमोहमेवंयास्यसिपांडव ॥ येनभूतान्यशेषेणद्र
क्ष्यस्यात्मन्यथोमयि ॥ ३५ ॥

अन्वयः

हे परंतप द्रव्यमयात् यज्ञात् ज्ञानयज्ञः श्रेयान् हे पार्थ
सर्वं अखिलं कर्म ज्ञाने परिसमाप्यते ॥ ३३ ॥ तत् ज्ञानं
तत्त्वदर्शिनः ज्ञानिनः तेषां उपदेक्ष्यन्ति त्वं तेषांसेव-
या प्रणिपातेन परिप्रश्नेन विद्धि ॥ ३४ ॥ हे पांडव यत्
ज्ञानं ज्ञात्वा पुनः एवं मोहं न यास्यसि येन अशेषेण
भूतानि आत्मनि द्रक्ष्यसि अथो मयि द्रक्ष्यसि ॥ ३५ ॥

टीका.

हे अर्जुन द्रव्यमय यज्ञसे ज्ञानयज्ञ श्रेष्ठ है क्योंकि, सर्व फ-
लसहित कर्मका अंत ज्ञानहीमे समाप्त होता है अर्थात् कर्म-
भीज्ञानहीके प्राप्ति निमित्त है ॥ ३३ ॥ सो ज्ञान तत्त्वके जान-
नेवाले ज्ञानी तुमको उपदेश देंगे, जो आत्मविषयिक ज्ञान

तुमको प्रथममैने कहा अविनाशितुतद्विद्धि इहासे लैके एपाते
 भिहितासांख्ये इहांतक सोईज्ञान तुम उन ज्ञानी जनौकी सेवा
 करिके औ नम्र व्हैके प्रश्न करो तब वै कहेंगे इहां श्रीकृष्णने यह
 वाक्य केवल ज्ञानी जनौकी प्रशंसा निमित्त कहा है क्योंकि उ-
 पदेश किया है औ फिर कहते है कि ज्ञानी उपदेश करेंगे ॥ ३४ ॥
 हे पांडुपुत्र जो ज्ञान तुम जानिके फिर ऐसे मोहको न प्राप्त हों
 उगे जिस करिके आपके आत्मस्वरूपमे सर्वभूत प्राणिमात्रको
 देखौंगे अर्थात् ज्ञानाकारतासे प्रकृति भिन्न आत्मा सर्वसामान
 हैं इसपीछे सर्वको मेरेसे देखौंगे जैसेकि प्रकृतिसे न्यारे होनेसे
 मेरि समताको प्राप्त होते हैं सो अगाडिकहौंगा ॥ इदंज्ञानमुपा-
 श्रित्यममसाधर्म्यमागताः ॥ सूत्रभी कहै है भोगमात्रसाम्यलिं-
 गाच्च ॥ श्रुनिभीप्रमाण है तथा विधान्पुण्य पापे विधूयनिरंजनः
 परमंसाम्यमुपैति ॥ इत्यादि प्रमाणोंसे नाम औ रूप करिके
 रहित आत्माकी औ परमात्माके स्वरूपकी समता निश्चय
 होतीहै इसवास्ते प्रकृति करिके रहित सर्व आत्मवस्तु परस्पर
 समान हैं औ परमेश्वरके भीसमान हैं. ॥ ३५ ॥

मूलम्.

अपिचेदसिपापेभ्यःसर्वेभ्यःपापकृत्तमः ॥

सर्वज्ञानश्लवेनैववृजिनंसंतरिष्यसि ॥ ३६ ॥

अन्वयः

अपि चेत् सर्वेभ्यः पापेभ्यः पापकृत्तमः असि तथापि
 ज्ञानश्लवेन एतत्सर्वं वृजिनं संतरिष्यसि एव ॥ ३६ ॥

टीका.

जो कदाचित् सर्व पापकरनेवालोंसे भी तुम बडे पापकारक

होउगे तौभी ज्ञानरूपी नौका करिके समस्त पापसमुद्र-
को तरौगे यह निश्चय जानौ. ॥ ३६ ॥

मूलम.

यथैधांसिसमिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥
ज्ञानाग्निःसर्वकर्माणिभस्मसात्कुरुतेतथा ॥ ३७ ॥

अन्वयः

हेअर्जुन यथा समिद्धः अग्निः एधासि भस्मसात् कुरुते
तथा ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते ॥ ३७ ॥

टीका.

हेअर्जुन! जैसे प्रज्वलित अग्नि इंधनको समग्र भस्म करताहै
तैसेही ज्ञानरूप अग्नि सर्व कर्मोंको समग्र भस्म करताहै. ॥ ३७॥

मूलम.

नहिज्ञानेनसदृशंपवित्रमिहविद्यते ॥ तस्व
यंयोगसंसिद्धःकालेनात्मनिविंदति ॥ ३८ ॥

अन्वयः

इह जगति ज्ञानेनसदृशंपवित्रं हि अन्यत् न विद्यते तत्
ज्ञानं कालेन योगसंसिद्धः अत्मनि स्वयंविंदति ॥ ३८ ॥

टीका.

इस जगतमे ज्ञानके सदृश पवित्र करनेवाला और नहींहै
सो ज्ञान कुछ काल करिके निष्काम कर्म करते करते कर्मसि-
द्धिको प्राप्त भया पुरुष आत्मामे आपही प्राप्त होताहै याने
आपहीमे आप पावताहै. ॥ ३८ ॥

मूलम.

श्रद्धावांल्लभतेज्ञानंतत्परःसंयतेंद्रियः ॥ ज्ञानंल
ब्ध्यापरांशांतिमचिरेणाधिगच्छति ॥ ३९ ॥

अज्ञश्चाश्रद्धधानश्च संशयात्मा विनश्यति ॥ ना
यं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ॥ ४० ॥

अन्वयः

तत्परः संयतेन्द्रियः श्रद्धावान् ज्ञानं लभते ज्ञानं लब्ध्वा अ-
चिरेण परां शान्तिं अधिगच्छति ॥ ३९ ॥ च अज्ञः च अ-
श्रद्धधानः संशयात्मा नरः विनश्यति संशयात्मनः अयं
लोकः न अस्ति न परः लोकः अस्ति न सुखं अस्ति ॥ ४० ॥

टीका.

ज्ञानप्राप्तिमें है मन जिसका औ संयम किया है इंद्रियोंका
जिसने ऐसा श्रद्धावान् पुरुष ज्ञानको प्राप्त होता है औ ज्ञानप्राप्त
वैके थोड़ेही कालमें परम शान्तिको प्राप्त होता है. अर्थात् मोक्ष
प्राप्त होता है ॥ ३९ ॥ औ जो अज्ञान है औ श्रद्धा रहित है औ
जिसके मनमें संशय है, सो बिनाशको प्राप्त होता है; यानि संसार-
में भ्रमता है. जिसके मनमें संशय है उसको यह लोक औ पर-
लोक औ सुख इनमेंसे एकभी प्राप्त नहीं होता है. ॥ ४० ॥

मूलम्.

योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयं ॥ आत्म-
वंतं कर्माणि निवर्धन्ति धनं जय ॥ ४१ ॥ तस्मा-
द्ज्ञानसंभूतं हृत्स्थं ज्ञानासिनात्मनः ॥ छित्त्वेन सं-
शययोगमातिष्ठोत्तिष्ठ भारत ॥ ४२ ॥

अन्वयः

हे धनंजय योगसंन्यस्तकर्माणं ज्ञानसंछिन्नसंशयं आत्म-
वंतं कर्माणि न निवर्धन्ति ॥ ४१ ॥ हे भारत तस्मात् अज्ञा-
नसंभूतं हृत्स्थं एनं आत्मनः संशयं ज्ञानासिना छित्त्वा
योगं आतिष्ठ तदर्थं च उत्तिष्ठ ॥ ४२ ॥

टीका.

धर्मजय! योग जो परमेश्वराराधनरूप निष्काम कर्म तिस करिके परमात्माके अर्पण कियेहैं कर्म जिसने औ आत्मज्ञान करिके छेदन कियेहैं संशय जिसने, ऐसे स्थिर मनवाले पुरुषको कर्मबंधन नहीं करिसकते हैं ॥ ४१ ॥ हे भारत! इसीवास्ते अज्ञानसे उत्पन्न औ हृदयमे स्थिर ऐसा जो यह मनका संशय तिसको आत्मज्ञानरूप खड्गसे छेदन करिके कर्मयोगमे स्थित होउ, औ उस कर्मयोगकेवास्ते उठौ, अर्थात् क्षत्रियका कर्म युद्ध है इसवास्ते उठिके युद्ध करौ. ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यास
योगो नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ ॥

इति श्रीमत्सुकल सीतारामात्मज पंडित रघुनाथ प्रसादकृ-
तायां श्रीमद्भगवद्गीता वाक्यार्थबोधिनी भाषा टीकायां चतुर्थो
ऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥ ॥ ७ ॥

मूलम्.

पंचमोऽध्यायः

अर्जुन उवाच ॥ संन्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं
च शंससि ॥ यच्छ्रय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनि-
श्चितं ॥ १ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

अन्वयः

अर्जुन उवाच ॥ हे कृष्ण कर्मणां संन्यासं च पुनः योगं
शंससि एतयोः यत् एकं श्रेयः तन् सुनिश्चितं मे ब्रूहि ॥ १ ॥

टीका.

चौथे अध्यायमेकर्मयोगता ज्ञानाकारत्व पूर्वक स्वरूप भेद

और ज्ञानांशहीका प्रधानत्व कहा और तृतीय अध्यायमे ज्ञानयोगाधिकारीकोभी कर्मयोगहीके अंतरगत आत्मज्ञान है और वह कर्मयोग सुगम है इसवास्ते कर्महीका श्रेष्ठत्वकहा. अब पाचवे अध्यायमे कर्मयोगको आत्मप्राप्तिका साधनत्व और ज्ञानयोगको शीघ्र आत्मप्राप्ति कारकत्व और कर्मयोगके अंतर्गत अकर्तृत्वका अनुसंधान प्रतिपादन करिके और उसका मूलजो ज्ञान उसका निर्णय करते हैं. अर्जुन श्रीकृष्णजीको पूछते हैं कि, हेकृष्ण! कर्मका त्यागजो ज्ञानयोगसो कहते हैं. और फिर कर्म योगकी भी प्रशंसा करते हैं जैसेकि, दूसरे अध्यायमे मुमुक्षुको कहा कि प्रथम कर्म करे फिर कर्म करनेसे अंतःकरण शुद्ध भये, पीछे ज्ञानयोग करिके आत्मदर्शनका उपाय करे और तीसरे यथा चौथे अध्यायमें कहा कि ज्ञान योगाधिकारदशा प्राप्तभये कोभी कर्म निष्ठाही श्रेष्ठ है वही ज्ञाननिष्ठाकी निरपेक्षा करिके आत्मप्राप्तिका साधन है ऐसे कर्म निष्ठाकी प्रशंसा करते हैं, इसवास्ते जो इन दोनोंमे कल्याणकारक होयसो निश्चय हमारेको कहौ. ॥१॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ॥ तद्योस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ॥ २ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच संन्यासः च कर्मयोगः एतौ उभौ निःश्रेयसकरौ स्तः तु तयोः द्वयोः मध्ये कर्मसंन्यासात् कर्मयोगः विशिष्यते ॥ २ ॥

टीका.

श्रीकृष्णभगवान् उच्चर देते हैं कि, संन्यास जो कर्मका त्याग

याने ज्ञान औ कर्मयोगजो कर्मकरना ये दोनौ कल्याणकारक हैं, परंतु तिन्ह दोनौके मध्यमे ज्ञानयोगसे कर्मयोगविशेष है ॥ ॥

मूलम्.

ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न कांक्षति ॥

निर्व्वद्वो हि महाबाहो सुखं बंधात् प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो यः न द्वेष्टि न कांक्षति सः निर्व्वद्वः नित्य-
संन्यासी ज्ञेयः सहि सुखं बंधात् प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

टीका.

जो कर्मयोगी उस कर्मयोगके अंतर्गत जो आत्मानुभव उ-
सी करिके तृप्तहुआ भया नकोई पदार्थसे हेय करता है औ न
किसी पदार्थकी इच्छा करता है, सुखदुःखादि द्वंद्वोंसे रहित है उ-
सीको नित्य संन्यासी जानिये सोई पुरुष कर्म करते करते
सुख पूर्वक कर्मबंधनसे लूटता है ॥ ३ ॥

मूलम्.

सांख्ययोगौ पृथग्वालाः प्रवदंति न पंडिताः ॥

एकमप्यास्थितः सम्यग् उभयोर्विदते फलम् ॥ ४ ॥

अन्वयः

ये सांख्ययोगौ पृथक् प्रवदंति तेवालाः पंडिताः न एकं
अपि सम्यक् आस्थितः सन् उभयोः फलं विदते ॥ ४ ॥

टीका.

जो सांख्य औ योगको अर्थात् ज्ञान औ कर्मयोगको
द्वारा कहते हैं वे मूर्ख हैं, पंडित नहीं हैं; क्योंकि, दोनौका फल
आत्म दर्शन है उसवास्ते जो दोनौ मेंसे शास्त्रप्रमाणसे एकमेंभी
दृढ़ रहै तो दोनौका फल जो आत्मदर्शन है सो पावै ॥ ४ ॥

मूलम्.

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ॥

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥ ५ ॥

अन्वयः

यत् स्थानं सांख्यैः प्राप्यते तत् योगैः अपि गम्यते अ
तः यः सांख्यं च योगं एकं पश्यति स एव पश्यति ॥ ५ ॥

टीका.

जो स्थान अर्थात् आत्मदर्शन ज्ञाननिष्ठावालोंको प्राप्त होता है सोई कर्म योगनिष्ठावालोंको प्राप्त होता है, इसीवा-
स्ते जो पुरुष सांख्य औ योग अर्थात् ज्ञानयोग औ कर्म-
योगको एकही फल देनेवाले जानिके दोनोंको एकही समु-
झता है वही पंडित है ॥ ५ ॥

मूलम्.

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ॥

योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्मन्नचिरेणाधिगच्छति ॥ ६ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो! संन्यासः अयोगतः आप्तुं दुःखं तु योग
युक्तः मुनिः नचिरेण ब्रह्म अधिगच्छति ॥ ६ ॥

टीका.

हे महाबाहो! यह संन्यास कर्मयोगविना प्राप्त होनेको बड़ा
दुःख है औ कर्मयोगी जो आत्मा मननशील है सो पुरुष अति
अल्पकालमें परमेश्वरकी साम्यताको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

मूलम्.

योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ॥

सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि नालिप्यते ॥ ७ ॥

अन्वयः

यः योगयुक्तः सः विशुद्धात्मा स एव विजितात्मा स
एव जितेंद्रियः सः एव सर्वभूतात्मभूतात्मा अतःकर्म
कुर्वन् अपि कर्मभिः नलिप्यते ॥ ७ ॥

टीका.

जो कर्मयोगयुक्त है उसीका मन शुद्ध है कारण कि परमेश्वर
अराधनरूप शुद्धकर्त्त करता है इसवास्ते शुद्ध मन है और
उसी कर्ममे मनकीवृत्ति लगीरहती है जिसते अन्यत्र भ्रमती
नहीं इसीसे मनकोभी जीतिलिया है और जिसने मन जीता
वह इंद्रियोंकोभी जीतिचुका इसते जितेंद्रियभी है और सर्व
देवादिक भूत प्राणीमात्रके आत्माको अपनेही आत्मा सदृ-
श देखता है इसवास्ते वह कर्मकर्त्ता भयाभी कर्मफलों करिके
लिप्त नहीं होताहै अर्थात् बंधनको प्राप्त नहीं होताहै और अ-
ल्पही कालमे ब्रह्मको प्राप्त होताहै. ॥ ७ ॥

मूलम्

नैवकिंचित्कारोमीतियुक्तोमन्येततत्त्ववित् ॥

पश्यन्शृण्वन्स्पृशन्जिघ्रन्श्रन्गच्छन्स्वपन्श्व

सन् ॥ ८ ॥ प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्निमिपन्निमिप

न्नपि ॥ इंद्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तते इति धारयन् ॥ ९ ॥

अन्वयः

तत्त्ववित् युक्तः पुरुषः पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन् अ-
श्रन् गच्छन् स्वपन् श्वसन् ॥ ८ ॥ प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्
उन्मिपन् निमिपन् अपि इंद्रियाणि इंद्रियार्थेषु वर्तते इति
धारयन् सन् अहंकिंचित् एव न करोमि इति मन्येत ॥ ९ ॥

टीका.

तत्वका जाननेवाला कर्मयोगी पुरुष देखता हुआ सुनता हुआ स्पर्श करता हुआ सुंघत हुआ खाता हुआ चलता हुआ सोता हुआ श्वास लेता हुआ बोलता हुआ छोटता हुआ गृहण करता हुआ नेत्र खोलता हुआ श्रौं वंद करता हुआ भी इंद्रियां आप आपके विषयमे वर्तमान होरही हैं ऐसे धारना करता हुआ मे कुछभी नही करता हौं ऐसे मानता है. ॥६॥

मूलम्.

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगंत्यत्का करोति यः ॥

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥ १० ॥

अन्वयः

यः ब्रह्मणि कर्माणि आधाय संगंत्यत्का करोति सः अंभसा पद्मपत्रं इव पापेन न लिप्यते ॥ १० ॥

टीका.

जो पुरुष इंद्रियोंमे कर्मोंका आरोपण करिके औ फलासंग त्यागिके कर्म करता है सो जैसे कमलका पत्र जल करिके लिप्त नहीं होता है तैसे कर्मकर्तृत्व अहंकाररूप पाप करिके लिप्त नहीं होता है; इहां कोई आचार्य ब्रह्म शब्दसे ईश्वरके विषे कर्मधारण करना ऐसा अर्थभी कहते हैं, सो नहीं इहां ब्रह्मनाम प्रकृतीका है ममयोनिर्महद्ब्रह्म इत्यादि प्रमाणोंसे अर्थात् प्रकृती विकार देह श्रौं देह संबंधी इंद्रियां कर्म करनेवाली हैं. ॥१०॥

मूलम्

कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि ॥

यागिनः कर्म कुर्वति संगंत्यत्कात्मशुद्धये ॥ ११ ॥

अन्वयः

यागिनः संगंत्यत्का कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैः इंद्रियैः

अपि आत्मशुद्धये कर्म कुर्वति ॥ ११ ॥

टीका.

कर्मयोगी पुरुष स्वर्गादि प्राप्तिरूप फलसंग त्यागिके शरीर मन बुद्धि औ केवल इंद्रियों करिकेभी आत्मशुद्धीकेवास्ते अर्थात् आत्मगतप्राचीन कर्मबंध छूटनेकेवास्ते कर्म करते हैं ॥ ११ ॥

मूलम्.

युक्तःकर्मफलं त्यक्त्वा शांतिमाप्नोति नैष्ठिकीं ॥

अयुक्तःकामकारेण फले सक्तो निबद्धयते ॥ १२ ॥

अन्वयः

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा नैष्ठिकीं शांतिं आप्नोति अयुक्तः कामकारेण फले सक्तः सन् निबद्धयते ॥ १२ ॥

टीका.

आत्मज्ञान प्राप्तिकेवास्ते कर्म करनेवाला कर्मफलको त्यागिके मनकी स्थिरतारूप शांतिको प्राप्त होता है अर्थात् आत्मानुभवको प्राप्त होता है औ जो आत्मदर्शन विमुख है सो कर्मफलकी कामना करिके फलासक्त हुआ भया बंधनको प्राप्त होता है ॥ १२ ॥

मूलम्.

सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ॥

नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ॥ १३ ॥

अन्वयः

वशी देही नवद्वारे पुरे सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्य न कुर्वन् कारयन् सन् सुखं एव आस्ते ॥ १३ ॥

टीका.

अब देहाकार परिणामको प्राप्तिभई जो प्रकृति उसमे कर्त-

त्वका स्थापन कहते हैं, जिसने चित्त वश किया है ऐसा देही याने जीवसो नवहैं द्वार जिसके ऐसा यह पुरुष अर्थात् देहसो इस देहमे सर्वकर्मका मन करिके स्थापन करिके नवह करता औ नकारवाता भया सुखपूर्वक रहता है अर्थात् कर्म प्राचीन देहसंस्कारसेहैं कुछ आत्मस्वरूप संबंधि नहींहैं इसवास्ते देहसंस्कारिक कर्म देहसंबंधी इंद्रियोंके विषे हैं ऐसा मनकरिके जानताहै सो अकर्तृत्वसे सुखी है ॥ १३ ॥

मूलम्.

नकर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ॥

न कर्मफलसंयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥ १४ ॥

अन्वयः

प्रभुः अकर्मवश्यः आत्माश्रयं लोकस्य कर्तृत्वं न सृजति न कर्माणि सृजति न कर्मफलसंयोगं सृजति किंतु स्वभावः प्रवर्तते । १४ ॥

टीका.

श्रव साक्षात् आत्माया स्वरूप कहते हैं प्रभु अर्थात् कर्मकी वश्यतामे नहीं याने स्वाभाविक स्वरूपमे स्थित ऐसा जो यह आत्मा सो देव पशु मनुष्य स्थावरादिरूप करिके प्रकृतिसंसर्गसे वर्तमान जो लोक तिसका देवादिक असाधारण कर्तृत्व नहीं उत्पन्न करता है औ न उन देवादिकोंके असाधारण कर्मोंको उत्पन्न करता है औ न उन कर्मोंसे उत्पन्न देवादिक फलसंयोगको उत्पन्न करता है क्योंकि, स्वभाव याने प्रकृतिवासनाही प्रवर्त होरही है अर्थात् अनादिकालसे प्रवृत्त पूर्व पूर्वकर्म जनित देवाद्याकार प्रकृति संसर्गकृत उन उन शरीरोंके अभिमानसे उत्पन्न जो वासना उस वासनाका किया हुआ यह कर्तृत्वादि;

कसर्वहै कुल शुद्धचैतन्यकृत नहीं है ॥ इहां कोईएक ऐसा अर्थ करते हैं कि, इस जीवके कर्त्तापनको औ कर्मोंको औ कर्मफलसंयोगको परमात्मा नहीं उत्पन्न करता है क्योंकि, जीवनका स्वभावही वर्त्तमान है परंतु प्रकरण देखिके जो उचित होइ सो ग्रहण करना. ॥ १४ ॥

मूलम्.

नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः ॥ अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यंति जंतवः ॥ १५ ॥

अन्वयः

अयं विभुः कस्यचित् पापं न आदत्ते च सुकृतं एव न आदत्ते अज्ञानेन ज्ञानं आवृतं तेन जंतवः मुह्यंति ॥ १५ ॥

टीका.

यह शुद्धचैतन्य विभु याने परिपूर्ण अर्थात् संपूर्ण इच्छारहित है इसवास्ते कोईका पापयाने पापजनित दुःखको लेता नहीं औ किसीके सुकृतयाने सुकृतजन्यसुखको भी लेता नहीं अर्थात् किसीके भी सुखको अथवा दुःखको दूर नहीं करता है जैसे कि संबंध हेतु करिके पुत्रादिकोंको अपने जानिके उनके दुःख दूर होने केवास्ते उनका पाप लेता नहीं और प्रतिकूलताके हेतु करिके किसी शत्रुके मुख नाशकरनेकेवास्ते उसका सुकृत भी लेता नहीं इसवास्ते यह आत्मा किसीका संबंधी अथवा प्रतिकूल भी नहीं है क्योंकि, यह सर्व वासनाका कियाभया है अहोस्वभावकी ऐसी क्या विपरीत वासना उत्पन्न होती है सो कहें हैं कि, अज्ञान करिके ज्ञान आच्छादित होरहा है इसवास्ते जीव मोहको प्राप्त होते हैं अर्थात् अज्ञान जो ज्ञानके विरोधी पूर्वसंचित कर्म वै कर्म आपके फल प्रकट करनेकेवास्ते इसके ज्ञानको

आछादनकरि लेते हैं याने ज्ञानको संकुचित करते हैं उन्ही कर्मोंकरिके देवादिक देहोंका संयोग होताहै औ जो जो येहैं प्राप्त होतीहैं उन्ही उन्ही शरीरोंके अभिमानरूप मोह प्राप्त होता है. उसी देहाभिमान वासना औ उसीकी उचित कर्मवासना औ वासनासे विपरीत देहाभिमान औ कर्मका आरंभ होताहै ॥ १५ ॥

इहां दूसरेकोई आचार्यऐसा अर्थ करतेहैं कि, परमात्मा किसीका पाप औ किसीका सुकृतभी नहीं गृहण करताहै तौ भक्तजन पूजनरूप यज्ञ दान जप होम इत्यादिक सुकृत क्यों अर्पण करतेहैं? इसपरकहेत हैं कि उनका ज्ञान अज्ञान करिके आच्छादितहै उसवास्ते वै अज्ञानसे मोहे भये कहते हैं कि यह कर्म हमने किया औ करवाया सो भगवानके अर्पण होय इस प्रकारके अर्थमे पत्रंपुष्पं फलंतोयं योमे भक्त्या प्रयच्छति ॥ तदहं भक्त्युपहतमश्रामिप्रयत्नात्मनः ॥ यत्करोपियदश्रासियज्जुहोपि वदासियत् ॥ यत्तपस्यसिकौंतेय तत्कुरुष्वमदर्पणं ॥ इत्यादिकवाक्योंसे विरोध आताहै इसवास्ते प्रथम जो अर्थ किया सोई श्रेष्ठहै ऐसा निश्चयहोता है. ॥ १५ ॥

मूलम्.

ज्ञानेन तु तदज्ञानं ये पां नाशितमात्मनः ॥ तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परं ॥ १६ ॥

अन्वयः

ये पां आत्मनः ज्ञानेन तत् अज्ञानं नाशितं तेषां तत् परं ज्ञानं आदित्यवत् प्रकाशयति ॥ १६ ॥

टीका.

जिनका आत्मसंबंधी ज्ञान करिके वासना जनित अज्ञाननष्ट होताहै तिनका वह सौभाविक श्रेष्ठज्ञानसूर्यतुल्य सर्वप्रकाश करताहै क्योंकि प्रथमभी कहाहै सर्वज्ञानप्लेवेनैव जिनं संतरिष्य

सि ॥ ज्ञानाग्निःसर्वकर्माणिभस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ॥ नहिज्ञानेनस
दृशंपवित्रमिहविद्यते ॥ इत्यादिक इहां तेषां याने तिनौंका कह
नेम भगवानने जीवोंका बहुत्व स्पष्टकहा प्रथम नत्वेवाहं जातु
नासंनत्वंनेमेजनाधिपाःइस कारणमे जो बहुत्व कहाथा उस
में कोई एक शंका करतेथे कि, बहुत्व उपाधिकृत है अब इहां मु-
क्तदशामेभी बहुत्व देखाया सो मुक्तदशामेतो उपाधिका गंध-
भी नहीं है जहां उपाधिहै वहां मुक्तत्वका संभव नहीं होता है
इसवास्ते जीव सौभाविक अनेक हैं ऐसा निश्चय भया ॥ १६ ॥

मूलम.

तद्बुद्ध्यस्तदात्मानस्तन्निष्ठास्तत्परायणाः ॥

गच्छंत्यपुनरावृत्तिंज्ञाननिर्धूतकल्मषाः ॥ १७ ॥

अन्वयः

तद्बुद्ध्यः तदात्मानः तन्निष्ठाः तत्परायणाः ज्ञाननिर्धूत
कल्मषाः अपुनरावृत्तिंगच्छंति ॥ १७ ॥

टीका.

जो आत्मज्ञान कहा उसीमे जिनकी बुद्धिहै औ उसीमे म-
न है उसीमे निष्ठा है अर्थात् उसी अभ्यासमे निरत हैं औ
उसीको श्रेष्ठ गृह जानते हैं ऐसे अभ्यास किये भये ज्ञान क-
रिके नष्ट भये हैं पाप जिनके ऐसे पुरुष संसारसे मुक्त व्हेके
फिरि जन्म नहीं लेते हैं ॥ १७ ॥

मूलम.

विद्याविनयसंपन्नेब्राह्मणेगविहस्तिनि ॥

शुनिचैवश्वपाकेचपंडिताःसमदर्शिनः ॥ १८ ॥

अन्वयः

विद्याविनयसंपन्नेब्राह्मणे च गवि च हस्तिनि च शुनि

च श्वपाके पंडिताः समदर्शिनः संति ॥ १८ ॥
टीका.

विद्या औ विनय करिके संयुक्त जो ब्राह्मण औ गाइ हाथि कृत्ता औ चांडाल इनमे पंडितलोग आत्माकौ समान देखते हैं. क्योंकि यह विषमतातौ शरीरोंमे है, आत्मातौ ज्ञानाकार से सर्व समान हैं. ॥ १८ ॥

मूलम्

इहैवतैर्जितःसर्गोयेपांसाम्येस्थितंमनः ॥

निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद्ब्रह्मणिते स्थिताः ॥ १९ ॥

अन्वयः

येपां मनः साम्ये स्थितं तैः इह एव सर्गः जितः हि-
यस्मात् ब्रह्म निर्दोषं समं अस्ति तस्मात् ते ब्रह्मणि
स्थिताः ॥ १९ ॥

टीका

जिनकामन पूर्वोक्त समतामें स्थित है तिनोंने इसी लो-
कमे रहिके संसार जीता है क्योंकि, ब्रह्मप्रकृति संसर्ग रहित
सर्वमे समहै इसीवास्ते जिनकामन समतामे है वै ब्रह्मप्राप्ति
निमित्त स्थितयाने मुक्त हैं. ॥ १९ ॥

मूलम्.

न प्रहृष्येत्प्रियं प्राप्य नोद्विजेत्प्राप्य चाप्रियम् ॥

स्थिरबुद्धिरसंमूढो ब्रह्मविद्ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥

अन्वयः

प्रियंप्राप्य न प्रहृष्येत् च अप्रियं प्राप्य न उद्विजेत् एवं

भूतः स्थिरबुद्धिः असंमूढः ब्रह्मवित् ब्रह्मणि स्थितः ॥ २० ॥

टीका.

अब जिसप्रकार करिके अवस्थित कर्मयोगको समदर्शन रूप ज्ञानका फल होता है सो कहते हैं, प्रियवस्तुपायके हर्षित होय औ अप्रिय पाइके घबडाइनही ऐसा कर्मयोगी स्थिर बुद्धि अर्थात् स्थिर जो आत्मा उसमे है बुद्धि जिसकी इसी सेवह सूढनही इसीसे ब्रह्मका ज्ञाता है औ ब्रह्म प्राप्तिकेवास्ते स्थित है. ॥ २० ॥

मूलम्.

बाह्यस्पर्शेष्वसक्तात्माविदत्यात्मनियत्सुखं ॥

सब्रह्मयोगयुक्तात्मासुखमक्षयमश्नुते ॥ २१ ॥

अन्वयः

बाह्यस्पर्शेषु असक्तात्मा आत्मनियत् सुखंतत् विंदति

सःब्रह्मयोगयुक्तात्मा अक्षयं सुखं अश्नुते ॥ २१ ॥

टीका.

बाह्यस्पर्श अर्थात् आत्माके सेवाय जो और इंद्रियोंको विषय हैं उनमे जिसकामन नही वह आत्मामे जो सुख है सो पावता है, सोई ब्रह्मप्राप्तिके अभ्यासमे मन लगायेहुये अक्षय सुख अर्थात् मोक्षको प्राप्त होताहै. ॥ २१ ॥

मूलम्.

येहिसंस्पर्शजाभोगादुःखयोनयएवते ॥

आद्यंतवंतःकौंतेयनतेपुरमतेबुधः ॥ २२ ॥

अन्वयः

हे कौंतेय ये संस्पर्शजाः भोगाः ते दुःखयोनयः आद्यंत

वंतः एव तेषु बुधः न रमते ॥ २२ ॥

टीका

हे श्रुतुन जो विषय इंद्रियस्पर्शजन्य भोग है वै दुःख

अन्वयः

वाह्यान् स्पर्शान् वहिः कृत्वा च चक्षुः एव भ्रुवोः अंतरे कृत्वा नासाभ्यंतरचारिणौ प्राणाऽपानौ समौ कृत्वा यः मुनिः यतेंद्रियमनोबुद्धिः मोक्षपरायणः विगतेच्छाभयक्रोधः सः सदा मुक्तः एव ॥ २८ ॥

टीका.

वाह्य इंद्रियोंके जो विषय तिनको त्यागिके नेत्रोंकी दृष्टी भ्रुकुटीके मध्यभागमें करिके औ नासिकाहीमें संचार करै ऐसे प्राणापान अर्थात् श्वासोच्छ्वासको धीरे धीरे सम चलायकरिके जो मन नशील पुरुष इंद्रिय, मन, बुद्धि इनको वश करै मोक्षहीमें मन लगावै औ इच्छा, भय, क्रोध इनसे रहित होय सो सर्वकालमें मुक्तही है. ॥ २७ ॥ २८ ॥

मूलम्.

भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ॥ सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वामांशांतिमृच्छति ॥ २९ ॥

अन्वयः

यज्ञतपसां भोक्तारं सर्वलोकमहेश्वरं सर्वभूतानां सुहृदं मां ज्ञात्वा शांतिं ऋच्छति ॥ २९ ॥

टीका.

अतिसुगम उपाय कहते हैं. यज्ञ औ तपका भोक्ता सर्व लोकोंके ईश्वरोंकाभी ईश्वर (तमीश्वराणां परममहेश्वरं. अर्थ ईश्वरों काभी ईश्वर होय उसको महेश्वर कहते हैं) औ सर्व भूत प्राणी मात्रनका सुहृद असा मेरेको जानिके शांतिको प्राप्त होता है ॥ २९

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे कर्मसंन्यासयो

गोनाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इति श्रीमत्सुकल सीतारामात्मज पंडित रघुनाथप्रसा-
द कृतायां श्रीमद्भगवद्गीता वाक्यार्थबोधिनी भाषाटी-
कायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ ॥ ७ ॥ " "

मूलम्.

अनाश्रितःकर्मफलंकार्यंकर्मकरोतियः ॥

ससंन्यासीचयोगीचननिरग्निर्नचाक्रियः ॥ १ ॥

अन्वयः

यः कर्मफलं अनाश्रितः कार्यं कर्म करोति सः संन्यासी
स च योगी यः निरग्निः च यः आक्रियः सः संन्यासी न-
भवति च योगी न भवति ॥ १ ॥

टीका.

कर्मयोगतौ कहा अब ज्ञानकर्मसाध्य आत्मदर्शनरूप यो-
गाभ्यास कहते हैं, तहां कर्मयोगकी अपेक्षारहित योगसाधनत्व-
को दृढ करनेको ज्ञानाकार कर्मयोगको योगशिरोमणि कहते हैं.
अनाश्रितः इत्यादि करिके जो पुरुष कर्मके स्वर्गादिप्राप्तिरूप
फलका आश्रय न करिके केवल ईश्वराराधनरूप करनेको योग्य
कर्म अर्थात् वर्णाश्रमयोग्य कर्म करता है सोई संन्यासी औ सो-
ई योगी है औ जो अग्निकार्यको त्यागता है औ जो कर्म त्या-
गता है सो संन्यासी भी नहीं. औ योगी भी नहीं. इहां एक अभि-
प्राय और भी दीखता है कि, कलियुगमें संन्यासका निर्वाह होता
नहीं, घर छोड़िके मठ बाधते हैं स्त्रिः विवाहते नहीं तो व्यभिचा-
री होते हैं छोकरौंकी जगह शिष्य करते हैं और भी सामग्री गृह-
स्थौंसे अधिक राखिके केवल प्रपंचनिरत होते हैं इसवास्ते भ-
गवानने कर्मफल त्यागिके कर्म करनेवालेहीकी संन्यासी कहा

११२ . गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

के कारण औ आद्यंतवान हैं अर्थात् होते जाते रहते हैं याने अल्प सुखदायक हैं इसीवास्ते तिन भोगों मे ज्ञानीजन प्रीति नही करते हैं. ॥ २२ ॥

मूलम्.

शक्रांतीहैवयःसोढुंप्राक्शरीरविमोक्षणात् ॥

कामक्रोधोद्भवंवेगसयुक्तःससुखीनरः ॥ २३ ॥

अन्वयः

यःशरीरविमोक्षणात् प्राक् कामक्रोधोद्भवं वेगं सोढुंशक्रोति सः नरः इह एव युक्तः सन् सुखी स्यात् ॥ २३ ॥

टीका.

जो मनुष्य शरीर त्यागसे प्रथम काम औ क्रोधका वेग सहनेको समर्थ होता है, सोई मनुष्य इसी लोकमे योग-युक्त भया हुआ सुखी होता है. ॥ २३ ॥

मूलम्.

योंऽतःसुखोंतरारामस्तथांतज्योतिरेवयः ॥

सयोगीब्रह्मनिर्वाणंब्रह्मभूतोऽधिगच्छति ॥ २४ ॥

अन्वयः

यः अंतःसुखः अंतरारामः तथा यः अंतज्योतिः सः एवयोगी ब्रह्मभूतः सन् ब्रह्म निर्वाणं अधिगच्छति ॥ २४ ॥

टीका.

जो आत्माहीमे सुखी औ आत्माहीमे रमिरहा है औ आत्माहीका प्रकाश याने आत्माहीकाज्ञान है जिसको सोईऐसा योगिब्रह्मप्राप्तिकेउपायमेलगाहुआ मोक्षको प्राप्त होताहै. ॥ २४ ॥

मूलम्.

लभंतेब्रह्मनिर्वाणमृपयःक्षीणकल्मषाः ॥

छिन्नद्वैधायतात्मानःसर्वभूतहितेरताः ॥ २५ ॥

अन्वयः

छिन्नद्वैधाः यतात्मानः सर्वभूतहितेरताः क्षणिकल्मषाः
ऋपयः ब्रह्मनिर्वाणं लभन्ते ॥ २५ ॥

टीका.

शीत उष्ण सुख दुःख लाभ अलाभ इत्यादिक जिनके नष्ट
भये हैं औ जिनका मन आत्मविषयमें ही लगा है औ सर्वभूत
प्राणीमात्रके हितमें निरत है इत्यादिकोंकरिके जिनके पाप
नष्ट भये हैं ऐसे ऋषी मोक्षको प्राप्त होते हैं. ॥ २५ ॥

मूलम्.

कामक्रोधवियुक्तानांयतीनांयतचेतसाम् ॥
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनां ॥ २६ ॥

अन्वयः

कामक्रोधवियुक्ताना यतीनां यतचेतसां विदितात्मनां
ब्रह्मनिर्वाणं अभितः वर्तते ॥ २६ ॥

टीका.

ज पुरुष काम औ क्रोधकरिके रहित हैं औ ब्रह्मप्राप्तिके वा-
स्ते यत्न करिरहे हैं औ चित्तकोभी अपने वशमें राखते ऐसे
आत्मज्ञानी पुरुषोंको मोक्ष सर्व तरहसे वर्तमानही है. ॥ २६ ॥

मूलम्.

स्पर्शान्कृत्वावहिर्वाह्यांश्चक्षुश्चैवांतरेऽब्रुवोः ॥ प्रा
णापानौसमौकृत्वानासाभ्यंतरचारिणौ ॥ २७ ॥
यतेंद्रियमनोबुद्धिर्मुनिर्मोक्षपरायणः ॥ विगते
च्छाभयक्रोधोयःसदामुक्तएवसः ॥ २८ ॥

है औ अग्निकर्म तथा क्रियाके त्यागनेको निषिद्ध किया है. ॥ १ ॥

मूलम्.

यंसंन्यासमितिप्राहुर्योगंतंविद्धिपांडव ॥

नह्यसंन्यस्तसंकल्पोयोगीभवतिकश्चन ॥ २ ॥

अन्वयः

हे पांडव यं संन्यासं इति प्राहुः त्वं तं योगं विद्धि हिय-
स्मात् असंन्यस्तसंकल्पःकश्चन योगी न भवति ॥ २ ॥

टीका.

कहा जो कर्मयोग उसमें ज्ञानभी है ऐसा कहते हैं. हे पांडुपुत्र अर्जुन! जिसको संन्यास कहते हैं अर्थात् ज्ञानयोग याने आत्मनिश्चयज्ञान कहते हैं, तुम उसीको कर्मयोगभी जानो क्योंकि, संकल्पका त्याग अर्थात् प्रकृतिजन्यदेहके विषे आत्म भ्रान्तिका त्याग कियेविना कोईभी योगी नहीं होताहै. तात्पर्य. कर्म करिके ईश्वरार्पण करना वही संन्यास औ वही योग है; यहीसे संन्यासी औ योगी होता है. ॥ २ ॥

मूलम्

आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म कारणमुच्यते ॥

योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ॥ ३ ॥

अन्वयः

योगं आरुरुक्षोः मुनेः कर्म कारणं उच्यते तस्यैव यो-
गारूढस्य शमः कारणं उच्यते ॥ ३ ॥

टीका.

जो योग याने आत्मदर्शन उसकी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाला है उसको कर्मही कारण है औ वही जब योगारूढ भया या ने आत्मदर्शनको प्राप्त भया तबतक कर्मही करना योग्य है सो

अगाडी कहेंगे. प्रयाणकाले मनसा चलेन भक्त्या युक्तो योगबलेन चैव इत्यादि ॥ ३ ॥

मूलम्.

यदाहिनेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुपज्जते ॥ सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते ॥ ४ ॥

अन्वयः

यदा इंद्रियार्थेषु च तत्संबंधिकर्मसु न अनुपज्जते तदा सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढः उच्यते ॥ ४ ॥

टीका.

अब योगारूढ कब होयगा सो कहते हैं. जब इंद्रियोंके विषय औ उनसंबंधी कर्मोंमें न आसक्त होय तब सर्व संकल्पों का त्याग किया है जिसने याने वासनारहित योगारूढ होता है इसवास्ते जो योगारूढ होना चाहता है सो प्रथम जबलौ विषयवासना है तौलौ कर्मही करना. ॥ ४ ॥

मूलम्.

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत् ॥ आत्मैव ह्यात्मनो बंधुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥ ५ ॥

अन्वयः

आत्मना आत्मानं उद्धरेत् आत्मानं न अवसादयेत् हि यतः आत्मा एव आत्मनः बंधुः आत्मा एव आत्मनः रिपुः ॥५

टीका.

अब यह कहते है कि, कैसेभी करिके मुक्तिसाधन करना योग्य है. मनकरिके आपका उद्धार करना औ आपका घात या ने जिसते अधोगती होय सो न करना क्योंकि, यह मनही आपना मित्र है औ यही शत्रु है. तात्पर्य कि जब विषयरहित

ईश्वरपरायण भया तव मित्र है औ विषयासक्त शत्रु है ॥ ५ ॥

मूलम्.

बंधुरात्मात्मनस्तस्ययेनात्मैवात्मनाजितः ॥

अनात्मनस्तुशत्रुत्वेवर्तेतात्मैवशत्रुवत् ॥ ६ ॥

अन्वयः

येन आत्मना एव आत्मा जितः तस्य आत्मनः आत्मा
बंधुः तु अनात्मनः आत्मा एव शत्रुवत् शत्रुत्वे वर्तेत ॥ ६ ॥

टीका.

जितने आपके मनको आपही जीता है वह मन उसका
बंधु है अर्थात् मित्र है औ जो अजितेंद्रिय है उसका वही म-
न शत्रुसरीखा शत्रुत्वमें वर्तमान रहता है. ॥ ६ ॥

मूलम्.

जितात्मनःप्रज्ञांतस्यपरमात्मासमाहितः॥ शी

तोष्णसुखदुःखेषुतथामानापमानयोः ॥ ७ ॥

अन्वयः

शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः जितात्मनः
प्रज्ञांतस्य आत्मा परं समाहितः अस्ति ॥ ७ ॥

टीका.

अब योगारंभके योग्य अवस्था कहते हैं शीत उष्ण सुख
दुःख मान औ अपमान इन विषयोंमें मन जीतनेवाले ज्ञांत
का आत्मा उत्कृष्ट औ सावधान रहता है ॥ ७ ॥

मूलम्.

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्माकूटस्थोविजितेंद्रियः ॥ यु

क्तइत्युच्यतेयोगीसमलोप्याश्मकांचनः ॥ ८

अन्वयः

ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थः विजितेंद्रियः समलोष्टा
श्मकांचनः एवं भूतः योगी युक्तः इति उच्यते ॥ ८ ॥

टीका.

आत्मविषयिक ज्ञानको ज्ञान कहते हैं औ उसआत्माको प्र-
कृतिसे विलक्षण जानै उसको विज्ञान कहते हैं इन दोनों ज्ञान
विज्ञानकरिके तृप्त होय मन जिसका औ कूटस्थ याने देवादि-
क शरीरोंमें आत्मा समान है ऐसा जानिके निर्विकार इसीसे
जितेंद्रिय औ जितेंद्रियत्वेस निरपेक्ष निरपेक्षत्वसे समान है
ठीकरा पापाण औ सुवर्ण जिसके ऐसा योग युक्त कहाता है अ-
र्थात् आत्मदर्शनरूप योगाभ्यासके योग्य कहाता है ॥ ८ ॥

मूलम्.

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु ॥ साधु
ष्वपिचपापेषुसमबुद्धिर्विशिष्यते ॥ ९ ॥

अन्वयः

सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबंधुषु च साधुषु च पा-
पेषु अपि यः समबुद्धिः सः विशिष्यते ॥ ९ ॥

टीका.

सुहृद जो स्वभावहीसे वयस् वगैरेभी न देखै औ हित करै
सो सुहृद औ जो समान वयस् देखिके परस्पर प्रीतिसे हित करै
सो मित्र औ प्रीतिवैरसे तथा हित अहितसे रहित होयसो उदा-
सीन औ जो जन्मसे प्रीति वैर हिताहितसे रहितसो मध्यस्थ जो
जन्मसे अहितकारक सो द्वेष्य जो जन्मसे हितकारक सो बंधु
जो धर्मशील सो साधु पाप करनेवाला सो पाप इन सबके विषे
समबुद्धि कारणाकि जिसको आत्मव्यतिरिक्त किसीसेभी प्र-

योजन नहीं सो किसीसे बैर और प्रीति क्यों करैगा वह तौ केवल आत्माहीमें तृप्त है सो योगी मुक्तनमेंभी श्रेष्ठ है- ॥ ९ ॥

मूलम्.

योगीयुंजीतसततमात्मानंरहसिस्थितः ॥ ए
काकीयतचित्तात्मानिराशीरपरिग्रहः ॥ १० ॥

अन्वयः

एकाकी यतचित्तात्मा निराशाः अपरिग्रहः योगी रहसि
स्थितः सन् सततं आत्मानं युंजीत ॥ १० ॥

टीका.

अकेला और चित्त तथा मनको वश कियेहुये औ आत्मा
विन औरवस्तुकी आशारहित तैसेही आत्मव्यतिरिक्त वस्तु
विषे ममतारहित ऐसा योगी याने कर्मयोगी एकांतमें बैठा हु-
आ निरंतर नित्यप्रति आत्मस्वरूप चिंनवन कियाकरै. ॥ १० ॥

मूलम्.

शुचौदेशेप्रतिष्ठाप्यस्थिरमासनमात्मनः ॥ ना
त्युच्छ्रान्नातिनीचंचैलाजिनकुशोत्तरं ॥ ११ ॥
तत्रैकाग्रंमनःकृत्वायतचित्तेन्द्रियक्रियः ॥ उप
विश्यासनेयुंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ॥ १२ ॥

अन्वयः

शुचौ देशे न अति उच्छ्रितं न अति नीचं चैलाजिन-
कुशोत्तरं स्थिरं आत्मनः आसनं प्रतिष्ठाप्य तत्र आसने
उपविश्य एकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः आत्म
विशुद्धये योगं युंज्यात् ॥ ११ ॥ १२ ॥

टीका.

अब योगाभ्यासमें आसन नियम कहते हैं. जैसे कि पवित्र

स्थानमें न अतिउँचा न नीचा औ प्रथम कुशासन तिसपर
मृग इत्यादिका चर्म तिसपर वस्त्र ऐसा अचल आपका आसन
स्थापित करिके तिसपर बैठेके एयाग्र मन करिके चित्त औ
इंद्रियोंकी क्रिया स्ववश कियेहुये आत्माका संसारबंध छूट
नेकेवास्ते योगाभ्यास करै ॥ १२. ॥

मूलम्.

समंकायशिरोग्रीवंधारयन्नचलंस्थिरम् ॥ संप्रे
क्ष्यनासिकाग्रंस्वंदिशश्चानवलोकयन् ॥ १३ ॥
प्रशांतात्माविगतभीर्ब्रह्मचारिव्रतेस्थितः ॥ म
नःसंयम्यमच्चित्तोयुक्तआसीतमत्परः ॥ १४ ॥

अन्वयः

कायशिरोग्रीवं अचलं स्थिरं समं धारयन् सन् स्वं ना-
सिकाग्रं संप्रेक्ष्य च दिशः अनवलोकयन् सन् प्रशांतात्मा
विगतभीः ब्रह्मचारिव्रते स्थितः मच्चित्तः सन् मनः संयम्य
युक्तः मत्परः आसीत् ॥ १३ ॥ १४ ॥

टीका.

श्रव बैठनेका नेम कहते हैं. मध्यशरीर मस्तक औ ग्रीवा इ-
नको अचल स्थिर औ सम धारण कियेभये आपकी नासिका-
के अग्रभागपर दृष्टिको राखिके कोईभी दूसरी दिशाँको न देख-
तेभये प्रशांतचित्त भयरहित ब्रह्मचर्यव्रतयुक्त सो ब्रह्मचर्य तीन
प्रकारका है १ उपकुर्वाणक जो वेदाभ्यास करनेपर्यंतही स्त्रीका
त्याग २ नैष्ठिक जो मरणपर्यंत स्त्रीका त्याग औ ३ एकपत्नी-
व्रतरूप इनमेंसे अधिकारप्रमाण कोईसेमेंभी स्थित औ चित्त में-
रेमें लगायेभये मनको संयममें राखिके वह आत्मनिष्ठ पुरुष
मेरेहीको चिंतवन करताभया स्थित होय. ॥ १३ ॥ १४ ॥

मूलम्.

युंजन्नेवंसदात्मानंयोगीनियतमानसः ॥ शान्तिं
निर्वाणपरमांमत्संस्थामधिगच्छति ॥ १५ ॥

अन्वयः

नियतमानसः योगी सदा एवं आत्मानं युंजन् सन्
निर्वाणपरमां मत्संस्थां शान्तिं अधिगच्छति ॥ १५ ॥

टीका.

मनको नियममें किया है जिसने ऐसा योगी सर्वकाल-
में ऐसे मेरेमें मन लगाता हुआ मोक्षप्रद औ मेरेमें स्थित
ऐसी शान्तिको प्राप्त होयगा. ॥ १५ ॥

मूलम्.

नात्यश्रतस्तुयोगोऽस्तिनचैकांतमनश्रतः ॥ न
चातिस्वप्नशीलस्यजाग्रतो नैव चार्जुन ॥ १६ ॥
युक्ताहारविहारस्ययुक्तचेष्टस्यकर्मसु ॥ युक्तस्व
प्नाऽवबोधस्ययोगोभवतिदुःखहा ॥ १७ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन अत्यश्रतः योगः न अस्ति च एकांतं अनश्रतः यो-
गः न अस्ति च अतिस्वप्नशीलस्य योगः न अस्ति च अ-
ति जाग्रतः योगः न अस्ति किंतु युक्ताहारविहारस्य कर्मसु
युक्तचेष्टस्य युक्तस्वप्नाऽवबोधस्य दुःखहा योगः भवति ॥ १६ ॥

टीका

अब योगीके आहारादिकका नियम कहते हैं. अति भोजन
करनेवालेका योग सिद्ध नहीं होता है औ केवल भोजन न क-
रनेवालेकाभी योग सिद्ध नहीं होता है औ बहुत जागनेवालेका

तथा बहुत सोवनेवालेका भी योग सिद्ध नहीं होता है. क्योंकि, जो युक्तिप्रमाण आहार करता है जैसेकि, दो भाग पेटके अन्नसे भरै, तीसरा भाग जलसे भरै औ चवथा पवनके संचारके वास्ते खाली रखै तौ योगाभ्यास होसकता है; ऐसेही विहार याने स्त्री प्रसंग इसकोभी युक्तिसे करै जैसेकि प्रथम कहा कि, ब्रह्मचर्यमें रहना तौ [ऋतौ भार्यामुपेयात्] इसवाक्य प्रमाणसे ऋतुकालमें आपहीकी स्त्रीसे प्रसंग करना यह एक प्रकारका ब्रह्मचर्य है. जो कोई शंका करेकि योगिको स्त्रीप्रसंग वर्ज्य है इहां विहार शब्दका दूसरा अर्थ करौ. तब उत्तर है कि प्रथमभी कहिआए है कि [इंद्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तत इति धारयन् ॥ कर्मैन्द्रियाणि मनस्तानियम्यारभतेऽजुन ॥ कर्मैन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते] इत्यादि औ अगाडीभी कहेंगे कि [अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमता] तौ जो स्त्रीप्रसंग योगी न करैगा तौ उसके कुलमें जन्म लेनेका संभव कैसे होयगा? इसवास्ते इहा विहार शब्दसे स्त्रीप्रसंगही अर्थ है सो प्रमाणसे करै याते बहुत करनेसे क्षय इत्यादिक रोग होते हैं तौभी योग न होसकैगा औ केवल न करनेसे उत्तका स्मरण रहैगा तौभी योग न ठहैसकैगा इसवास्ते युक्तिकाही करना और कर्मोंमें भी युक्तिकी चेष्टा करना. जो थोडे परिश्रमसे काम होय तौ बडा परिश्रम न करना इसपर भागवतका प्रमाण देते हैं [सिद्धेऽन्यथार्थे न यते तत्र परिश्रमं तत्र तमीक्ष्यमाणः] इति द्वितीय स्कंध श्लोक ऐसेही प्रमाणसे सेवना औ जागना ऐसी रीतसे चलनेवालेका दुःखनागरु योग होता है. ॥ १६ ॥ १७ ॥

मूलम्

यदा विनियतं चित्तमात्मन्येवावतिष्ठते ॥ निः

स्पृहः सर्वकामेषु यो युक्त इत्युच्यते तदा ॥ १८ ॥

अन्वय.

यदा आत्मनि एव विनियतं चित्तं अवतिष्ठते तदा सर्व-
कामेभ्यः निःस्पृहः सन् युक्तः इति उच्यते ॥ १८ ॥

टीका.

जब आत्महीमें श्रुति निश्चल चित्त जिसका स्थित हो-
ता है तब वह मनुष्य सर्व कामनौसे निस्पृह भयाहुआ युक्त
कहाता है. ॥ १८ ॥

मूलम्.

यथादीपोनिवातस्थोनेंगतेसोपमास्मृता ॥

योगिनोयतचित्तस्ययुंजतोयोगमात्मनः ॥ १९ ॥

श्रन्वयः

यथा निवातस्थः दीपः न इंगते तथा यतचित्तस्य यो-
गं युंजतः योगिनः आत्मनः सा उपमा स्मृता ॥ १९ ॥

टीका.

जैसे निवातस्थानमें स्थित दीपक हालता डोलता नहीं
तैसे वश है चित्त जिसका ऐसे योग करनेवाले योगीके आ-
त्मस्वरूपकी सोई उपमा कही है. ॥ १९ ॥

मूलम्.

यत्रोपरमतेचित्तंनिरुद्धंयोगसेवया ॥ यत्रचैवा

त्मनात्मानंपश्यन्नात्मनितुष्यति ॥ २० ॥ सु

खमात्यंतिकंयत्तद्बुद्धिग्राह्यमतींद्रियं ॥ वेत्ति

यत्रनचैवायंस्थितश्चलतितत्त्वतः ॥ २१ ॥ यं

लब्ध्वाचापरंलाभंमन्येतेनाधिकंततः ॥ यस्मिं

स्थितोनदुःखेनगुरुणाऽपिविचाल्यते ॥ २२ ॥

तंविद्याद्बुःखसंयोगवियोगंयोगसंज्ञितं ॥ सनि

श्चयेनयोक्तव्योयोगोनिर्विण्णचेतसा ॥ २३ ॥

अन्वयः

योगसेवया निरुद्धं चित्तं यत्र उपरमते च यत्र आत्म-
ना आत्मानं पश्यन् सन् आत्मनि एव तुष्यति ॥ २० ॥
यत्र यत् अतीन्द्रियं बुद्धिग्राह्यं आत्यंतिकुं सुखं तत् वेत्ति
च यत्र स्थितः अयं तत्त्वतः न एव चलति ॥ २१ ॥
यं लब्ध्वा अपरं लाभं ततः अधिकं न मन्यते च यस्मि-
न् स्थितः गुरुणा अपि दुःखेन न विचाल्यते ॥ २२ ॥
तं दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितं विद्यात् संयोगः अ-
निर्विण्णचेतसा निश्चयेन योक्तव्यः ॥ २३ ॥

टीका

योग सेवनके कारणसे सर्वत्र विषयोंसे रोकामया चित्त
जहां याने जिस योगमें विश्रामके प्राप्त होय औ जिसमें बुद्धि
करिके आत्माको देखताहुआ याने निश्चय करता भया आ-
त्माहीमें संतोषको प्राप्त होय ॥ २० ॥ औ जिसमें जो सुख इं-
द्रियोंके न अनुभवमें आवै केवल आत्मबुद्धिहीकरिके ग्रहण
करनेमें आवै उस सुखको जानै है औ जिसमें स्थित व्हेके फिरि
आत्मस्वरूपसे चलायमान न होय ॥ २१ ॥ जिस योगरूप
लाभको प्राप्त व्हेके फिरि दूसरे लाभको इसते अधिक न मानै
औ जिस योगमें स्थित व्हेके बडे भारीभी दुःखकरिके चला-
यमान न होय ॥ २२ ॥ उसीको दुःखके संयोगका वियोगका
रक योगसंज्ञिक कहते हैं अर्थात् वही योग दुःखनाशक ज्ञान-
रूप है उसको जानै वही योगी निर्विकल्पचित्तकरिके अर्थात्
उत्साहहुक्त निश्चयकरिके अभ्यास करनयोग्य है ॥ २३ ॥

मूलम्.

संकल्पप्रभवान्कामास्त्यक्त्वासर्वानशेषतः ॥ म

नसैवेन्द्रियग्रामं विनियम्य समंततः ॥ २४ ॥ शनैः
शनैरुपरमेद्बुद्ध्या धृतिगृहीतया ॥ आत्मसंस्थं मनः
कृत्वान किंचिदपि चिंतयेत् ॥ २५ ॥

अन्वयः

संकल्पप्रभवान् सर्वान् कामान् अशेषतः मनसा एव
त्यक्त्वा इंद्रियग्रामं समंततः विनियम्य ॥ २४ ॥ धृति
गृहीतया बुद्ध्या शनैः शनैः उपरमेत् मनः आत्मसंस्थं
कृत्वा किंचित् अपि न चिंतयेत् ॥ २५ ॥

टीका.

काम दो प्रकारके हैं एक स्पर्शजन्य दूसरे संकल्पजन्य तहां
स्पर्शज शीतउष्णादिक औ संकल्पज पुत्रक्षेत्र इत्यादिक तहां
संस्पर्शज कामोंका स्वरूपसे त्याग कठिण हैं, इसवास्ते जो सं
कल्पसे उत्पन्न काम हैं उन सबोंके जड़ मूलसे मनहीं करिके
त्यागिके फिरि सर्व इंद्रियोंको विषयोंसे नियमित करिके ॥ २४ ॥
विवेकविषयिक बुद्धि करिके धीरे धीरे उपरामको प्राप्त हो
ना फिरि मनके आत्मामें स्थित करिके उसविना कोई प-
दार्थकाभी चिंतवन न करना ॥ २५ ॥

मूलम्.

यतो यतो निश्चरति मनश्चंचलमस्थिरं ॥ ततस्त-
तो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत् ॥ २६ ॥ प्र-
शांतमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमं ॥ उपैति शांत-
रजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम् ॥ २७ ॥

अन्वयः

चंचलं अस्थिरं मनः यतः यतः निश्चरति ततः ततः एतत्
नियम्य आत्मनि एव वशं नयेत् ॥ २६ ॥ हि प्रशांत मन-

सं शांतरजसं अकल्मषं ब्रह्मभूतं एनं योगिनं उत्तमं
सुखं उपैति ॥ २७ ॥

टीका.

इस मनका स्वभाव चंचल है इसवास्ते आत्मामें स्थिर न-
ही रहता है इसीसे यह जिस जिस विषयमें आसक्त होय तहां
तहांसे इसको फिरायके आत्माहीमें स्थिर करना ॥ २६ ॥ का-
रण किं, जिसका मन आत्मामें स्थिर हुआ तिसीवास्ते उसका
रजोगुणभी नष्ट भया. जब वह निष्पाप भया निष्पाप होनेसे
आपके शुद्धस्वरूपमें स्थित भया ऐसे इस योगीको उत्तम
सुख यान आत्मानुभवरूप उत्तम सुख प्राप्त होता है. ॥ २७ ॥

मूलम्.

युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः ॥ सुखे
न ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखमश्नुते ॥ २८ ॥

अन्वयः

विगतकल्मषः योगी एवं सदा आत्मानं युञ्जन् सन्
ब्रह्मसंस्पर्शमत्यंतं सुखं सुखेन अश्नुते ॥ २८ ॥

टीका.

ऐसा निष्पाप योगी ऐसे कहेभये प्रकारसे मनको आ-
त्मामें युक्त करते करते ब्रह्मानुभवरूप अत्यंत सुखको प्रया-
सविनाहि प्राप्त होता है. ॥ २८ ॥

मूलम्.

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मानि ॥ ईक्षते
योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः ॥ २९ ॥ यो मां प
श्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ॥ तस्याहं न प्रण
श्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥

अन्वयः

सर्वत्र समदर्शनः योगयुक्तात्मा आत्मानं सर्वभूतस्थं च
सर्वभूतानि आत्मानि ईक्षते ॥ २९ ॥ एवं यः सर्व
त्र मां पश्यति च सर्वं मयि पश्यति तस्य अहं न
प्रणश्यामि च सः मे न प्रणश्यति ॥ ३० ॥

टीका.

इन दो श्लोकोंमें श्रीकृष्णभगवानने (द्वैसुपर्णौसद्युजौसखायौ
समानंवृक्षंपरिषस्वजाते) इस श्रुतिका अभिप्राय प्रकट किया है
जैसे कि, सर्वत्र समदर्शनः जाने सर्वभूतोंमें समानवृक्षरूपदृष्टि है
जिसकी अथवा (समंसर्वेषुभूतेषु तिष्ठंतं परमेश्वरं ॥ विनश्यत्स्ववि
नश्यंतं यः पश्यति स पश्यति) इत्यादि वाक्यप्रमाणोंसे समवर्ती
आत्मापर है दृष्टि जिसकी अथवा शत्रु औ मित्रपर समान है,
दृष्टि जिसकी, ऐसा योगयुक्तात्मा याने योग जो मेरा समत्व क
रके मिलाप तिसमे युक्त किया है मन जिसने ऐसा योगी
आपके आकाशादिक सर्वभूतोंको आपमें स्थित देखता है ॥
॥ २९ ॥ ऐसे जो सर्वत्र मेरेको देखता है औ सर्व मेरेमें देखता
है अर्थात् जैसे मूत्रमें मणिसमूह तैसे आपमें औ मेरेमें सर्व
भूतोंको देखता है तात्पर्य कि सर्व भूतसमूहनिर्मित देहोंमें
आत्माको औ मेरेकोभी देखता है इसवास्ते शत्रुमित्रादि
भावसे रहित समदर्शी हैं तिसके मैं कधीभी अदृश्य नहीं होता
हूँ, औ वह मेरेको अदृश्य नहीं होता है. ॥ ३० ॥

मूलम्.

सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वमास्थितः ॥ स
वथावर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते ॥ ३१ ॥

अन्वयः

यः एकत्वं आस्थितः सर्वभूतस्थितं मां भजति अपि नि-
श्रयेण सः योगी सर्वथावर्तमानः मयि वर्तते ॥ ३१ ॥

टीका.

जो पुरुष एकत्व याने सर्व भूत प्राणिमात्रके मित्रत्वमेस्थित
एकता नाम मित्रताका है सो श्रीमद्वाल्मीकीय सुंदरकांडमें स्प-
ष्ट हनुमानजीने श्रीजानकीजीसे श्रीराम औ सुग्रीवकी मित्र-
ता विषे वाक्य कहा है. रामसुग्रीवयोरैक्यं देव्येवं समजायत ॥ ऐसा
ही इहांभी अर्थ करना चाहिये. जो स्वरूपसे एकता कहेंगे
तौ भजनेको क्यौं कहा इस वास्ते यही अर्थ है कि, जो सबकी मित्र-
तामे स्थित हुआ सर्वभूतोंमे स्थित मेरेको भजता है सो योगि नि-
श्रैकरिके सर्वप्रकार आचरण करता हुआ मेरेही समीप मेरी सा-
म्यताको प्राप्त भया वर्तमान है तात्पर्य कि अगाडी कहेंगे सर्वस्य
चाहं हृदिसन्नविष्टा ॥ ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशे र्जुनतिष्ठति ॥ इत्यादि
कप्रमाणोंसे ईश्वरको सर्वके हृदयमे जानिके सर्वसे मित्रता करता
है. वही मेरा भजन है ऐसे मेरेको भजनेवाला सदा मेरे हृदयमे व-
सता है क्यौंकि, अगाडी वारहें अध्यायमे वाक्य है ॥ अद्वेषा सर्व-
भूताना ॥ इहांसे लैके यो मद्रक्तः ॥ समेप्रियः ॥ ३१ ॥

मूलम्.

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति यो र्जुन ॥
सुखं वा यदि वा दुःखं आत्मौपम्येन सर्वत्र
समं पश्यति सः योगी परमो मतः ॥ ३२ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन यः सुखं यदि वा दुःखं आत्मौपम्येन सर्वत्र
समं पश्यति सः योगी परमः मतः ॥ ३२ ॥

टीका.

टीका.

जो पूर्व उनन्तीसवें श्लोकमें सर्वत्र समदर्शन कहाथा उस शब्दको इहां भी स्पष्ट करते हैं; उसीके स्पष्टीकरणमें योगीकी सर्वोत्तम दशा कहते हैं. हे अर्जुन! जो मनुष्य सुखको अथवा दुःखको आपहीका सरीखा सर्वत्र सम देखता है याने जैसेसुख औ दुःख मेरेको होता है तैसा सर्वको होता है, ऐसा जाननेवाला योगी सर्वसे उत्तम है; अर्थात् ऐसे जाननेवाला सर्वसे एकता याने मित्रता करता है औ मित्रता करनेसे मेरेको प्रिय होता है. ॥ ३२ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ योऽयं योगस्त्वया प्रोक्तः साम्येन
मधुसूदन ॥ एतस्याहं न पश्यामि चंचलत्वा
स्थितिं स्थिराम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हेमधुसूदन यः अयं योगः साम्येन त्वया
प्रोक्तः मनसः चंचलत्वात् अहं एतस्य स्थिरां स्थितिं
न पश्यामि ॥ ३३ ॥

टीका.

अर्जुन भगवानके मुखारविंदसे योगीकी महिमा सुनिके बोला कि, हेमधुसूदन! जो यह योग समता करिके आपने कहासो मनकी चंचलतासे मैं इसयोगकी स्थिरस्थिति नहीं देखता हौं.

मूलम्.

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ॥
तस्याऽहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः

हेकृष्ण हियस्मात् इदं मनः चंचलं प्रमाथि बलवत् दृढं

तस्मात् अहं तस्य निग्रहं वायोः इव सुदुष्करं मन्ये ॥ ३४ ॥

टीका.

हे कृष्ण! जिसवास्ते कि यह मन चंचल औ इंद्रियोंका क्षो-
भ करनेवाला बली तथा दृढ है इसीवास्ते मैं उसका रोकना
पवनका रोकना जैसा कठिण मानता हौं. ॥ ३४ ॥

मूलम.

श्रीभगवानुवाच ॥ असंशयं महाबाहो मनो दुर्नि-
ग्रहं चलं ॥ अभ्यासेन तु कौंतेय वैराग्येण च गृह्य-
ते ॥ ३५ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हे महाबाहो मनः दुर्निग्रहं चलं इति अ-
संशयं हे कौंतेय इदं अभ्यासेन तु वैराग्येण गृह्यते ॥ ३५ ॥

टीका.

श्रीकृष्ण भगवान् अर्जुनका प्रश्न सुनिके उत्तर देते हैं कि, हे-
महाबाहो! मन बहे दुःखसे रोकनेसे अर्ध है क्योंकि यह चंचल है
ऐसा तुमने कहा उसमें संशय नहीं; परंतु हे कुंतीपुत्र! यह मन अ-
भ्यास औ विषय वैराग्य करिके वश करनेमें आता है. ॥ ३५ ॥

मूलम.

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ॥
। वश्यात्मना यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥ ३६ ॥

अन्वयः

अयं योगः असंयतात्मना दुष्प्रापः इति मे मतिः तु व-
श्यात्मना यतता उपायतः अप्वाप्तुं शक्यः ॥ ३६ ॥

टीका.

यह योग जिसने मन वश नहीं किया तिसको प्राप्त होना

कठिण है क्यों कि, जिसने मन जीता है सो जो यत्न करि-
के उपाय करै तौ प्राप्त होय. ॥ ३६ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ अयतिःश्रद्धयोपेतोयोगाच्चलि-
तमानसः ॥ अप्राप्ययोगसंसिद्धिं कां गतिं कृष्ण ग-
च्छति ॥ ३७ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे कृष्ण यः श्रद्धया उपेतः अयतिः चेत् यो-
गात् चलितमानसः योगसंसिद्धिं अप्राप्य कां गतिं गच्छति ॥ ३७ ॥

टीका.

अर्जुनने प्रथम नेहाभिक्रमनाशोस्तिप्रत्यवायोनविद्यते, इ-
त्यादि करिके योग माहात्म्य सुनाया तौभी विशेष जाननेके
वास्ते फिरि प्रश्न करते हैं हे कृष्ण! जो मनुष्य योग श्रद्धावान्
है याने दंभी नहीं श्रद्धासंयुक्त योगाभ्यास करने लगा औ
कदापि उसके यत्न न होनेसे योग सिद्धिको प्राप्त न भया तौ
वह किसगतीको प्राप्त होयगा सो कहौ. ॥ ३७ ॥

मूलम्

कश्चिन्नोभयविभ्रष्टश्छिन्नाभ्रमिव नश्यति ॥ अ-
प्रतिष्ठो महाबाहो विमूढो ब्रह्मणः पथि ॥ ३८ ॥
एतन्मे संशयं कृष्णच्छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥ त्वद-
न्वयः संशयस्यास्यच्छेत्तानह्युपपद्यते ॥ ३९ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो ब्रह्मणः पथि विमूढः अप्रतिष्ठः अयं उभय
भ्रष्टः कश्चित् छिन्नाभ्रं इव न नश्यति ॥ ३८ ॥ हे कृष्ण ए-

तत् मे संशयं अशेषतः छेत्तुं अर्हसि हियतः अस्य संश-
यस्य छेत्ता त्वदन्यः न उपपद्यते ॥ ३९ ॥

टीका.

हेमहावाहो वेदमार्गमे मोहको प्राप्त भयायाने स्वर्गादि प्राप्ति
निमित्त कर्म त्यागिके निष्कामकर्मरूप योगभी प्राप्त न भया
इसवास्ते अप्रतिष्ठित औ उभय भ्रष्ट याने स्वर्गादि प्राप्तिकर्मको
भी न प्राप्त भया न योगको प्राप्त भया इसवास्ते कदाचित् जैसे
एक बडेमेघमैसे छुटा छोटा मेघका टुकडा औ दूसरे मेघको भी
न प्राप्त व्हैकं बीचहीमे नष्ट होय है ऐसे नष्ट न व्है जाय ॥ ३८ ॥
हेकृष्ण मेरे इससंशयको आप समूलछेदन करनेयोग्य हौ क्यों-
कि, इससंशयका छेदनेवाला आपविना दूसरा नहीं है. ॥ ३९ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ पार्थनैवेहनामुत्रविनाशस्त
स्यविद्यते ॥ नहिकल्याणकृत्कश्चिदुर्गतिंतातग
च्छति ॥ ४० ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हेपार्थ तस्य इह एवाविनाशः न वि-
द्यते न अमुत्र विनाशः विद्यते हियस्मात् हे तात कश्चि-
दपि कल्याणकृत् दुर्गतिं न गच्छति ॥ ४० ॥

टीका.

श्रीकृष्णभगवान् कहते भये कि हे पृथापुत्र! इस योगाभ्या-
स करनेवालेकी इस लोकमे भी दुर्गति नहीं है औ परलोक
मे भी नहीं है क्योंकि, हे तात कोई भी शुभकर्म करनेवाला
दुर्गतिको नहीं प्राप्त होता है ॥ ४० ॥

मूलम्.

प्राप्यपुण्यकृतांलोकानुपित्वाशाश्वतीःसमाः ॥
 शुचीनांश्रीमतांगेहेयोगभ्रष्टोऽभिजायते ॥ ४१ ॥
 अथवायोगिनामेवकुलेभवतिधीमताम् ॥ एत
 द्विदुर्लभतरंलोकेजन्मयदीदृशम् ॥ ४२ ॥ तत्र
 तंबुद्धिसंयोगंलभतेपौर्वदैहिकं ॥ यततेचततो
 भूयःसंसिद्धौकुरुनंदन ॥ ४३ ॥ पूर्वाभ्यासेन
 तेनैवन्हियतेह्यवशोऽपिसः ॥ जिज्ञासुरपियोग
 स्यशब्दब्रह्मातिवर्तते ॥ ४४ ॥

अन्वयः

योगभ्रष्टः पुण्यकृता लोकान् प्राप्य तत्रशाश्वतीः समाः
 उपित्वा शुचीनां श्रीमतां गेहे अभिजायते ॥ ४१ ॥ अथ
 वा धीमतां योगिनां कुले एव भवति यत् ईदृशं जन्म त-
 त् एतत् लोके हिदुर्लभतरं ॥ ४२ ॥ हेकुरुनंदन तत्र तं पौर्व
 दैहिकं बुद्धिसंयोगं लभते च ततः भूयः संसिद्धौ यतते ॥
 ॥४३॥ अवशः अपिसः तेन पूर्वाभ्यासेन न्हियते हियस्मा-
 त् योगस्य जिज्ञासुः अपि शब्दब्रह्म अति वर्तते ॥ ४४ ॥

टीका.

कदाचित् योग पुरा नभया औ मृत्युको प्राप्त भया तौ स्वर्गादि-
 लोकौको प्राप्त व्हेके औ वहां बहुत वर्ष भोग भोगिके फिरि प-
 वित्र औ द्रव्यवालौके घरमे जन्म लेताहै ॥ ४१ ॥ अथवा बुद्धि-
 मान् योगिजनौके कुलहीमे जन्मता है जो यह ऐसा जन्मसो
 यह इसलोकमे निश्चय करिके अतिदुर्लभ है ॥ ४२ ॥ हे अर्जुन!
 तहां वही पूर्वदेहसंबंधी बुद्धियोगको प्राप्त होता है तब फिरि
 भी उमकी सिद्धिमे यत्नकरता है ॥ ४३ ॥ क्योंकि न करनेका-

है तौभी वह पूर्वाभ्यास हाठिके उसीमे लगाता है कारण कि जो योगके जाननेकीभी इच्छाकरै तौभी शब्दब्रह्म अर्थात् देवमनुष्य पृथ्वी अंतरिक्ष स्वर्ग इत्यादि शब्दसे उच्चारण योग्य जो ब्रह्मयाने प्रकृति उसको उल्लंघन करता है याने प्रकृति संबंधसे मुक्तहुआ देव मनुष्यादि शब्दोंसे रहित आत्मस्वरूपको प्राप्तहोताहै शब्दब्रह्मातिवर्तते इसवाक्यका अर्थ कोई ऐसाभी करते हैं कि वेदोक्त कर्मानुष्ठान फलको उल्लंघन करता है ॥ ४४ ॥

मूलम्.

प्रयत्नाद्यतमानस्तुयोगीसंशुद्धकिल्बिपः ॥

अनेकजन्मसंसिद्धस्ततोयातिपरांगतिम् ॥ ४५ ॥

अन्वयः

प्रयत्नात् यतमानः संशुद्धकिल्बिपः योगी अनेकजन्म संसिद्धः ततः परां गतिं याति ॥ ४५ ॥

टीका.

इसी पूर्वोक्त प्रकारकी युक्तीसे प्रयत्न करता करता पापरहित हुआ भया योगी अनेक जन्मों करिके सिद्धीको प्राप्त होताहै औ फिरिभी मोक्षको प्राप्त होताहै. ॥ ४५ ॥

मूलम्.

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपिमतोऽधिकः ॥ कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भ

वार्जुन ॥ ४६ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन योगी तपस्विभ्यः अधिकः मतः ज्ञानिभ्यः अपि अधिकः च कर्मिभ्यः अपि योगी अधिकः तस्मात् त्वं योगी भव ॥ ४६ ॥

टीका.

हे अर्जुन! केवल तपस्विनसे योगी याने भगवत्प्राप्तिकी इच्छाकरिके भगवदाराधनरूप कर्म करनेवाला अधिक है ओ केवल ज्ञानी जनौसेभीअधिक है ओकेवलयज्ञादिक सकामकर्म करनेवालेसेभी अधिक है इसवास्तु तुम योगी होउ याने आपके स्वधर्म स्वरूप कर्मसे ईश्वराराधन करिके ईश्वरप्राप्तिकीइच्छाकरौ. ॥ ४६ ॥

मूलम.

योगिनामपिसर्वेषामद्भतेनांतरात्मना ॥

श्रद्धावान्भजतेयोमांसमेयुक्ततमोमतः ॥ ४७ ॥

अन्वयः

यः श्रद्धावान् मद्भतेन अंतरात्मना मां भजते सः सर्वेषांयोगिनां अपि युक्ततमः मे मतः ॥ ४७ ॥

टीका.

जो श्रद्धायुक्त मेरेमेनिरंतर चित्त लगायके मेरी ही उपासना करता है सो योगी सब योगिनमे श्रेष्ठ है ऐसा मैंने माना ॥ ४७ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीता सूपनिपत्सुब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रश्रीकृष्णार्जुनसंवादे योगशास्त्रेअध्या
सयोगीनामपष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मज पंडित रघुनाथप्रसाद कृ-
तायां श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीकायां पष्ठो
ऽध्यायः ॥ ६ ॥ ॥ ६१ ॥ ॥ ६१ ॥

इति प्रथमपट्टकं समाप्तं.

अथ द्वितीयपट्कं
प्रारभ्यते.

प्रथमके पट्क याने प्रथमके छ अध्यायोंमे ईश्वर प्राप्तिका उपाय भूतभक्ति याने ईश्वर उपासना उत्त उपासनाका अंग-भूत आत्मस्वरूपज्ञान, सो आत्मज्ञान ज्ञानयोग कर्मयोग निष्ठा करिके प्राप्त होता है ऐसा कहा औ अब मध्यपट्कयाने मध्यके छ अध्यायोंमे परमात्मस्वरूपका यथार्थज्ञान औ उसके माहात्म्य ज्ञान पूर्वक उनकी उपासना जिसिको भक्ति कहते हैं सो भक्तियोग प्रतिपादन करते हैं सोई अगाडी कहेंगे. यतःप्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततं ॥ स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥ इहास्ते लैके ॥ विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयायकल्पते ॥ ब्रह्मभूतो प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ॥ समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परां ॥ इहांपर्यंत कहेंगे औरभी भक्तिनिरूपणका कारण कहेंगे ग्यारहें अध्यायमें ॥ नाहं वै देन तपसा, इत्यादि वाक्यों करिके अब सातवें अध्यायमें परमात्माका रूप निश्चै औ प्रकृति करिके उसका आच्छादन औ उसकी निवृत्तिके वास्ते भगवत् शरणागति ही उपासक ज्ञानीको श्रेष्ठ कहते हैं अथवा छठे अध्यायमें अंतमें कहा कि जो मेरेमे चित्त लगायके भजता है सो योगी श्रेष्ठ है सो सुनिके अर्जुनके मनमे आया कि, आपका स्वरूप कैसा है ऐसा अर्जुनका अभिप्राय जानिके भगवान् बोलते भये ॥ मय्यासक्त इत्यादिकरिके ॥ स प्रमो द्याद्यः

मूलम.

श्रीभगवानुवाच ॥ मय्यासक्तमनाः पार्थयोग्यं
जन्मदाश्रयः ॥ असंशयं समग्रं मां यथाज्ञास्यसि
तच्छृणु ॥ १ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हे पार्थ मध्यासक्तमनाः मदाश्रयः
त्वं योगं युञ्जन्सन् यथा असंशयं समग्रं मां ज्ञास्यसि
तच्छृणु ॥ १ ॥

टीका.

हे अर्जुन! मेरेमे मनको आसक्त किये हुये औ मेरेही आ-
श्रित भये हुये तुम योग करते करते जैसे संदेह रहित संपूर्ण
अर्थात् विभूतिबल ऐश्वर्यसहित मेरेको जानोगे सो सुनौ ॥ १ ॥

मूलम्.

ज्ञानंतेहंसविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ॥ यज्ज्ञा-
त्वानेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ॥ २ ॥

अन्वयः

अहं ते इदं सविज्ञानं ज्ञानं अशेषतः वक्ष्यामि यत् ज्ञा-
त्वा इह भूयः अन्यत् ज्ञातव्यं न अवशिष्यते ॥ २ ॥

टीका.

हे अर्जुन! मैं तुमको यह विज्ञान करिके सहित ज्ञान समग्र
कहताहैं ज्ञान जो मेरा स्वरूपज्ञान, विज्ञानजो मेरेको सर्वसे
विलक्षण जानना अथवा ज्ञान शास्त्रजन्य विज्ञान अनुभवज-
न्य जिसज्ञानको जानिके इसलोकमें फिरिजानने योग्य कु-
छभी नहीं रहता है ॥ २ ॥

मूलम्.

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित् यतति सिद्धये ॥ यत्
तामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः ॥ ३ ॥

अन्वयः

मनुष्याणां सहस्रेषु सिद्धये कश्चित् यतति यततां अपि-
सिद्धानां कश्चित् मां तत्त्वतः वेत्ति ॥ ३ ॥

टीका.

कहेंगे जो ज्ञान तिसकी दुर्लभता कहते हैं. हजारों सुज्ञमनु-
ष्योंमें कोई एकपुरुष आत्मज्ञानरूप सिद्धिके वास्ते यत्न करता
है वैसे हजारोंमें कोई एक आत्मज्ञानरूप सिद्धिको प्राप्त होता
है और वैसे हजारोंमें कोई भी एक मेरे स्वरूप निश्चयको जानता
है अर्थात् कोई भी नहीं जानता है, समहात्मासुदुर्लभः मातु
वेदनकश्चन इत्यादिकहेंगे तोई ऐसा दुर्लभ परम ज्ञानमै तुम-
से कहौंगा यह अभिप्राय. ॥ ३ ॥

मूलम.

भूमिरापोऽनलोवायुःखंमनोबुद्धिरेवच ॥ अहंका
रइतीयंमेभिन्नाप्रकृतिरष्टधा ॥ ४ ॥ अपरेयमि
तस्त्वन्यांप्रकृतिंविद्धिमेपरां ॥ जीवभूतांमहा
बाहोययेदंधार्यतेजगत् ॥ ५ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो भूमिः आपः अनलः वायुःखं मनः बुद्धिः-
च अहंकारः एव इति या इयं अष्टधा भिन्नाप्रकृतिः सा
इयं मेप्रकृतिः अपरा तु यया इदं जगत् धार्यते तां इतः
अन्यां जीवभूतां मे प्रकृतिं परां विद्धि. ॥ ४ ॥ ५ ॥

टीका.

पृथ्वि, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार ऐसे
जो यह आठप्रकारके भेदको प्राप्त भई प्रकृतिसो यह मेरी अप-
रा प्रकृति है, याने अचेतन है और जिस चेतन प्रकृति करिके
यह अचेतन जगत् धारण हो रहा है तिसको इस अपरासे
दूसरी जीवभूत मेरी प्रकृतिको तुम परा जानौ. ॥ ५ ॥

मूलम्.

एतद्योनीनिभूतानिसर्वाणीत्युपधारय ॥ अहं
कृत्स्नस्यजगतःप्रभवःप्रलयस्तथा ॥ ६ ॥ म
त्तःपरतरंकिंचिन्नान्यदस्तिधनंजय ॥ मयिस
र्वमिदंप्रोतंसूत्रेमणिगणाइव ॥ ७ ॥

अन्वयः

हे धनंजयसर्वाणि भूतानि एतद्योनीनि इति उपधार-
यअतः अहंकृत्स्नस्यजगतः प्रभवः तथाप्रलयः ॥ ६ ॥
मत्तः परतरं अन्यत् किंचित् नअस्ति सूत्रेमणिगणाः
इव इदं सर्वं मयि प्रोतं ॥ ७ ॥

टीका.

हे धनंजय याने हे अर्जुन, सर्वभूत प्राणीमात्रके येई दोनों
प्रकृति औ पुरुष कारण हैं ऐसे तुम जानौं औ ये मेरे हैं
याने इनका कारण मैं हौं इसवास्ते मैं इस सर्व जगत्का
प्रभव याने कारणहौं औ मही प्रलय हौं अर्थात् इसजगतकी
उत्पत्ती औ प्रलयरूपमहीं हौं ॥ ६ ॥ मेरेसे परे और कुछभी
नहीं है, जैसे सूत्रमे मालाकेमनिके पोहे होते हैं तैसे यहसर्व
जडवैतन्य समूह जगत् मेरेमें पोहा है. ॥ ७ ॥

मूलम्.

रसोहमप्सुकौंतेयप्रभास्मिशशिसूर्ययोः ॥
प्रणवःसर्ववेदेषुशब्दःखेपौरुपंनृपु ॥ ८ ॥

अन्वयः

हे कौंतेय अप्सु रसः अहं अस्मि शशिसूर्ययोः प्रभा
अहं अस्मि सर्ववेदेषु प्रणवः अहं अस्मि खे शब्दः
अहं अस्मि नृपु पौरुपं अहमास्मि ॥ ८ ॥

टीका

जो सातवे श्लोकमे कहाकी मेरेमे यह जगत जैसे सूत्रमे मणीसमूह पोहाहै सोई विस्तारसे देखातेहैं जैसे जलमे सूत्रस्थानीय रसहै यह एक आचार्यकृत अर्थ. दूसरेभी अर्थ तौ ऐसाही करतेहैं परंतु विशेष यह है कि, जैसे जलमे रस है वह मैं हौं अर्थात् मेरा शरीरभूतरसहै याने जलका सार जो रस उसका भी अंतर्गामी मैं हौं इस रीतिसे मेरेमे वह जल पोहाहै ऐसे सर्वत्र जानना. भगवान् कहते हैं कि हे कुंतीपुत्र! जलमेरस चंद्रसूर्यमे प्रकाश, सर्व वेदोंमे श्रौंकार, आकाशमे शब्द, मनुष्योंमे पुरुषार्थ ये सर्वमेरेही श्रेष्ठविभूति हैं. ॥ ८ ॥

मूलम्.

पुंयगंधः पृथिव्यां च तेजश्चास्मि विभावसौ ॥
जीवनं सर्वभूतेषु तपश्चास्मि तपस्विषु ॥ ९ ॥

अन्वयः

पृथिव्यां पुंयः गंधः च विभावसौ तेजः अहं अस्मि सर्वभूतेषु जीवनं च तपस्विषु तपः अहं अस्मि ॥ ९ ॥

टीका.

पृथ्वीमे जो पवित्र गंधहै औ अग्निमे तेज सर्व भूतप्रणीमात्रमे जीवन याने आयुष्य औ चानप्रस्थादिक तपस्विषु नमे तप रूप मैं हौं. ॥ ९ ॥

मूलम्.

वीजं मां सर्वभूतानां विद्धि पार्थ सनातनं ॥
बुद्धिर्बुद्धिमतामस्मि ते जस्ते जस्विनामहं ॥ १० ॥

अन्वयः

हे पार्थ सर्वभूतानां सनातनं विजं मां विद्धि बुद्धिमतां

बुद्धिः तेजस्विनां तेजः अहमस्मि ॥ १० ॥

टीका.

हेपृथापुत्र! सर्वभूत प्राणिमात्रका सनातनबीज उत्पत्तिकार
णमेरी श्रेष्ठ विभूति वा मेरा शरीर जानौ बुद्धिवालोंमें बुद्धि,
तेज्जवालोंमें तेज, मेरे शरीरभूत मेरी श्रेष्ठविभूति है ॥ १० ॥

मूलम्.

बलंबलवतांचाहंकामरागविवर्जितं ॥

धर्माऽविरुद्धोभूतेषुकामोस्मिभरतर्षभ ॥ ११ ॥

अन्वयः

हेभरतर्षभ बलवतां कामरागविवर्जितं बलं अहं भूतेषु
धर्माऽविरुद्धः कामः अहं अस्मि ॥ ११ ॥

टीका.

जो बलवंत लोगहैं तिनमें अप्राप्त विषयोंकी कामना औ
प्राप्त विषयोंकी प्रीति इन काम रागोंविना बल मैं हौं औ भू-
तप्राणीमात्रमें धर्मसे जो अविरुद्ध काम सो मैं हौं ॥ ११ ॥

मूलम्.

येचैवसात्विकाभावाराजसास्तामसाश्रये ॥

मत्तएवेतितान्बिद्धिनत्वहंतेषुतेमयि ॥ १२ ॥

अन्वयः

येसात्विकाः एव भावाः च ये राजसाः च ये तामसाः तेमत्तः
एव इति तान् विद्धि तु अहं तेषु न ते मयि संति ॥ १२ ॥ :

टीका.

इस जगतमें जे सात्विक याने शमादिक राजस द्वेषादिकता-
मस मोहादिक अथवा सात्विक भोग्यत्व करिके राजस देहपणा

से तामस इंद्रियत्व करिके जे भाव हैं वै सब मेरेहीसे उत्पन्न
ऐसा जानौ परंतु मै उनके स्वाधीन नहींहैं औ वै मेरे स्वा-
धीन हैं ॥ १२ ॥

मूलम्.

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिःसर्वमिदंजगत् ॥

मोहितंनाभिजानातिमामेभ्यःपरमव्ययं ॥ १३ ॥

अन्वयः

एभिः त्रिभिः गुणमयैः भावैः इदं सर्वं जगत् मोहितं अ-
तः एभ्यः परं अव्ययं मां न जानाति ॥ १३ ॥

टीका.

यै जो तीनौ गुणमय भाव हैं तिनौ करिके यह सर्व जग-
त् मोहित है, इसवास्ते इनसे पर औ अविनाशी जो मै
तिसको नहीं जानता है. ॥ १३ ॥

मूलम्.

दैवीह्येपागुणमयीमममायादुरत्यया ॥

मामेवयंप्रपद्यंतेमायामेतांतरंतिते ॥ १४ ॥

अन्वयः

एषा गुणमयी दैवी मम माया हियस्मात् दुरत्यया त-
स्मात् ये मां एव प्रपद्यंते ते एतां मायां तरंति ॥ १४ ॥

टीका

यह तीनौ गुणौ करिके युक्त दैवी याने देवसंबंधिनी अर्थात्
मेरी माया दुरत्यय है याने दुःखसेभी तरनेमे आती नहीं.
इसवास्ते जे मरी शरण आते हैं वेही इस मायाको तरते हैं. ॥१४

मूलम्.

नमांदुष्कृतिनोमूढाःप्रपद्यंतेनराऽधमाः ॥

माययाऽपहतज्ञानाआसुरंभावमाश्रिताः ॥ १५ ॥

अन्वयः

मायया अपहतज्ञानाः आसुरं भावं आश्रिताः दुष्कृति-
नः नराऽधमाः मूढः मां न प्रपद्यन्ते ॥ १५ ॥

टीका.

मायाकरिके नष्ट भयाहै ज्ञान जिसका इसीसे असुरपनेको प्राप्ति हो रहे हैं इसीसे नीचकर्म करते हैं उस नीचकर्मही करनेसे वै मनुष्यौमे अधम हैं, औ इन्ही कारणोंसे वै मोहित हुये मेरी शरण नहीं आते हैं. ॥ १५ ॥

मूलम्.

चतुर्विधाभजन्तेमांजनाःसुकृतिनोऽर्जुन ॥ आ-
र्त्ताजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानीचभरतर्पभ ॥१६॥ तेषां
ज्ञानीनित्ययुक्तएकभक्तिर्विशिष्यते ॥ प्रियो
हिज्ञानिनोऽत्यर्थमहंचसचमेप्रियः ॥ १७ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन! आर्त्तः जिज्ञासुः अर्थार्थी च ज्ञानी इति चतुर्विधाः
सुकृतीनः जनाः मां भजन्ते हे भरतर्पभ तेषां ज्ञानी नित्य
युक्तः सन् एकभक्तिः अतः विशिष्यते हि ज्ञानिनः अ-
हं अत्यर्थं प्रियः च सः मे अत्यर्थं प्रियः ॥ १६ ॥

टीका.

हे अर्जुन एकतौ संसारसे दुःखी दूसरा जाननेकी इच्छा कर-
नेवाला तिसरा धनादिकके चाहनेवाला औ चौथा स्वस्वरूपपर
स्वरूपका जाननेवाला ऐसे चारिप्रकारके सुकृतीजन मेरेको भ-
जते हैं; तिनमे ज्ञानी नित्यही योगयुक्त व्हेके एरु मेरेही भक्ति
करताहै इसवास्ते वहचारौमे श्रेष्ठहै औनिश्चै करिकै जिसवास्ते

कि ज्ञानीको मैं अतिशय प्रिय हों तैसेही ज्ञानी मेरेको अति प्रिय है. ॥ १६ ॥ १७ ॥

मूलम्

उदाराःसर्वएवैतेज्ञानीत्वात्मैवमेमतं ॥ आस्थि
तःसहियुक्तात्मामामेवानुत्तमांगतिं ॥ १८ ॥

अन्वयः

एते सर्वे आर्तादयः उदारा एव ज्ञानी तु मम आत्मा
इति मे मतं हियस्मात् सः युक्तात्मा अनुत्तमां गतिं
मां एव आस्थितः ॥ १८ ॥

टीका.

जोये आर्त्त इत्यादिक चारि प्रकारके भक्त कहे यै यतने
सर्व उदारही हैं, परंतु ज्ञानी तौ मेरा आत्मायाने अत्यंत प्रिय
है ऐसा मेरा मत है क्योंकि, सो योगयुक्त उत्तमगतिदायक जो
मैं उसी मेरेमेही आसक्त व्ही रहा है तात्पर्य जैसा वह मेरेको
अतिप्यारसे भजता है, वैसे मैं उसकोभीभजता हों. ॥ १८ ॥

मूलम्.

बहूनांजन्मनामंतेज्ञानवान्मांप्रपद्यते॥वासु
देवःसर्वमितिसमहात्मासुदुर्लभः ॥ १९ ॥

अन्वयः

बहूनां जन्मना अंते वासुदेवः सर्व इति ज्ञानवान् सन्
मां प्रपद्यते सः महात्मा सुदुर्लभः ॥ १९ ॥

टीका.

अब ज्ञानी किसको कहते हैं औ कैसे होताहै सो कहते हैं.
बहुत जन्मर्यंत पुण्यकर्म करके करते उनके अंतमे जब ऐसा
जानैकिवासुदेवभगवान्ही मेरा मातापिता गति मुक्ति धन कुटुं-

बादिक सर्व है इस ज्ञान करिके युक्त अथवा सर्व चराचर जगत् वासुदेवात्मक है ऐसा जानिके, सर्व हितकारक औ वैर रहित होना इस ज्ञान करिके युक्त होई सो ज्ञानी मेरेको प्राप्त होता है, वहसवसे श्रेष्ठ औ अति दुर्लभ है. ॥ १९ ॥

मूलम्.

कामैस्तेस्तेर्हृतज्ञानाः प्रपद्यन्तेऽन्यदेवताः ॥ तंतं
नियममास्थाय प्रकृत्या नियताः स्वया ॥ २० ॥

अन्वयः

स्वया प्रकृत्या नियताः तैः तैः कामैः हृतज्ञानाः तं तं
नियमं आस्थाय अन्यदेवताः प्रपद्यन्ते ॥ २० ॥

टीका.

आपकी राजस तामस प्रकृति करिके नियमित औ पु-
त्रादि प्राप्तिरूप तिन तिन कामना करिके हरा गया है भगव-
त्प्राप्तिरूप ज्ञान जिनका, औ उत्ती उसीका मनाके अनुरूप
नियममे स्थितवहैके अन्य देवताँकी शरण जाते हैं. ॥ २० ॥

मूलम्.

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धया चिंतुमिच्छति ॥ त
स्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहं ॥ २१ ॥
सतया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ॥ लभ
ते च ततः कामान्मयैव विहितान् हितान् ॥ २२ ॥
अंतवत्तु फलं तेषां तद्भवत्यल्पमेधसां ॥ देवान् देव
यजो यांति मद्भक्ता यांति मामपि ॥ २३ ॥

अन्वयः

यः यः भक्तः यां यां तनुं श्रद्धया अर्चिंतुं इच्छति तस्य

तस्य तां एव अचलां श्रद्धां अहं विदधामि ॥ २१ ॥ सः
तथा श्रद्धया युक्तः तस्य आराधनं ईहते च ततः मया
एव विहितान् हितान् कामान् लभते ॥ २२ ॥ किंतु तेषां
अल्पमेधसां तत् फलं अंतवत् भवति यथा देवयजः दे
वान् यांति तथा मद्भक्ताः अपि मां यांति ॥ २३ ॥

टीका.

जो अन्यदेवता करिके कहेहैं वैभी मेरेहि शरीर हैं यस्या-
दित्यः शरीरं इत्यादि श्रुतिवाक्योंका जो अर्थ है सो इहांभी
भगवान् प्रगट करतेहैं कि, जो जो भक्त इंद्रादि देवरूप मेरे जि-
स जिस तनु याने शरीरकी श्रद्धासे अर्चन करनेकी इच्छा करै
है, उस उस भक्तको वही अचलश्रद्धा मै देताहौं ॥ २१ ॥ सो
भक्त उसी श्रद्धाकरिके युक्त भया उसी इंद्रादिक देवका आरा-
धन करता है औ उसी देवसे मेरेहि विधान किये हुये मनोर-
थोंको प्राप्त होताहै ॥ २२ ॥ परंतु तिन बुद्धिवालोंका सोफल
नाशवान् होताहै जैसे अन्यदेवतोंके आराधन अन्य देवतोंको
प्राप्त होते हैं औ मेरे भक्त मेरेहीको प्राप्त होते हैं, तहां जे अन्य
देवतोंको प्राप्त होते हैं वै फिरिभी जन्मते मरते हैं औ मेरेको
प्राप्त ठहैके मुक्तहुये फिरि जन्मते नहीं सो अप्रम केशोर हैं
श्लोकमे लिखैंगे आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोर्जुन ॥ मामु-
पेत्यतु कौंतेय पुनर्जन्मन विद्यते इति ॥ २३ ॥

मूलम्.

अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यन्ते मामबुद्धयः ॥ परं
भावमजानन्तो ममाऽव्ययमनुत्तमम् ॥ २४ ॥

अन्वयः

मम अव्ययं अनुत्तमं परं भावं अजानन्तः अनुद्धयः अ-

व्यक्तं मां व्यक्तिं आपन्नं मन्यन्ते यद्वा व्यक्तिं आपन्नं
वां अव्यक्तं मन्यन्ते ॥ २४ ॥

टीका.

मेरा जो एक रस सर्वोत्तम पर स्वरूप तिसको न जानने-
वाले अज्ञानी जन मैं सर्वांतर्यामी जिसको वसुदेव पुत्रकारिके
मनुष्यरूप मानते हैं अथवा, सर्वस्य चाहं हृदिसन्निविष्टः ॥ ईश्वरः
सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥ इन वाक्यों करिके सर्वके हृदय-
में जो मैं मूर्तिमान हूँ तिसको अरूप मानते हैं इसवास्ते मेरेको
दुष्प्राप्त मानिके दूसरे देवताँको भजते हैं. ॥ २४ ॥

मूलम्.

नाहंप्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः ॥ मूढो
यं नाभिजानाति लोको मामजमव्ययम् ॥ २५ ॥

अन्वयः

अहं योगमायासमावृतः सन् सर्वस्य प्रकाशः न अतः
अयं मूढः लोकः अजं अव्ययं मां न अभिजानाति ॥ २५ ॥

टीका.

किसवास्ते वै लोग आपके स्वरूपको नहीं जानते हैं इस शं-
का पर कहते हैं कि, मैं योगमाया करिके आच्छादित हुआ भ-
या सर्वको प्रसिद्ध नहीं हूँ इसी कारणसे जो अजन्मा ओ एक
रस मैं हूँ इसको ये मूढ लोग नहीं जानते हैं. ॥ २५ ॥

मूलम्.

वेदाऽहं समतीतानि वर्तमानानि चार्जुन ॥ भ
विष्याणि च भूतानि मां तु वेदन कश्चन ॥ २६ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन अहं समतीतानि च वर्तमानानि च भविष्या-

पि भूतानि वेद तु मां कश्च न वेद ॥ २६ ॥

टीका.

हे अर्जुन! मैं जो पूर्व भये हैं औ जो अब वर्तमान हैं तथा जो आगे होयगे इन सबको जानता हौं; परंतु मेरेको कोई भी नहीं जानता है. ॥ २६ ॥

मूलम.

इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन भारत ॥ सर्वभूता
निसंमोहं सर्गेयांति परंतप ॥ २७ ॥ येषां त्वंत
गतं पापं जनानां पुण्यकर्मणां ॥ ते द्वंद्वमोहनिर्मु
क्ता भजन्ते मां दृढव्रताः ॥ २८ ॥

अन्वयः

हे भारत हे परंतप इच्छाद्वेषसमुत्थेन द्वंद्वमोहेन सर्वभूता-
निसर्गे संमोहं यांति ॥ २७ ॥ तु येषां पुण्यकर्मणां जना-
नां पापं अंतगतं ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ताः दृढव्रताः संतः मां भ-
जन्ते ॥ २८ ॥

टीका.

हे अर्जुन! इच्छा औ द्वेष करिके उत्पन्न भया जो सुखदुः
खादिरूप मोह उस मोह करिके सर्वभूतप्राणीमात्र जन्मका-
लमे मोहको प्राप्त होते हैं औ जिन पुण्यकर्म करनेवाले मनु-
ष्योंका पाप नष्ट भया है वै सुखदुःखादिकरूप मोहसे छुटे हैं
इसीसे दृढ नियम किये भये मेरेको भजते हैं, याने मेरेविना दू-
सरेको नहीं भजते है यही जिनका व्रत दृढ है. ॥ २८ ॥

मूलम.

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतंतिये ॥ ते
ब्रह्मतद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्मचाखिलं ॥ २९ ॥

अन्वयः

ये मां आश्रित्य जरामरणमोक्षाय यतन्ति ते तत् ब्रह्म वि-
दुः च कृत्स्नं अध्यात्मं विदुः च अखिलं कर्मविदुः ॥ २९ ॥

टीका.

जे मेरे आश्रित वहीके जरामरणसे मुक्त होनेकेवास्ते अर्थात् प्रकृतिसंबंधरहित आत्मस्वरूपकी प्राप्तिके वास्ते यत्न करते हैं, वै उस ब्रह्मको जानते हैं औ संपूर्ण अध्यात्मको जानते हैं औ समस्त कर्मकोभी जानते हैं इन ब्रह्म इत्यादिक शब्दोंका अर्थ आठवे अध्यायमें कहेंगे इसवास्ते इहां खुलासा नहीं किया. ॥ २९ ॥

मूलम्.

साधिभूताऽधिदैवमांसाधियज्ञं च ये विदुः ॥ प्र
याणकालेऽपि च मांते विदुर्युक्तचेतसः ॥ ३० ॥

अन्वयः

ये मां साधिभूताधिदैवं च साधियज्ञं विदुः ते च युक्त
चेतसः प्रयाणकालेऽपि मां विदुः ॥ ३० ॥

टीका.

जे पुरुष मेरेको अधिभूत करिके सहित औ अधिदैव करि-
के सहित औ अधियज्ञकरिकेभी सहित जानते हैं तेई पुरुष
योगयुक्त चित्तवाले मरणकालमेभी मेरेको जानते हैं. ॥ ३० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे विज्ञानयोगो
नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां

श्रीमद्भगवद्गीता वाक्यार्थबोधिनी टीकायां सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ किं तद्ब्रह्म किं मध्यात्मं किं कर्म पु-
रुषोत्तम ॥ अधिभूतं च किं प्रोक्तमधिदैवं किं मु-
च्यते ॥ १ ॥ अधियज्ञः कथं कोऽत्र देहेऽस्मिन् म-
धुसूदन ॥ प्रयाणकाले च कथं ज्ञेयोऽसि नियता-
त्मभिः ॥ २ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे पुरुषोत्तम तत् ब्रह्म किं अध्यात्मं किं क-
र्म किं च अधिभूतं किं प्रोक्तं च अधिदैवं किं उच्यते ॥ १ ॥
हे मधुसूदन अत्र देहे अधियज्ञः कथं कः च अस्मिन्
लोके प्रयाणकाले नियतात्मभिः कथं ज्ञेयः असि ॥ २ ॥

टीका.

सातथें अध्यायमे जो ब्रह्म इत्यादिकको जानना कहाथा
उनको पूछनेको अर्जुन बोलता भया कि, हे पुरुषोत्तम! जो अप-
ने ब्रह्म कहा सो क्याहै औ अध्यात्म क्याहै औ कर्म क्याहै
औ अधिभूत किसका कहते हैं औ अधिदैव किसको कहते हैं
॥ १ ॥ हे मधुसूदन! इस देहमे अधियज्ञ कैसे कौनहै औ इ-
स लोकमे मरणकालमे स्थिरचित्त मनुष्यों करिके कैसे ध्यान
करने योग्य हौ सो कहौ. ॥ २ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्या-
त्ममुच्यते ॥ भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञि-
तः ॥ ३ ॥ अधिभूतं क्षरोभावः पुरुषश्चाधिदैवतं ॥

अधियज्ञोहमेवात्र देहे देहभृतांवर ॥ ४ ॥ अंत
काले च मामेव स्मरन्मत्काकलेवरं ॥ यः प्रयाति स
मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः ॥ ५ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हे अर्जुन परमं अक्षरं ब्रह्म उच्यते स्व
भावः अध्यात्मं उच्यते यः भूतभावोद्भवकरः विसर्गः सः
कर्मसंज्ञितः अस्ति ॥ ३ ॥ क्षरो भवः अधिभूतं च पुरुषः
अधिदैवतं हे देहभृतांवर अत्र देहे अधियज्ञः अहं एव
॥ ४ ॥ यः अंतकाले मां एव स्मरन्सन् कलेवरं मुक्त्वा
प्रयाति सः मद्भावं याति अत्र संशयः न अस्ति ॥ ५ ॥

टीका.

जो प्रश्न अर्जुनने करी उन सबनका उत्तर श्रीकृष्णभगवान्
देतेभये अर्जुन परम अक्षर जो शुद्ध आत्मस्वरूपक्षेत्रज्ञ सो ब्र-
ह्म कहिये औ कोई आचार्य परमअक्षर परमात्माको कहते हैं
तहाँ प्रथम अर्थ करनेवाले कहते हैं कि, यह अर्थ श्रुति विरुद्ध है
तथाच श्रुतिः अव्यक्त मक्षरे लीयते अक्षरं तमसिलीयते इत्या-
दिकाः ॥ इसवास्ते अक्षर आत्मा क्षेत्रज्ञ औ परमशब्दसे प्रकृति
सेमुक्त शुद्धस्वरूप आत्माही इहां ब्रह्म कहा है औ स्वभावको अ-
ध्यात्म कहते हैं औ जो सब भूतप्राणीमात्रकी उत्पत्तिकारक वि-
सर्ग उसको कर्म कहते हैं विसर्गका अर्थ कोई कहते हैं कि, यज्ञ
मे जो देवताके अर्थ पुरोडासादिक स्व द्रव्यके त्यागको नाम है.
औ एक कहते हैं कि, पंचम्यामाहुताश्रापः पुरुषवचसो भवति इस-
श्रुति करिके सिद्ध स्त्री संबंधसे जो विसर्ग है उसको कर्म कहते हैं
इन दोनोके भी अर्थमे विरुद्ध नहीं विसर्ग नाम सृष्टिका है सो
उसका जो यज्ञसे लेई तौभी यज्ञसे वर्षावर्षासे अन्न अन्नसे वीर्य

श्री वीर्यकास्त्री संगसे विसर्ग याने त्याग हुवा तौ सृष्टि फिर
 सृष्टिमे देहभया जब उसी देहसे यज्ञ यज्ञसे वर्षाइसीतरहसे यह
 चक्र प्रथमही कहा है ॥ ३ ॥ जो क्षरभाव याने देहादिक नाशवा-
 न् वस्तुमात्र उसको अधिभूत कहते हैं, पुरुष जो सर्व इंद्रादिक
 देवतनकेभी ऊपर वर्त्तमान सब देवतोंका अधिपति औ मेराही
 अंश वै राज सूर्यमंडल वर्ती वह अधिदेवत है श्री हे देहधारीनमें
 श्रेष्ठ देहमात्रमे अधियज्ञ महीहैं याने जीवकाभी अंतर्गामीउ-
 सीके संग संग देहमे मैभी रहताहैं उसी मेरेको अधियज्ञ कहते
 हैं औ श्रुतिभी कहै है श्रुतिः द्वाभ्युपणौसयुजौ सखायौ समानं
 वृक्षं परिपस्वजाते ॥ तयोरेकःपिप्पलंस्वाद्वत्यनश्नन्नन्योऽभिचा
 कसीति ॥ १ ॥ देहधारियों मे श्रेष्ठकहनेसे यह देखाया कितुह्यारे
 भी देहमे मै तुह्यारा अंतर्गामी हौं इसवास्तेतुमभी स्वाधीन न-
 ही है ॥ ४ ॥ जो पुरुष अंतकालमे मेराही स्मरण करता भया
 देह त्यागिके जाता है सो मेरी समताको प्राप्त होता है इस-
 मे संशय नहीं. ॥ ५ ॥

मूलम्.

यंयंवाऽपिस्मरन्भावंत्यजत्यंतेकलेवरं ॥ तंतं
 मेवैतिकौंतेयसदातद्भावभावितः ॥ ६ ॥ तस्मा
 त्सर्वेषुकालेषुमामनुस्मरयुद्धं च ॥ मय्यर्पित
 मनोबुद्धिर्मांमेवैष्यस्यसंशयः ॥ ७ ॥ अभ्यास
 योगयुक्तेनचेतसानान्यगामिना ॥ परमंपुरुषं
 दिव्यंयातिपार्थानुचिंतयन् ॥ ८ ॥

अन्वयः

यं यंभावं वा स्मरन् सन् सदा तद्भावभावितः यः कः

अपि अंते कलेवरं त्यजति हे कौंतेय सः तंतं एव एति
 ॥ ६ ॥ तस्मात् सर्वेषु कालेषु मां अनुस्मर च युद्धय ततः
 मग्यर्षितमनोबुद्धिः त्वं मां एव एष्यसि इति असंशयः
 ॥ ७ ॥ अत्र कारणमाह हेपार्थ अभ्यासयोगयुक्तेन ना-
 न्यगामिना चेतसा परमं पुरुषं दिव्यं मां अनुचिंतयन्
 सन् मां एव याति ॥ ८ ॥

टीका.

प्रथम कहाकि, अंतकालमे मरनेके समयमे जो मेरा स्मरण करता करता देहत्यागै सो मेरेहीको प्राप्त होई याने मेरे समान स्वरूप भोगादिक पावै ऐसेही मेरेको अथवा और जो जो भावों कोयाने जिसका जिसका स्मरण करता भया सदा उसीकी भावनामे चित्त लगाये भये जो कोईभी अंतमे देहको त्यागता है हे अर्जुन! सो उसी उसीको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ तिसीवास्ते सर्वकालमे मेरेही स्मरण करौ औ स्ववर्ण धर्मरूप युद्धादिक कर्म करौ तौ उसी कर्म करिके मेरे किये मन औ बुद्धि लगाये भये तुम मेरेहीको प्राप्त होउगे इसमे संशय नहीं ॥ ७ ॥ इहां सदा स्मरण करनेका कारण कहते हैं, हे पृथापुत्र अर्जुन! जो अभ्यासरूप योगमे युक्त औ दूसरेमे न जाय ऐसे चित्त करिके परम पुरुष दिव्य जो मैं तिसका पुनः पुनः चिंतवन करता भया मेरेहीको प्राप्त होता है. ॥ ८ ॥

मूलम.

कविंपुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्म
 रेंद्यः ॥ सर्वस्यधातारमर्चित्यरूपमादित्यवर्ण
 तमसःपरस्तात् ॥ ९ ॥ प्रयाणकालेमनसाचले
 नभक्त्यायुक्तोयोगवलेनचैव ॥ भ्रुवोर्मध्येप्रा

णमावेश्यसम्यक्सतंपरंपुरुषमुपैतिदिव्यं ॥ १० ॥

अन्वयः

यःपुरुषः भक्त्यायुक्तः सन् प्रयाणकाले अचलेन मनसा
च योगबलेन भ्रुवोः मध्ये एवसम्यक् प्राणं आवेश्य ततः
कविं पुराणं अनुशासितारं अणोः अणीयांसं सर्वस्य
धातारं अचिंत्यरूपं आदित्यवर्णं तमसःपरस्तात् एवंभू-
तंपुरुषं अनुस्मरेत् सःतं परं दिव्यं पुरुषं उपैति ॥ १० ॥

टीका.

जो पुरुष भक्तिकरिकेयुक्त हुआभयामरणसमयमे स्थिर मन
करिके फिरि योगके बलसे दोनों भ्रुकुटिनके मध्यमे सुशुम्नाना-
डिद्वारा सम्यक प्रकारसे प्राणवायुको प्रवेश करिके अर्थात् कुंभ
क करिके तिस पीछे कवि याने सर्वज्ञ पुराण याने पुरातन
अनुशासितारं याने सर्वका शिक्षक अणोः अणीयांसं याने
सूक्ष्मसे सूक्ष्म सर्वस्य धातारं याने सर्वका धारण करनेवाला अ-
चिंत्यरूपं याने जिसका रूप चिंतवनमे न आयसकै आदित्यव
र्णं याने सदासूर्यवत् प्रकाशमान तमसःपरस्तात् याने प्रकृतितसे
परऐसा जो पुरुष याने परमात्मा तिसका स्मरण करै सो उसप-
रकायाने सर्वोत्तमको दिव्य याने अप्राकृत अर्थात् प्रकृति संबंध
रहित ऐसे पुरुषको अर्थात् परमात्माको प्राप्त होय है. ॥ १० ॥

मूलम्.

यदक्षरंवेदविदोवदंतिविशंतियद्यतयोवीतरा
गाः ॥ यदिच्छंतोब्रह्मचर्यंचरंतितत्तेपदंसंग्रहे
णप्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

अन्वयः

वेदविदः यत् अक्षरं वदंति वीतरागाः यतयः यत् विशं

ति यदिच्छंतः ब्रह्मचर्यं चरन्ति अहं तत् पदं ते संग्रहेण
प्रवक्ष्ये ॥ ११ ॥

टीका.

वेदके जाननेवाले जिसकी श्रक्षर कहते हैं औ वीतराग
याने विगत भई हैं वासना जिसकी ऐसे यती याने ईश्वर
प्राप्तिके वास्ते यत्न करनेवाले जिस पदको प्राप्त होते हैं औ
जिस पदकी इच्छा करनेवाले उसके जाननेके वास्ते गुरुकुल-
मे रहिके ब्रह्मचर्य करते भये वेदाभ्यास करते हैं, मै उस पद-
को तुम्हारेको संक्षेप करिके कहौंगा. ॥ ११ ॥

मूलम्.

सर्वद्वाराणिसंयम्यमनोहृदिनिरुद्धयच ॥ मू
र्ध्याधायत्मनःप्राणमास्थितोयोगधारणम् ॥
॥ १२ ॥ ओमित्येकाक्षरंब्रह्मव्याहरन्मामनु
स्मरन् ॥ यः प्रयातित्यजन्देहंसयातिपरमांग
तिम् ॥ १३ ॥

अन्वयः

यः सर्वद्वाराणि संयम्य च मनः हृदिनिरुद्धय च आत्म-
नः प्राणं मूर्ध्नि आधाय योगधारणां आस्थितः सन् ॥ १२ ॥
ओं इति एकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् च मां अनुस्मरन् सन् यः
देहं त्यजन् प्रयाति सः परमां गतिं याति ॥ १३ ॥

टीका.

अब जो प्रतिज्ञा करी है उस पदके प्राप्तीका उपाय कहते हैं,
जैसे कि सर्व इंद्रियोंको संयममे करिके मनको हृदय स्थित ई-
श्वरमे राखिके आपके प्राणवायुको मूर्द्धनीमे चढायके योग

धारणामे स्थित हुआ भया ॥ १२ ॥ औ यह जो एक अक्षररूप ब्रह्मयाने ब्रह्मका प्रतिपादन कारक ओंकारतिसको उच्चारण करता करता औ उसका अधिष्ठाता जो मै तिसका स्मरण करता करता जो देह त्यागते भये जाता है सो परमगतीको प्राप्त होता है. ॥ १३ ॥

मूलम्.

अनन्यचेताःसततंयोमांस्मरतिनित्यशः ॥

तस्याहंसुलभःपार्थनित्ययुक्तस्ययोगिनः ॥ १४ ॥

अन्वयः

हे पार्थ अनन्यचेताः यः मां नित्यशः सततं स्मरति तस्य नित्ययुक्तस्ययोगिनः अहं सुलभः ॥ १४ ॥

टीका

हे भर्जुन! नहीं है दूसरेमे मेरे विना चित्त जिसका ऐसा जो मेरेको नित्य निरंतर स्मरता है उस नित्य योगयुक्त योगीको मैं सुलभ हौं. ॥ १४ ॥

मूलम्.

मामुपेत्यपुनर्जन्मदुःखालयमशाश्वतम् ॥

नाप्नुवंतिमहात्मानःसंसिद्धिंपरमांगताः ॥ १५ ॥

अन्वयः

परमा संसिद्धिं गताः महात्मानः मां उपेत्य पुनः दुःखालयं अशाश्वतं जन्म न आप्नुवंति ॥ १५ ॥

टीका.

इसके परे याने अगाडी जो अध्यायशेष रहा है उसमे ज्ञानी जो कैवल्यार्थी है उसकी अपुनरावृत्ति याने जन्म मरणका अभाव औ ऐश्वर्यार्थीकी पुनरावृत्ति कहते हैं. परम सिद्धिको याने

मेरी उपासनारूप सिद्धिकां प्राप्त भये जो महात्मा वै मेरे को प्राप्त व्हेके फिरि दुःखका स्थान त्रौ अस्थिर ऐसे जन्म-को नहीं प्राप्त होते हैं. ॥ १५ ॥

मूलम्.

आब्रह्मभुवनांल्लोकाःपुनरावर्तिनोर्जुन ॥ मामु
पेत्यतुकौंतेयपुनर्जन्मनविद्यते ॥ १६ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन आब्रह्मभुवनात् लोकाः पुनरावर्तिनः संति तु-
हे कौंतेय मां उपेत्य पुनः जन्म न विद्यते ॥ १६ ॥

टीका.

हे अर्जुन! ब्रह्मलोकपर्यंत जो लोक हैं उनमे जायके जी-
व फिरि जन्म लेताहै औ हे कुंतीपुत्र! मेरेको प्राप्त व्हेकेफिरि
यह जीव जन्मता नहीं. ॥ १६ ॥

मूलम्.

सहस्रयुगपर्यंतमहर्ष्यद्रह्मणोविदुः ॥ रात्रियुग
सहस्रांतांतेऽहोरात्रविदो जनाः ॥ १७ ॥

अन्वयः

ये सहस्रयुगपर्यंतं यत् ब्रह्मणः अहः तत् विदुः तथा युग-
सहस्रांतां रात्रिं विदुः ते जनाः अहोरात्रविदः संति ॥ १७ ॥

टीका.

अहोऋष्ण देखो! पुराणमे लिखा है कि, जो तपस्वीदानीयती
औ सहनशीलहैं वै तीनहू लोकके ऊपर महर्षीक इत्यादिकौ-
मे रहतेहैं तौभी विनाशपनेतौ मृत्युलोकवासिनहीके समान
हैं तय इसमे विशेष क्याहै? तहां कहते हैं कि, उनकी स्थितीबहुत

काल पर्यंत रहती है यही विशेष. इसी आशयसे कहते हैं कि, ब्रह्माके प्रमाणसे ब्रह्माकीभी आयुष्य सौ वर्षकी है उसमें ब्रह्मा की रात्रि रात्रिमें सृष्टिका प्रलय औ दिन दिनमें उत्पत्ति होवे है ऐसा देखाते भये ब्रह्माकी रात्रि औ दिनका प्रमाण कहते हैं सो जैसेकि हजार युग याने हजार चतुर्युगोका ब्रह्माका एक दिन औ हजार चतुर्युगीकी एक रात्री होती है सो जो कोईन के जाननेवाले हैं वही लोग रात्रिदिनके जाननेवाले हैं याने वे ई दीर्घदर्शी औ सर्वज्ञ हैं. जो केवल सूर्य चंद्र की गति प्रमाण रात्रि दिनको जानते हैं वे सर्वज्ञ नहीं. ॥ १७ ॥

मूलम्.

अव्यक्ताद्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे ॥ रात्र्या
गमे प्रलीयन्त तत्रैवाऽव्यक्तसंज्ञिके ॥ १८ ॥ भू
तग्रामः स एवाऽयं भूत्वा भूत्व. प्रलीयते ॥ रात्र्याग
मेऽवशः पार्थ प्रभवत्यहरागमे ॥ १९ ॥

अन्वयः

ब्रह्मणः अहरामे अव्यक्तात् सर्वाः व्यक्तयः प्रभवन्ति रा-
त्र्यागमे तत्र अव्यक्तसंज्ञिके एव प्रलीयन्ते ॥ १८ ॥ स एव
अयं भूतग्रामः रात्र्यागमे अवशः सन् भूत्वा भूत्वा प्रली-
यते हे पार्थ स अयं अहरागमे प्रभवति ॥ १९ ॥

टीका.

ब्रह्माके दिनके उदयकालमें ब्रह्माहीके शरीरसे सर्व चराच
र देह उत्पन्न होते हैं औ रात्रिके आगममें उसीमें लीन होते
हैं ॥ १८ ॥ सोई यह कर्म वश भूतप्राणी समूह दिनोंके आगम
में वही वहीके रात्रियोंके आगममें वारंवार उसी ब्रह्माकी देहमें
लीन होता है औ दिनोंके आगममें फिरभी उत्पन्न होता है

ऐसे ब्रह्माकी आयुष्यपर्यंत होता है ॥ १९ ॥

मूलम्.

परस्तस्मात्तुभावोऽन्योऽव्यक्तोऽव्यक्तात्सनातनः

॥ यःससर्वेषुभूतेषुनश्यत्स्वपिननश्यति ॥ २० ॥

अव्यक्तोऽक्षरइत्युक्तस्तमाहुःपरमांगतिं ॥ यंप्रा

प्यननिवर्त्ततेतद्धामपरमंमम ॥ २१ ॥

अन्वयः

तस्मात् अव्यक्तात् परः अन्यः यः अव्यक्तः सनातनः

भावः सः सर्वेषु भूतेषु नश्यत्सु अपि न नश्यति ॥ २१ ॥

सः अव्यक्तः अक्षरः इति उक्तः वेदज्ञाः तं परमां गतिं आहुः

यं प्राप्य जनाः न निवर्त्तते तत् मम परमं धाम ॥ २१ ॥

टीका.

जो कैवल्यको प्राप्त होते हैं उनकी भी पुनरावृत्ति नहीं है ऐसा कहते हैं कैवल्य कहते हैं स्वस्वरूपको जो कहाकी ब्रह्माकी देहसे उत्पत्ति औ उसीमे लय होता है तहां जो ब्रह्माका वह शरीर अचेतन प्रकृतिरूप है उसते उत्कृष्ट जो दूसरा अव्यक्त सनातनभाव है सो सर्व आकाशादि भूतोंके नष्ट होनेसे भी आप नष्ट नहीं होता है ॥ २१ ॥ सोई अव्यक्त अक्षर हैं याने अक्षरहीको अव्यक्त कहते हैं अव अक्षर तिसको कहते हैं सो सुनौ वार हे अध्यायमे प्रथम श्रीरुष्णभगवानने मध्यावेद्यमनोयेमांइस श्लोक करिके आपके उपासकोंका श्रेष्ठत्व कहा फिरि येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तं पर्युपासते इस श्लोक करिके यह कहाकि, प्रत्यगात्म स्वरूपकी भी उपासनावाले मेरेहीको प्राप्त होते हैं औ पंद्रहे अध्यायमे भी क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ उत्तमः पुरुष स्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ इन वाक्योंसे यह निश्चय भया की,

इहां अव्यक्त औ अक्षर ये दोनौ नामोंसे आत्माहीको कहा इ-
सी आत्माको वेदज्ञजन परम गति कहतेहैं 'यःप्रयातित्यजन्
देहं सयातिपरमांगतिं' इहांभी परमगति शब्द करिके देखाया
भया अक्षरही है अर्थात् प्रकृतिसंसर्गसे निर्मुक्त औ आपके शु-
द्ध स्वरूपमे स्थित जोआत्मा वही परमगतिहै याने आत्मस्वरूप-
मे स्थितिहीको परमगति कहतेहैं क्योंकि, जिस आत्मस्वरूप-
को प्राप्त व्हेके फिरि संसारमे नही आतेहैं, उसीसे वह मेरा-
परम याने उत्तम धाम है याने वासस्थान है. मै उसका अंतर्या-
मी हौं. एक मेरा वासस्थान प्रकृति, दूसरा जीवसो जीवात्मा
उत्तम स्थान है. ॥ २१ ॥

मूलम्

पुरुषःसपरःपार्थभक्त्यालभ्यस्त्वनन्यया ॥

यस्यांतस्थानिभूतानियेनसर्वमिदंततं ॥ २२ ॥

अन्वयः

हे पार्थ भूतानि यस्य अंतस्थानि संति इदं सर्वं येन
ततं सः परः पुरुषः अनन्यया भक्त्या लभ्यः ॥ २२ ॥

टीका.

कैवल्य प्राप्तिवालेकी मुक्ति कहे; अब ज्ञानीको जो ईश्वर.
प्राप्तिरूप सुखहै उसको उपाय कहतेहैं. हे अर्जुन! ये सर्व जड
चेतनभूत प्राणी जिसके अंगोंमे है जैसे कहा है कि 'मयिसर्व
मिदंप्रांतं सूत्रमणिगणाइव' औ जिस करिके यह सर्व जगत्
विस्तृत हुवा है सो पर पुरुष अनन्यभक्ति करिके प्राप्त होता
है, अनन्य भक्तिका लक्षण यह 'अनन्यचेताः सततंयोमांस्मर-
ति नित्यशः' इत्यादि. ॥ २२ ॥

मूलम्.

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः ॥

प्रयातायां तितं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ ॥ २३ ॥

अन्वयः

• यत्र काले प्रयाताः योगिनः अनावृत्तिं च आवृत्तिं एव यांति तं कालं वक्ष्यामि ॥ २३ ॥

टीका.

हे अर्जुन! जिस कालमे अर्थात् जिस मार्गमे गये भये योगी अपुनरावृत्तिको प्राप्त होते हैं औ जिसमे पुनरावृत्तिको प्राप्त होते हैं, वह काल मैं कहता हौं अर्थात् वह मार्ग कहता हौं ॥ २३ ॥

मूलम्

अग्निज्योतिरहःशुक्लःषण्मासाउत्तरायणं ॥

तत्र प्रयाता गच्छन्ति ब्रह्मब्रह्मविदो जनाः ॥ २४ ॥

अन्वयः

यत्र अग्निः ज्योतिः अहः शुक्लः षण्मासः उत्तरायणं तत्र प्रयाताः ब्रह्मविदः जनाः ब्रह्म गच्छन्ति ॥ २४ ॥

टीका.

• जिस कालमे याने जिस मार्गमे उस कालाभिमानी देवता अग्नि औ ज्योति है याने प्रकाशक है औ दिन तथा शुक्ल पक्ष देवताँके मार्गमे गये याने मृत्यु प्राप्त व्हेके गये हुये ब्रह्मके देवताँके मार्गमे गये याने मृत्यु प्राप्त व्हेके गये हुये ब्रह्मके जाननेवाले ब्रह्मको प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

मूलम्.

धूमोरात्रिस्तथा कृष्णः षण्मासादक्षिणायनं ॥

तत्रचांद्रमसंज्योतिर्योगीप्राप्यनिवर्तते ॥२५

अन्वयः

धूमः रात्रि तथा कृष्णः पणमासाः दक्षिणायनं योगी तत्र
चांद्रमसं ज्योतिः प्राप्य निवर्तते ॥ २५ ॥

टीका.

धूम औ रात्रिः तथा कृष्णपक्ष छ महिना दक्षिणायन अर्थात्
इन सबके अभिमानी देवतों करिके युक्त जो मार्ग तिसमे जा-
यके योगी स्वर्गमे यज्ञादिफल भोगिके फिरिभीजन्मते हैं. ॥ २५

मूलम्.

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते ॥

एकया यात्यनावृत्तिमन्यया वर्त्तते पुनः ॥ २६ ॥

अन्वयः

एते शुक्लकृष्णे गती जगतः शाश्वते मते एकया अना
वृत्तियाति अन्यया पुनः आवर्त्तते ॥ २६ ॥

टीका.

यै जो शुक्ल औ कृष्ण गती ते जगतमे सहाही हैं परंतु एक शु-
क्ला गती है, जिससे मोक्ष औ दूसरीसे पुनः जन्म होता है, ॥ २६ ॥

मूलम्.

नैते सृती पार्थ जानन् योगी मुह्यतिकश्चन ॥

तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन ॥ २७ ॥

अन्वयः

हे पार्थ एते सृती जानत् सन् कश्चन योगी न मुह्यति त-
स्मात् हे अर्जुन त्वं सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भव ॥ २७ ॥

टीका.

हे पृथा पुत्र! इन गुक्का औ कृष्णा दोनौ गती जानता हुवा-
कोई योगी मोहको प्राप्त नहीं होताहै इसते अर्जुन! तुम सर्व-
कालमे योगयुक्त होउ. ॥ २७ ॥

मूलम्.

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्ट-
म् ॥ अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परंस्था-
नमुपैति चाद्यम् ॥ २८ ॥

अन्वयः

नरः इदं विदित्वा ततः वेदेषु यज्ञेषु च तपस्सु च दाने-
षु यत् पुण्यफलं प्रदिष्टं तत्सर्वं अत्येति च योगी भूत्वा
परं आद्यं स्थानं उपैति ॥ २८ ॥

टीका.

मनुष्य इन सप्तम औ अष्टम दोनौ अध्यायोंमे कहे हुये भ-
गवानके महात्मको जानिके फिरि वेदमे अध्ययनादि करिके
यज्ञमे अनुष्ठानादि करिके तपमे शरीरशोषणादि करिके दानमे
सत्पात्रके संतोष करिके जो पुण्य कहाहै उस सर्वको उल्लंघन
करिके याने उनसेभी श्रेष्ठफल पाइके फिरि योगी याने ज्ञानी
वैके उत्तम आदिस्थान याने विष्णुपदको प्राप्त होय है. ॥ २८ ॥

मूलम्.

इति श्रीमद्भगवद्गीता सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे अक्षरब्रह्मयोगो
नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥

इति श्री मत्सुकल सीतलामात्मज पंडित रघुनाथप्रसादक
तायां श्रीमद्भगवद्गीता वाक्यार्थबोधिनी भाषाटीकायां अष्ट
मोऽध्यायः ॥ ८ ॥

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे ॥ ज्ञानवि
ज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वामोक्षयसे शुभात् ॥ १ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन इदं तु गुह्यतमं विज्ञानसहितं ज्ञानं ते अनुसूय-
वे प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा अशुभात् मोक्षयसे ॥ १ ॥

टीका:

सप्तम औ अष्टममे कहाकि, मेरा जो परमेश्वरतत्त्वहै सो भ-
क्तिही करिके प्राप्तिहोने योग्यहै. अवनवममे आपका जो अर्चित्य
ऐश्वर्य औ भक्तीका श्रेष्ठ प्रभाव सो कहतेहैं अथवा पूर्व अध्याय-
मे उपासक भेदोंके निबंध कहे औ नवममे परम पुरुषका माहा-
त्म्य औ ज्ञानियोंकी विशेषता वरणन करिके भक्तिरूप उपासन-
का स्वरूप कहते हैं. जैसेकि, हे अर्जुन! यह जो अतिगौप्य भक्तिरू-
प औ उपासन संज्ञक ज्ञान सो विज्ञान जो उपासनाकी गतीका
विशेष ज्ञान तिस करिके संयुक्त मेरि निंदा करिकेरहित जो तुम
तिनको मै कहता हौं याने वारंवार मै आपना माहात्म्य अप-
नेही मुखसे कहताहौं तौ भी, तुम मेरि निंदा नहीं करते हौ. इस-
वास्ते कहता हौं जिसको जानिकें तुम अशुभ संसारसे छूटौगे ॥ १

मूलम्.

राजविद्याराजगुह्यं पवित्रमिदमुत्तमम् ॥
प्रत्यक्षावगमंधर्म्यंसुसुखं कर्तुमव्ययम् ॥ २ ॥

अन्वयः

इदं राजविद्याराजगुह्यं पवित्रं उत्तमं प्रत्यक्षावगमं ध-
र्म्यं कर्तुं सुसुखं अव्ययं अस्ति ॥ २ ॥

टीका.

यह भक्तिरूप ज्ञान विद्या औ गुप्त पदार्थोंमे भी राजा याने

सर्वोपरि है औ पवित्र कारक उत्तम औ प्रत्यक्ष फल धर्मयु-
क्तकरनेको भी सुख सहित औ नाशरहित है, अर्थात् मेरी
प्राप्तिको करायके आपभी नष्ट नहीं होताहै. ॥ २ ॥

मूलम्.

अश्रद्धानाःपुरुपाधर्मस्यास्यपरंतप ॥ अप्राप्य
मांनिवर्ततेमृत्युसंसारवर्त्मनि ॥ ३ ॥

अन्वयः

हे परंतप अस्य धर्मस्य अश्रद्धानाःपुरुपाः मां अप्रा-
प्य मृत्युसंसारवर्त्मनि निवर्तते ॥ ३ ॥

टीका.

हे शत्रुनको संतापितकारक अर्जुन! इस उपासनरूप
धर्मकी श्रद्धाको नहीं धारण करनेवाले पुरुष मेरेको न-
ही प्राप्त व्हेके मृत्युरूप संसारमार्गमे वर्तमान होतेहैं. ॥ ३ ॥

मूलम्.

मयाततमिदंसर्वजगदव्यक्तमूर्तिना ॥ मत्स्था
निसर्वभूतानिनचाहंतेष्ववस्थितः ॥ ४ ॥ नच
मत्स्थानिभूतानिपश्यमेयोगमैश्वरं ॥ भूतभृन्न
चभूतस्योममात्माभूतभावनः ॥ ५ ॥

अन्वयः

इदं सर्वं जगत् अव्यक्तमूर्तिना मया ततं सर्वभूतानि
मत्स्थानि च अहं तेषु अवस्थितः न ॥ ४ ॥ च. भूतानि
मत्स्थानि न इति मे ऐश्वरं योगं पश्य भूतभावनःमम
आत्मभूतभृत् च भूतस्थः न ॥ ५ ॥

टीका.

यह सर्वजगत् अव्यक्तमूर्तियाने सूक्ष्म अंतर्यामी स्वरूप मेरे

कारिके व्याप्त है इसवास्ते सर्व चराचर भूतप्राणीमात्र मेरे स्वाधीन है और मैं उनके स्वाधीन नहीं हूँ अर्थात् मेरा उपकार उनपर है उनका मेरे पर नहीं है ॥ ४ ॥ सर्व भूत प्राणीमात्र जैसे घटमे जल तैसे मेरेमे नहीं है यह ऐसा मेरा ईश्वर संबंधी योगदेखो-सर्व भूतोंका पालनेवाला ऐसा मेरा आत्मा जो मन अथवा शरीररूप प्रत्यगात्मा सो भूतोंके विषे नहीं है याने भूतोंमे अहं कास्युक्त नहीं है अथवा मैं सब भूतोंका पालक हूँ और भूतोंमे नहीं हूँ क्योंकि मेरे मनोमयसंकल्प हीसे भूतोंकी रक्षा होती है ॥ ५ ॥

मूलम्.

यथाकाशस्थितोनित्यं वायुः सर्वत्रगोमहान् ॥ तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानीत्युपधारय ॥ ६ ॥

अन्वयः

यथा महान् वायुः नित्यं आकाशस्थितः सर्वत्रगः भवति तथा सर्वाणि भूतानि मत्स्थानि इति उपधारय ॥ ६ ॥

टीका.

जैसे महान् वायु नित्यप्रति निरालंब आकाशमे स्थित भया हुआ सर्वत्र विचारता है अर्थात् उसका आधार मैं हूँ मेरे अवलंबसे स्थितविचारता है तैसे ही ये सर्वभूत प्राणी मेरे हीमे याने मेरे अवलंबमे जानौ. अर्थात् इनकोभी मेही धारण करि रहा हूँ ऐसा जानौ इहांप्रमाणकेवास्ते श्रुतिलिखतेहैं एतस्यवाक्प्रक्षरस्य प्रज्ञा सनेगार्गिसूर्याचंद्रमसौ विष्टौ तिष्ठतः ॥ भीषास्माद्वाग्निश्चंद्रश्चमृत्युर्धावतिपंचमः ॥ औरभी वेदवादी कहते हैं जैसे कि, मेघोदयः सागरसन्नित्तिरिंदोर्विभागः स्फुरितानिवायोः ॥ विद्युद्विभंगोगतिरुष्णरश्मेर्विष्णोर्विचित्राः प्रभवन्तिमायाः इति ॥ ६ ॥

मूलम्.

सर्वभूतानिकौंतेयप्रकृतियांतिमामिकां ॥ कल्प
क्षयेपुनस्तानिकल्पादौविसृजाम्यहम् ॥ ७ ॥

अन्वयः

. हेकौंतेय कल्पक्षये सर्वभूतानि मामिकां प्रकृतिं यांति क
ल्पादौ अहं तांति पुनः विसृजामि ॥ ७ ॥

टीका.

प्रथम कहाकि, भगवानने संकल्पहीसे सर्वकी स्थिति है औ
अब यह कहते हैं कि, उत्पत्ति औ प्रलयभी उन्हीकेसंकल्पसे हैं.
हेकुंतीपुत्र! कल्पक्षय याने ब्रह्माके सौवर्ष पीछे ब्रह्माकेभी प्रलय
कालमे सर्वभूत प्राणीमात्र आपआपके कारणों सहित मेरी
प्रकृति याने मेरा सरीरभूतसूक्ष्मरूप जिसको तमः भीकहते हैं
उसमे लीन होतेहैं औ कल्पकी आदिमें मै उनको फिरि उत्पन्न
करता हौं इहांप्रमाण मनुवाक्य लिखते हैं ॥आसीदिदंतमोभूतं
सोऽभिध्यायशरीरात्स्वात् इति॥श्रुतिर्भी लिखते हैं यस्याव्यक्तं
शरीरं इत्यादि अव्यक्तमक्षरेलीयते अक्षरंतमसिलीयते तमःपरे
देवेएकीभवति तमआसीत् तमसागूढमग्रेप्रकेतमित्तिचप्रमाणं ॥

मूलम्.

प्रकृतिंस्वामवष्टभ्यविसृजामिपुनःपुनः ॥ भूत
ग्राममिमंकृत्स्नमवशंप्रकृतेर्वशात् ॥ ८ ॥

अन्वयः

स्वां प्रकृतिं अवष्टभ्य प्रकृतेः वशात् अवशं इमं कृत्स्न
भूतग्रामं पुनः पुनः विसृजामि ॥ ८ ॥

टीका.

मै अपनी प्रकृतिके अनुकूल व्हेके प्राचीन स्वभावके वशजो

यह सर्व भूतसमूह तिसको वारंवार रचताहैं अथवा यह समग्र भूतसमूह मेरी गुणमयी प्रकृतिके वशहै इसवास्ते यह स्वतः अवश है, इसको मैं समय समयमे सृजताहैं. ॥ ८ ॥

मूलम्.

नचमांतानिकर्माणिनिबध्नन्तिधनंजय ॥ उदा
सीनवदासीनमसक्तंतेषुकर्मसु ॥ ९ ॥

अन्वयः

हेधनंजय तेषु कर्मसु असक्तं च उदासीनवत् आसी-
नं मां तानि कर्माणि न निबध्नन्ति ॥ ९ ॥

टीका.

जब आपही ऐसी विपम सृष्टिको रचतेहै याने कोईको श्रेष्ठ औ कोईको नीच दुःखी उत्पन्न करतेहै तब वैपम्य औ निर्दयत्वदोष तुझारेमें आवेंगे, जब तुमकोभी बंधन प्राप्त करैंगे तहा कहतेहैं कि, हे धनंजय! मैं उन कर्मोंमे आसक्त नहीं औ उदासीनयाने इच्छाद्वेषादि रहित सरीखा स्थितहैं ऐसे मेरेको वै कर्म नहीं बंधन करि सकते हैं. ॥ ९ ॥

मूलम्.

मयाऽध्यक्षेणप्रकृतिःसूयतेसचराचरम् ॥

हेतुनानेनकौंतेयजगद्विपरिवर्तते ॥ १० ॥

अन्वयः

हेकौंतेय मया अध्यक्षेण प्रकृतिः सचराचरंजगत् सूय-
ते अनेन हेतुना जगत् विपरिवर्तते ॥ १० ॥

टीका.

मैं जब सर्वका द्रष्टा व्हेके स्थितहैं तब यह प्रकृति च-

राचरको उत्पन्नकरै है इसी कारणसे जगत् नाना प्रकारका उत्पन्न होता है. ॥ १० ॥

मूलम्.

अवजानंतिमांसूढामानुर्पीतनुमास्थितं ॥ परं
भावमजानंतोममभूतमहेश्वरं ॥ ११ ॥ मोघा
शामोघकर्माणोमोघज्ञानाविचेतसः ॥ राक्षसी
मासुरींचैवप्रकृतिंमोहिनींश्रिताः ॥ १२ ॥ महा
त्मानस्तुमांपार्थदैवींप्रकृतिमाश्रिताः॥ भजंत्यन
न्यमनसोज्ञात्वाभूतादिमव्ययं ॥ १३ ॥

अन्वयः

राक्षसीं च आसुरीं एव मोहिनीं प्रकृतिं श्रिताः अत-
एव मोघाशाः मोघकर्माणः मोघज्ञानाः विचेतसः भूत-
महेश्वरं मम परंभावं अजानंतः मूढाः मानुर्पी तनुं
आस्थितं मां अवजानंति ॥ ११ ॥ १२ ॥ तु दैवीं प्रकृ-
तिं आश्रिताः महात्मानः हे पार्थ मां भूतादिं अव्ययं
ज्ञात्वा अनन्यमनसः भजंति ॥ १३ ॥

टीका.

जो राक्षसी औ आसुरी ही मोह करनेवाली प्रकृतिको गृह-
ण करि रहे हैं इसीसे वै निष्फल आशाके करनेवाले औ नि-
ष्फल कर्म करनेवाले औ निष्फल ज्ञान जिनका औ इसीसे वि-
क्षिप्त है चित्त जिनका इत्यादिकारणों करिके मेरा भूतोंका महेश्वरत्व नहीं जानते हैं याने मैं ईश्वरोंका भी ईश्वर हूँ, इसको नजानते भये मूढ परम करुणासे मनुष्य शरीर जोमैनेजगत् रक्षा वास्ते धारण किया है ऐसा जो मैं तिसकी अवज्ञा करतेहैं

याने और मनुष्योंके समान जानते है ॥ ११ ॥ १२ ॥ औ जो दै-
वीप्रकृतीको प्राप्त भये हैं वै महात्माजन हे अर्जुन! मेरेको सर्वभू-
तोंका आदि याने बीज औ अविनाशी जानिके अनन्यमन
याने दूसरेमे मनान लगाते भये मेरेको ही भजते है. ॥ १३ ॥

मूलम्.

सततं कीर्तयंतो मां यतंतश्च दृढव्रताः ॥ नमस्यं
तश्च मां भक्त्या नित्ययुक्ता उपासते ॥ १४ ॥

अन्वयः

सततं मां कीर्तयंतः च दृढव्रताः यतंतः च भक्त्या मां नम-
स्यंतः एवं नित्ययुक्ताः संतः मां उपासते ॥ १४ ॥

टीका

महात्मा कैसे भजते हैं सो कहें हैं. निरंतर मेरे ही गुण
नामोंका कीर्तन करते भये औ दृढ संकल्प करिके मेरे पूजना-
दिकमेयत्न करते भये औ भक्ती करिके मेरेहीको साष्टांग नम-
स्कारकरते भये ऐसे नित्यही मेरे समागमकी इच्छा करते भ-
ये मेरी उपासना करते हैं. ॥ १४ ॥

मूलम्.

ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ये यजंतो मामुपासते ॥ एक
त्वेन पृथक्केन बहुधा विश्वतो मुखं ॥ १५ ॥

अन्वयः

अन्ये एकत्वेन च पृथक्केन एवं बहुधा विश्वतो मुखं
मां ज्ञानयज्ञेन यजतः संतः उपासते ॥ १५ ॥

टीका.

प्रथमजो कीर्तनादिकरिके भजते हैं उनसे दूसरे महात्मा लो-
गएकत्व अर्थात् यह जडचेतन्य जगत् सर्व भगवानका शरीर है

इसवास्ते सर्व भगवान्ही है ऐसे एकत्व मानिके मेराहि कीर्तन अर्चनादि करते हैं औ पृथक्त्वेन इंद्रादिकोंका आराधन करिके मेरेअर्पण करते हैं अथवा एकत्व जो मित्रभावउस मित्रभावरूप एकत्वकरिके सत्कारपूर्वक उपासना करते हैं जैसे सुग्रीवादिकपृथक्क जो दासभाव उस करिके आराधनकरते भये उपासना करते हैं, जैसे हनुमान् इत्यादिक ऐसेही बहुधा कोई वात्सल्य औशृंगार इत्यादिक भावनासे नानाविधसे मेरा प्यारकरते भये पूजन करिके उपासना करते हैं कोई विश्वतोमुखं याने सर्वत्रमेरेको जानिके सर्वसे मित्रता औ दीनोंपर दया इत्यादि ज्ञानरूप यज्ञसे मेरा आराधन करते भये उपासना करते हैं ॥१५॥

मूलम्.

अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाहमहमौषधं ॥ मंत्रोहमह
मेवाज्यमहमग्निरहं हुतं ॥ १६ ॥

अन्वयः

क्रतुः अहं एव यज्ञः अहं एव स्वधा अहं एव औषधं अहं
एव मंत्रः अहं एव आज्यं अहं एव अग्निः अहं एव हुतं
अहं एव ॥ १६ ॥

टीका.

अब श्रीकृष्ण भगवान् आपको विश्वरूप कहते हैं, याने सर्व विश्व मेराही शरीर है यह कहते. जैसे क्रतुमैही हौं अर्थात् अग्नि-ष्टोमादिक श्रौतज्ञरूपमैही हौं, यज्ञयाने स्मार्त्त पंचमहायज्ञरूपमैही हौं, स्वधा पितृनके अर्थ श्राद्धादिक औषध अन्न मंत्रआज्य होमसामग्री अग्नि औ होमयै सर्वरूप मैही हौं ॥ १६ ॥

मूलम्.

पिताहमस्य जगतोमानाधातापितामहः ॥

वेद्यंपवित्रमोंकारऋक्सामयजुरेवच ॥ १७ ॥

अन्वयः

अस्य जगतः पिता माता धाता पितामहः वेद्यं पवित्रं
ओंकारः ऋक् साम च यजुः अहं एव ॥ १७ ॥

टीका.

इस स्थावरजंगमरूप जगतका पिता माता धारण कर-
नेवाला दादा इनरूप मैहीं हैं औ वेदमे पवित्र कारक अथवा
जानिवेजोग औ पवित्रकारक जोवस्तु है सो मैहीं हैं औ ओं-
कार तथा ऋग्वेद सामवेद यजुर्वेद इनरूपभी मैहीं हैं ॥ १७ ॥

मूलम.

गतिर्भर्ताप्रभुःसाक्षीनिवासःशरणंसुहृत् ॥ प्र
भवप्रलयस्थानंनिधानंबीजमव्ययं ॥ १८ ॥

अन्वयः

अस्य जगतः गतिः भर्ता प्रभुः साक्षी निवासः शरणं सुहृत्
प्रभवप्रलयस्थानं निधानं अव्ययं बीजं अहं एव ॥ १८ ॥

टीका.

इस जगतकी गति जो गमन औ भर्ता पोषण कर्ता प्रभुस्वा-
मी साक्षी शुभाशुभकर्मोंका साक्षी निवास रहनेका स्थान शरण,
इष्टकी प्राप्तिकारक औ अनिष्टका निवारक अथवा भयसे रक्षक
सुहृत् प्रत्युपकार विना हितकारक प्रभवप्रलयस्थान याने
उत्पत्ति नाशका स्थान निधान धारणकरनेका स्थल औ वि-
नाशरहित सर्व जगतका कारण भी मैहीं हैं ॥ १८ ॥

मूलम.

तपाम्यहमहंवर्षनिगृह्णम्युत्सृजामिच ॥

अमृतंचैवमृत्युश्चसदसच्चाहमर्जुन ॥ १९ ॥

अन्वयः

हेअर्जुन अहं तपामि अहं वर्षं निगूणहामि च उत्सृजामि
च अमृतं च मृत्युः च सत् च असत् अहं एव ॥१९ ॥

टीका.

हेअर्जुन! अग्नि औ सूर्यरूप वृहैके मैहीं तपता हौं औ ग्रीष्मा-
दिक ऋतुनमे मैहीं वर्षाको आकर्षण करता हौं औ वर्षाकालमे
वर्षाको त्यागता हौं याने वर्षता हौं औ अमृत जिसकरिके जीव
तेहैं मृत्यु याने जिसकरिके मरते हैं सो उनरूपभी मैही हौं अ-
व बहुत कहनेमे क्याहै? सत् जो वर्तमान औ असत् जो व्यतीत
भया औ होयगा अथवा सत् स्थूल असत् भूक्ष्म ऐसे इस जगत-
की सर्व अवस्थामे जड चेतनात्मक मैही हौं इसवास्ते
बहुधा नामरूप विभागसे पृथक्त्व करिके औ सर्वातिर्यामित्वसे
एकत्वज्ञान करिके महात्मा मेरो उपासना करते हैं. ॥ १९ ॥

मूलम्.

त्रैविद्यामांसोमपाःपूतपापायज्ञैरिष्ट्वास्वर्गतिंप्रार्थ-
यन्ते ॥ तेपुण्यमासाद्यसुरेन्द्रलोकमश्रन्तिदिव्या
न्दिविदेवभोगान् ॥ २० ॥ तेतं भुक्त्वास्वर्गलोकं
विशालंक्षीणेपुण्येमर्त्यलोकेविशन्ति ॥ एवंत्रयी
धर्ममनुप्रपन्नागतागतंकामकामालभन्ते ॥ २१ ॥

अन्वयः

त्रैविद्याः सोमपाः पूतपापाः मां यज्ञैः इष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थ-
यन्ते ते पुण्यं सुरेन्द्रलोकं आसाद्य दिवि दिव्यान् देवभो-
गान् अश्रन्ति ॥ २० ॥ ते तं विशालं स्वर्गलोकं भुक्त्वा पुण्ये

क्षीणे सति मर्त्यलोकं विशन्ति एवं त्रयीधर्मं अनुप्रपन्नाः
कामकामाः गतागतं लभन्ते ॥ २१ ॥

टीका.

ऐसे महात्मा ज्ञानी लोगोंकी रहनि औ व्यवहार कहा अ-
व अज्ञानी जो काम्य कर्म करनेवाले तिनका रहन, चलन क-
हते हैं. त्रैविद्या याने ऋक् जयुःसाम ऐसे तीन विद्या इन ती-
नों विद्याकरिके जो प्रतिपादन किया कर्म उसको त्रिविद्य कह-
ते हैं औ उसकर्महीके केवल निष्ठावालोंको त्रैविद्य कहते हैं
उन कर्मनिष्ठोंमे सकामी केवल कर्मनिष्ठ औनिष्कामी त्रैव्यं-
तनिष्ठ ते श्रेष्ठ तहां सकामी पुरुष केवल इंद्रादि यज्ञ शेष सो
पान करिके निष्पाप हुये भये उन इंद्रादिरूप मेरा यजन करि-
के मेरेको उनमे न जानतेभये स्वर्गकी प्राप्ति मांगते हैं, फिरि
वै पुण्यरूप इंद्रलोकको प्राप्तवैहके उस स्वर्गमे दिव्य देवतोंके
भोग भोगते हैं ॥ २० ॥ फिरिवै वह विशाल स्वर्ग लोक याने
स्वर्गके सुखको भोगिके पुण्यके क्षयहोनेसे फिरि मर्त्यलोकमे
प्रवेश करते हैं ऐसे केवल वेदत्रयी धर्मको वारंवार करते भये स-
कामी लोग गतागत याने स्वर्ग जाना फिरि मर्त्यलोकमे आ-
ना फिरि जाना फिरि आना ऐसा फल पावते हैं. ॥ २१ ॥

मूलम्.

अनन्याश्रितयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ॥
ते पां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहं ॥ २२ ॥

अन्वयः

ये जनाः अनन्याः मां चिंतयन्तः संतः मा पर्युपासते ते
पां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं अहं वहामि ॥ २२ ॥

टीका.

महात्मा जन तौ निरतिशय प्रियरूप मेरा चिंतवन करि-
के मेरेको प्राप्त व्हेके, फिरि नही जन्मते हैं ऐसे उनका विशेष
देखाते हैं. जे अनन्य याने मेरे चिंतवन विना दूसराप्रयोज
नजिनके नही ऐसे मेरा चिंतवन करनेवाले जे लोगमेरा उ-
पासन करते हैं उन् नित्य मेरा संयोग चाहने वालोंका योग
जो मेरी प्राप्ति औ क्षेम जो अपुनरावृत्ति अथवा योग धना
दिलाभ क्षेम धनादिककारक्षण ऐसे इह लोक औ परलोकके
सुखको प्राप्तिकारकमै ही हौं. ॥ २२ ॥

मूलम्.

येप्यन्यदेवताभक्तायजन्ते श्रद्धयान्विताः ॥

तेपि मामेवकौंतेययजन्त्यविधिपूर्वकं ॥ २३ ॥

अन्वयः

ये अन्यदेवताभक्ताः अपि श्रद्धया अन्विताः यजन्ते हे
कौंतेय ते अपि मां अविधिपूर्वकं भजन्ति ॥ २३ ॥

टीका.

जेपुरुष अन्य इंद्रादिक देवतोंकेभी भक्त श्रद्धायुक्त उनका
यजन करते हैं वै भी, मेरेहीको भजते हैं परंतु विधिपूर्वक या-
ने मेरेको मुख्य जानिके नहि भजते है. जो उन इंद्रादिकोंका
श्रंतर्भामी मेरेको जानिके. वह यज्ञफल मेरे अर्पण करें तौ
मुक्तहोय परंतु मेरेको नजाननेसो फिरिजन्मताहैं. ॥ २३ ॥

मूलम्.

अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च ॥ न तु माम
भिजानन्ति तत्त्वेना तश्च्यवन्ति ते ॥ २४ ॥

अन्वयः

हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुः अहं एव तु ते मां तत्त्वेन

न अभिजानंति अतः कारणात् व्यवति ॥ २४ ॥

टीका.

जिसवास्ते कीं सर्व यज्ञोंका भोक्ता श्री स्वामि मैहि हौं; प-
रंतु वै मेरेको ऐसा निश्चय करिके जानते नही इसवास्ते जन्म
मरणको फिरिभी प्राप्त होते हैं ॥ २४ ॥

मूलम्.

यांति देवव्रता देवान् पितृन् यांति पितृव्रताः ॥ भू-
तानि यांति भूते ज्यायांति मद्याजिनोऽपि मां ॥ २५ ॥

अन्वयः

देवव्रताः देवान् यांति पितृव्रताः पितृन् यांति भूते ज्याः
भूतानि यांति मद्याजिनः अपि मां यांति ॥ २५ ॥

टीका.

अहो यह बडा आश्चर्य है कि, एकही कर्ममे संकल्पमात्रसे
पुनरावृत्ति श्री पुनरावृत्तिकीभी प्राप्ति होती है, तहां कहते हैं
इहां भक्तिका कारण है जैसेकी जिसकी भक्तिका संकल्प इसीको
प्राप्ति केवल इंद्रादिदेवतोंकी भक्तिपूर्वक यजन करैतौ उन्ही दे-
वतोंको प्राप्तहोय केवल पितृभक्त पितृनको प्राप्तहोय और भूत
प्राणीमात्रमे जिसजिसकी भक्तिसे सेवाकरै उसीकी समताको
प्राप्तहोय औ मेरी भक्तिपूर्वक सर्व यज्ञादि कर्मकरै तौ मेरेको
प्राप्तहोय वै इंद्रादिक सर्व अल्पकाल स्यायी हैं श्री मैं सदा
एकरस हौं इसवास्ते उनका उपासक फिरिजन्मता है श्री मेरा
भक्त अपुनरावृत्तिको प्राप्त होता है ॥ २५ ॥

मूलम्.

पत्रंपुष्पं फलंतोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति ॥ त-
दहं भक्त्युपहतमश्रामि प्रयतात्मनः ॥ २६ ॥

अन्वयः

यः पत्रं पुष्पं फलं तोयं मे भक्त्या प्रयच्छति तत् पत्रा-
दिकं प्रयतात्मनः भक्त्युपहृतं अहं श्रामि ॥ २६ ॥

टीका.

अब आपकी भक्ति करनेमे अति सुलभता देखाते हैं, जो को-
ई पत्र पुष्प फल औ जल भरेको भक्ति करिकेयुक्त समर्पणकरता
है सो पत्रादिक शुद्ध चित्त भक्तका अर्पण कियाभया मै स्वीकार
करताहैं यह नहीकि, क्षुद्रदेवतौ सरीखा जो सामग्रीमे कुछभी
कमती भया तौ क्रोधकरे इसवास्ते मै अतिसुलभ हौं ॥ २६ ॥

मूलम्.

यत्करोपियदश्रासियञ्जुहोपिददासियत् ॥

यत्तपस्यसिकौंतेयतत्कुरुष्वमदर्पणं ॥ २७ ॥

शुभाशुभफलैरेवंमोक्ष्यसेकर्मबंधनैः ॥ संन्यास

योगयुक्तात्माविमुक्तोमामुपैष्यसि ॥ २८ ॥

अन्वयः

हे कौंतेय यत् करोपि यत् अश्रासि यत् जुहोपि यत् द-
दासि यत् तपस्यसि तत् मदर्पणं कुरुष्व ॥ २७ ॥ एवं
कर्मबंधनैः शुभाशुभफलैः मोक्ष्यसे एवंच संन्यासयोग
युक्तात्मा त्वं विमुक्तः सन् मां उपैष्यसि ॥ २८ ॥

टीका.

मै अतिसुलभ हौं इसवास्ते हे कुंतीपुत्र! तुम जो करौ जोखा
उ जा होमकरौ जो दान देऊ जो तप करौ सो सर्व लौकिक वैदि-
ककर्म मेरे श्रर्पण करौ ॥ २७ ॥ ऐसे करनेसे कर्मबंधन करनेवा-
ले शुभाशुभकर्मफलौंसे छूटौगे औ ऐसेही यह कर्म फलश्रर्पणरू-
पसंन्यास योगमे मनको युक्त किये भये कर्मबंधनसे छूटिकेमेरे

को प्राप्त होउगे. ॥ २८ ॥

मूलम्.

समोहंसर्वभूतेषु न द्वेष्योऽस्ति च न प्रियः ॥ ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयिते तेषु चाप्यहं ॥ २९ ॥

अन्वयः

अहं सर्वभूतेषु समः अतः मे द्वेष्यः न अस्ति न प्रियः अस्ति तु ये मां भक्त्या भजन्ति ते मयि संति च तेषु अपि अहं अस्मि ॥ २९ ॥

टीका.

मेरा सर्वलोकविलक्षण स्वभाव सुनौ कि मैं सर्व भूतप्राणी मां प्रभे समवर्ती हूँ; इसवास्ते मेरे शत्रुभी नहीं और मित्रभी नहीं तौ भी जो मेरेको भक्तिकरि के भजते हैं वै मेरे हृदयमे वसते हैं श्री मैं उनके हृदयमे वसता हूँ. ॥ २९ ॥

मूलम्.

अपि चेत्सुदुराचारो भजत मामनन्यभाक् ॥
साधुरेव समंतव्यः सम्यक् व्यवसितो हि सः ॥ ३० ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति ॥
कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

अन्वयः

चेत् यः सुदुराचारः अपि अनन्यभाक् मां भजते सः साधुः एव मंतव्यः हि यतः सः सम्यक् व्यवसितः ॥ ३० ॥ सः क्षिप्रं धर्मात्मा भवति च शश्वत्शान्तिं निगच्छति हे कौंतेय त्वं प्रतिजानीहि मद्भक्तः न प्रणश्यति ॥ ३१ ॥

टीका.

जो कि अति दुराचारी भी होय याने स्वजातीय धर्मोंका

आचरण त्यागिके अन्यधर्म आचरण करता होय तो भी जो पुरुष मेरा अनन्यभक्त वहैके मेरेको भजता होय तो वह साधु है, ऐसा मानना क्योंकि, उसने मेरा भली प्रकारसे निश्चय किया है ॥ ३० ॥ अहो शास्त्रवाक्य है कि, नाविरतोदुश्चरितान्नाज्ञातो नासमाहितः॥नाज्ञातमनसोवापिप्रज्ञानेनैवमाप्नुयात् ॥ अर्थ जो दुराचार नहीं छोडते हैं और न शांत है और न सावधान है औ न जिसका मन शांत भया है सो ज्ञान करिके ईश्वरको नहीं पावता है तो दुराचारी साधु कैसे माना जायगा? तहां कहते हैं कि वह मेरे भजनके प्रभावसे तत्काल धर्मात्मा होता है शश्वच्छांति जो अपुनरावृत्तिरूप मेरी प्राप्ति उसको प्राप्त होय है, हे कुंती-पुत्र! तुम सभामे ऐसी भुजा उठाके प्रतिज्ञा करौ कि मेरा भक्त नाशको नहीं प्राप्त होता है याने संसारी नहीं होता है ॥ ३१ ॥

मूलम्

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ॥
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यांति परांगतिं ॥
॥ ३२ ॥ किंपुनर्ब्राह्मणाः पुण्याभक्ताराजर्षय
स्तथा ॥ अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भज
स्व माम् ॥ ३३ ॥

अन्वयः

हे पार्थ मां व्यपाश्रित्य ये पापयोनयः अपि स्युः तथा स्त्रियः वैश्याः शूद्राः ते अपि परांगतिं यांति ॥ ३२ ॥ ये तु पुण्याः ब्राह्मणाः च तथा राजर्षयः भक्ताः ते परांगतिं यांति इति पुनः किं अतः अनित्यं असुखं इमं लोकं प्राप्य मां भजस्व ॥ ३३ ॥

टीका.

हे पृथापुत्र! मेरे आश्रित वृहके जो पाप योनीभी याने अं-
तिज इत्यादि भी हैं तैसे स्त्री वैश्य औ शूद्र वै भी परमगतीको
प्राप्त होते हैं ॥ ३२ ॥ औ जो पवित्र ब्राह्मण तथा क्षत्रिय मेरे भक्त
वृहके मुक्त होय इसमे कहनाही क्याहै? इसवास्ते अनित्य श्री
दुःखरूप इस लोकको प्राप्त वृहके मेरेको भजौ. ॥ ३३ ॥

मूलम्.

मन्मनाभवमद्भक्तोमद्याजीमानंस्कुरु ॥ मा
मेवैष्यसियुंत्कैवमात्मानंमत्परायणः ॥ ३४ ॥

अन्वयः

मन्मनाः भव मद्भक्तः भव मद्याजी भव मां नमः कुरु एवं
आत्मानं युंत्का मत्परायणः सन् मां एव एष्यसि ॥ ३४ ॥

टीका.

हे भर्जुन तुम मेरेमे मन लगावौ औ मेरे भक्त होउ याने-
मेराही स्मरणादिक करौ मेराही यजन करौ मेरेहीको नम-
स्कार कनै ऐमे मनको मेरेमे लगायके परम वासस्थानकिये
भये मेरेहीको प्राप्त होउगें. ॥ ३४ ॥

मूलम्.

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे राजविद्याराज
गुह्ययोगोनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इति श्रीमत्सुकल सीतारामात्मज पंडित रघुनाथप्रसाद-
कृतायां श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायांनवमो
ऽध्यायः ॥ ९ ॥

मूलम्

श्रीभगवानुवाच ॥ भूयएवमहाबाहोशृणुमेपर

मंचः ॥ यत्तेऽहंप्रीयमाणाय वक्ष्यामि हितकाम्यया ॥ १ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच ॥ हे महाबाहो यत् वचः प्रीयमाणा यते हितकाम्यया वक्ष्यामि तत् म परमं वचः भूयः
• एव शृणु ॥ १ ॥

टीका.

सप्तम आदिक तीनि अध्यायोंमे श्रीकृष्ण भगवानने भगवत्स्व औ आपकी विभूती वर्णनकी, तहां सप्तममे रसोहम प्सुर्कातेय इत्यादि करिके औ अष्टममे अधियज्ञोऽहमेवात्र इत्यादि करिके नवममे अहंकृतुरहंयज्ञ इत्यादि करिके विभूति संक्षेपसे कही. अब दशममे उन्ही विभूतियोंको विस्तार करते भये स्वभक्तिकी भी अवश्य कर्तव्यता वर्णन करते भये भगवान बोले, हे महाबाहो, जो वाक्य प्रीतिवाले तेरेको मै हितकी कामना करिके कहाँगा वही मेरा परम वाक्य तुम फिरि भी-सुनो अथवा वारंवार सुनौं. ॥ १ ॥

मूलम.

नमेविदुःसुरगणाः प्रभवन्नमहर्षयः ॥ अहमादि
हिंदेवानां महर्षीणां च सर्वशः ॥ २ ॥

अन्वयः

सुरगणः मे प्रभवं न विदुः च महर्षयः न विदुः हि यतः
अहं देवानां च महर्षीणां सर्वशः आदिः ॥ २ ॥

टीका.

समस्त देवता मेरे प्रभवको याने प्रभावको अर्था १ मेरे नाम कर्मस्वरूप औ स्वभावको नहीं जानतेहैं औ महर्षीभी नहीं जानतेहैं क्योंकि, मै सर्वदेव औ महर्षी इन्हींका सर्व प्रकारसे आदि-

हैं जैसेकि, उनका स्वरूप औ ज्ञानशक्ति इत्यादिकोंका आ-
दि मैं हों याने उनका देवत्व औ महार्पित्व उन्हींके पुण्यप्रमा-
णसे महींने दिया है औ परमित ज्ञानभी मैंने दिया है इस
वास्ते वै नहींजानते हैं. ॥ २ ॥

मूलम्.

योमामजमनादिंचवेत्तिलोकमहेश्वरं ॥ असंमू
ढः समर्त्येषुसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ३ ॥

अन्वयः

यः मां अजं अनादिं च लोकमहेश्वरं वेत्ति सःसमर्त्येषु
असंमूढः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ३ ॥

टीका.

जो मेरेको अजन्मा अनादि औ सर्व लोकोंका महेश्वर ऐसे
जानता है सो मनुष्योंमेमोहरहितभयासर्वपापोंसे छूटताहै ॥ ३ ॥

मूलम्.

बुद्धिज्ञानमसंमाहेःक्षमासत्यंदमःशमः ॥ सुखं
दुःखंभवोभावोभयंचाभयमेवच ॥ ४ ॥ अहिं
सासमतातुष्टिस्तपोदानंयशोऽयशः ॥ भवंति
भावाभूतानामत्तएवपृथग्विधाः ॥ ५ ॥

अन्वयः

बुद्धिः ज्ञानं असंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः सुखं
दुःखं भवः भावः भयं च अभयं एव च ॥ ४ ॥ अहिं
सा समता तुष्टिः तपः दानं यशः अयशः एवं पृथ
ग्विधाः भूतानां भावाः मत्तः एव भवंति ॥ ५ ॥

टीका.

अब आपकी सर्व लोक महेश्वरताको प्रसिद्ध वरशाते हैं बुद्धि इत्यादि तीन श्लोकों करिके, बुद्धि जो सारासार विवेककी त्रिपुणताज्ञान आत्मपरपरमात्मविषयिकज्ञान असंमोहश्रव्या कुलता क्षमा समर्थकोभी सहनशीलता सत्य यथार्थ औप्रियभाषण दम वाह्यइंद्रियोंका वशकरना शमअंतःकरणकासंयमसुख औ दुःखप्रसिद्ध हैं भव उत्पत्ति अभाव नाश भय अभय प्रसिद्ध हैं अहिंसा परपीडाकी निवृत्ति समता रागद्वेषादिकका अभाव तुष्टि यथालाभ संतोष तप उपवासादिक दान न्यायसे उत्पन्न किये धनकासत्पात्रको अर्पण करना अथवा सत्कीर्ति अथवा दुष्कीर्ति ऐसेबुद्धिज्ञानादिक ऐसे अनेक प्रकारके न्यारे न्यारे सर्वभूतमात्रप्राणिमात्रोंके भाव ते वै सर्व मेरेसेही होतेहै ॥ ५ ॥

मूलम्.

महर्षयःसप्तपूर्वचत्वारोमनवस्तथा ॥ मद्भावा
मानस्ताजातायेषांलोकइमाःप्रजाः ॥ ६ ॥

अन्वयः

सप्त महर्षयः तेभ्यः पूर्वे चत्वारः महर्षयःतथा मनवः
एतेमद्भावाः मानसाः जाताः येषां इमाःप्रजाः लोके
प्रजायंते ॥ ६ ॥

टीका.

सप्त मरीचि इत्यादिक महाऋषी औ उनसेभी पूर्वचारि
सनकादिक महाऋषी तथा स्वायंभुवादिकमन वै मेरे संक
ल्प सदृश करनेवालेहैं क्योंकि ब्रह्मरूप जो मैं उस मेरे म;
नहींसे उत्पन्नयेहैं जिनकी यह प्रजा पुत्रपौत्रादि औ शिष्य
प्रशिष्यादिरूप लोकमे उत्पन्न होते हैं ॥ ६ ॥

मूलम्.

एतां विभूतियोगंच मम यो वेत्ति तत्त्वतः ॥ सो
ऽविकंपेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥ ७ ॥

अन्वयः

यः मम एतां विभूतिं च योगं तत्त्वतः वेत्ति सः अवि-
कंपेन योगेन युज्यते अतः संशयः न ॥ ७ ॥

टीका.

जो पुरुष यह मेरी विभूति याने महर्षी इत्यादिकोंके उ-
त्पत्ति औ स्वाधीनत्व रूप वैभव औ कल्याण गुणादि रूप
योग, इनको जो तत्त्वसे जानै सो अचल भक्तियोगको प्राप्त
होय, इहां इस विषयमे संशय नहीं. ॥ ७ ॥

मूलम्.

अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ॥ इति मत्वा
भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ॥ ८ ॥

अन्वयः

अहं सर्वस्य प्रभवः मत्तः सर्वं प्रवर्तते इति मत्वा भाव-
समन्विताः बुधाः मां भजन्ते ॥ ८ ॥

टीका.

अब विभूतिज्ञानकी फलरूप जो भक्ति उसै देखाते हैं, मैं स-
र्वका उत्पत्तिस्थान हौं औ सर्व मेरेहीसे प्रवर्त होते हैं, ऐसे मेरे-
को जानिके प्रेमसहित ज्ञानीजन मेरेको भजते हैं. ॥ ८ ॥

मूलम्.

मच्चित्तामद्गतप्राणाबोधयंतः परस्परं ॥ कथयं
तश्च मां नित्यं तुष्यंति चरमंति च ॥ ९ ॥

अन्वयः

मच्चिताः मद्रत्तप्राणाः जनाः परस्परं बोधयन्ताः संतः नित्यं मा कथयन्ति च तुष्यन्ति च रमन्ति ॥ ९ ॥

टीका.

पूर्व श्लोकमे कहाकि, ज्ञानी जन मेरेको भजते हैं सो वै जैसे भजते हैं सो कहते हैं, मेरेमे लगा है चित्त औ प्राण जिनका ऐसे लोग मेरे गुणोंको आपआपके अनुभव प्रमाण परस्पर बोध करते भये मेरेही दिव्य रमणीय गुणोंको नित्य कथन करते हैं औ संतुष्ट होते हैं औ रमन्ति याने निवृत्तिको प्राप्त होते हैं अथवा रमन्ति याने मेरे करी भई क्रीडोंको करते हैं जैसे उत्सवोंमे रामलीला इत्यादिक. ॥ ९ ॥

मूलम्.

तेषांसततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकं ॥ ददा
मिबुद्धियोगं तं येन मामुपयांतिते ॥ १० ॥

अन्वयः

सततयुक्तानां प्रीतिपूर्वकं भजतां तेषां तं बुद्धियोगं ददामि येन ते मां उपयांतिते ॥ १० ॥

टीका.

निरंतर मेरी प्राप्तिकी इच्छा करि रहे हैं औ प्रीतिपूर्वक मेरे हीको भजते हैं उनको मै वह बुद्धियोग देउंगा जिस बुद्धियोग करिके वै मेरेको प्राप्त होयगे. ॥ १० ॥

मूलम्.

तेषामेवानुकुं पार्थ महमज्ञानजंतमः ॥ नाशया
म्यात्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वता ॥ ११ ॥

अन्वयः

तेषां एव अनुकंपार्थ आत्मभावस्थः अहं भास्वता ज्ञान-
दीपेन अज्ञानजं तमः नाशयामि ॥ ११ ॥

टीका

वै जो मेरे भक्त हैं उनहीके अनुग्रहके वास्ते उनकी मनकी
वृत्तिमे स्थित भया हुआ मैं प्रकाशमान जो मेरा संबंधी ज्ञान-
रूपदीपक उसकरिके जो अज्ञानसे उत्पन्न भया है तम याने
संसाररूप अंधकार इसका नाश करौंगा. ॥ ११ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ परंब्रह्मपरंधामपवित्रंपरमं भवा
न् ॥ पुरुषं शाश्वतं दिव्यमादिदेवमजं विभुम् ॥
॥ १२ ॥ आहुस्त्वामृषयः सर्वे देवर्षिर्नारदस्तथा ॥
असितो देवलो व्यासः स्वयंचैव ब्रवीषि मे ॥ १३ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे ऋषण भवान् परं ब्रह्म परं धाम परमं प-
वित्रं यतः त्वां शाश्वतं दिव्यं पुरुषं आदिदेवं अजं विभुं
आहुः ते के सर्वे ऋषयः तथा देवर्षिः नारदः असितः दे-
वलः च स्वयं एव मे ब्रवीषि ॥ १२ ॥ १३ ॥

टीका.

अर्जुनने संक्षेपसे विभूति मुनिके औ विस्तारसे सुननेकी इ-
च्छा करिके अर्जुन भगवानकी स्तुति करते भये बोलेकि, हे ऋषण!
तुम परंब्रह्म औ उत्कृष्ट तेज औ परम पावन हो, क्योंकि तुमको
नित्य दिव्यपुरुष औ आदिदेव अजन्मा व्यापक ऐसे कहते
हैं, जो कहौगेकि वै कौन तौ वै सर्वऋषी तथा देवऋषी नारद अ-
सित देवल व्यास औ आपभी तौ मेरेसे कहते हो. ॥ १२ ॥ १३ ॥

मूलम्.

सर्वमेतदृतं मन्ये यन्मां वदसि केशव ॥ नहिते भ
गवन् व्यक्तिं विदुर्देवानदानवाः ॥ १४ ॥

अन्वयः

हे केशव यत् मां वदसि तत् एतत् सर्वे ऋते मन्ये हे भगव
न् ते व्यक्तिं देवाः न विदुः न दानवाः विदुः ॥ १४ ॥

टीका.

हे केशव! जो मेरेको आपने अपना प्रभावं कहा सो मैं स-
त्य मानता हौं इसीसे हे भगवन् ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य
तेज इन छ भगयुक्त तुझारी प्रगटताको देव औ दानवभी न-
ही जानते हैं, देवोंके रक्षक औ दानवोंके शिक्षक आपही हौं तौ-
भी वै तुझारी प्रकटताको नहीं जानते हैं. ॥ १४ ॥

मूलम्.

स्वयमेवात्मनात्मानं वेत्थ त्वं पुरुषोत्तम ॥ भूत
भावनभूतेशदेवदेवजगत्पते ॥ १५ ॥

अन्वयः

हे पुरुषोत्तम हे भूतभावन हे भूतेश हे देवदेव हे जगत्पते
त्वं आत्मानं आत्मना स्वयं एव वेत्थ ॥ १५ ॥

टीका.

हे पुरुषश्रेष्ठ! हे भूतप्राणीमात्रके उत्पत्तिकारक! हे सर्वभूतोंके-
ईश्वर! हे देवके देव! हे जगतके स्वामिन! आपही आपके म-
नकरिके आपके स्वरूपको जानते हौं! दूसरा नहीं जानता
है. ॥ १८ ॥

मूलम्.

वक्तुमर्हस्यशेषेण दिव्याह्मत्मा विभूतयः ॥ या

भिर्विभूतिभिर्लोकानिमांस्त्वं व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥

अन्वयः

याः दिव्याः आत्मविभूतयः ताः त्वं अशेषेण वक्तुं अर्हसि याभिः विभूतिभिः त्वं इमान् लोकान् व्याप्य तिष्ठसि ॥ १६ ॥

टीका.

जो दिव्य आपकी विभूति हैं उनको तुम अशेष करिके कहने योग्य हो; जिन विभूतियों करिके तुम इन लोकोंमें व्याप्त होये स्थित हो. ॥ १६ ॥

मूलम्.

कथं विद्यामहं योगीत्वांसदा परिचिंतयन् ॥ के
षु केषु च भावेषु चिंत्योसि भगवन्मया ॥ १७ ॥

अन्वयः

अहं योगी भक्तियोगनिष्ठः सन् च भक्त्या त्वांसदा परिचिंतयन् सन् चिंतनीयं त्वांसदा कथं विद्यां हे भगवन् त्वं मया केषु केषु भावेषु चिंत्यः असि ॥ १७ ॥

टीका.

मैं भक्तियोगमें निष्ठा युक्त हुआ भया तुम्हारी भक्ति करिके तुम्हारा सदा चिंतन करता करता चिंतन करने योग्य तुमको कैसे जानौं? हे भगवन्! तुम मेरे करिके कौन कौन भावमें चिंतन करने योग्य हैं. ॥ १७ ॥

मूलम्.

विस्तरेणात्मनो योगविभूतिं च जनार्दन ॥ भूयः
कथय तृप्तिर्हि शृण्वतो नास्ति मेऽमृतं ॥ १८ ॥

अन्वयः

हेजनार्दन आत्मनः योगं च विभूतिं विस्तरेण भूयः
कथय हि अमृतं शृण्वतः मे तृप्तिः न अस्ति ॥ १८ ॥

टीका.

जो आपने कहाकि, मैं सबका उत्पत्तिस्थान हूँ औ मे-
रेसे सर्व होतेहैं, यह सृष्ट्वादियोग जो तुमने संक्षेपसे कहा
सो औ विभूति जो उनका प्रवर्त्तत्व सो विस्तारकरिके कहौ,
क्योंकि, तुम्हारा माहात्म्यरूप अमृत सुनते सुनते मेरेको
तृप्ति नहीं है ॥ १८ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ हंतते कथयिष्यामि दिव्या
ह्यात्मविभूतयः ॥ प्राधान्यतः कुरुश्रेष्ठ नास्त्यं
तो विस्तरस्य मे ॥ १९ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हंत हे अर्जुन याः दिव्याः आत्म-
विभूतयः ताः ते प्राधान्यतः कथयिष्यामि हे कुरुश्रेष्ठ
मे विभूतिविस्तरस्य अंतः नास्ति ॥ १९ ॥

टीका.

श्रीकृष्णभगवान् बड़ी अनुकंपासे अर्जुनको कहते हैं, कि हे
अर्जुन! जो मेरी दिव्यविभूती है वै तुम्हारेको मैं श्रेष्ठ श्रेष्ठ क-
हूँगा क्योंकि, मेरे विभूतिविस्तारका अंत नहीं है विभूतिजि-
नकारिके प्रवृत्ति होती है वै प्राधान्यसे जैसे पुरोहितोंमे मुख्य
बृहस्पति ऐसे ऐसे श्रेष्ठविभूति कहता हूँ ॥ १९ ॥

मूलम्.

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः ॥ अह
मादिश्रममध्यं च भूतानामंत एव च ॥ २० ॥

अन्वयः

हेगुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः अहं भूतानां आत्मा च अहं
भूतानां आदिः च मध्यं च अंतः एव अहं अस्मि ॥ २० ॥

टीका.

प्रथमजो कहि आएकी सर्वका स्रष्टा औ नियंता मै हौं
उसी अर्थको अब स्पष्ट करते हैं, हे अर्जुन! सर्वभूत मेरे श-
रीररूप हैं उनके आशयनाम हृदयमे आत्मारूप स्थित हौं
आत्मा कहिये शरीरका नियंता मालक तहांप्रमाण; सर्वस्य-
चाहं हृदिसन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ॥ ईश्वरः सर्वभूता
नां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥ भ्रामयन्सर्वभूतानियंत्रारूढानिमायया
॥ श्रुतिश्च यः सर्वेषु श्रुतेषु तिष्ठत्सर्वेभ्यो भूतेभ्यो तरोयं सर्वाणि भू-
तानि न विदुः ॥ यस्य सर्वाणि भूतानि शरीरं यः सर्वाणि भूतान्यंत-
रोयमयति एतस्य सर्वांतर्याम्यमृतः ॥ यत्र आत्मनितिष्ठन् आत्मनो
तरोयमात्मानं न वेद ॥ यस्य आत्मा शरीरं यदत्मानमंतरोयमय-
तिस त आत्मांतर्याम्यमृत इति ॥ इत्यादि प्रमाणों करिके सर्वभू-
त प्राणिमात्र मेरे शरीररूप हैं उनका मै आत्मत्व करिके उनमें
स्थित हौं औ उनका आदि मध्य औ अंतभीमहीं हौं ऐसेही
जहां जहां भगवान् कहेंगेकि, अमुकमै हौं. तहां तहां यह अर्थ है
की ये मेरे श्रेष्ठ विभूतिमे हैं ये मेरे अति कृपा पात्र हैं; नहीतौ ए-
कमे आप हैं तौ दूसरों में कौन है? जो दूसरा भया तौ ईश्वरभी
दूसरा चाहिये इसवास्ते अहं कहनेमे श्रेष्ठत्वही गृहण करना
चाहिये औ शरीरवाची शब्दोंका शरीरी जो उस शरीरका अं-
तर्यामी है उसीमे प्रवृत्ति होती है जैसेकि, यह पुरुष प्रथम देव
था अब मनुष्य भयातौ वह शरीरसे देवन भयाथा परंतु अंगु-
ली शरीरके तरफ करनेसे उस आत्माका बोध भया इसति-
रहसे आत्मा अहं ऐसा कहनेमे अंतर्यामि अर्थ होता है. ॥ २० ॥

मूलम.

आदित्यानामहंविष्णुज्योतिपांरविरंशुमान् ॥
मरीचिर्मरुतामस्मिनक्षत्राणामहंशशी ॥ २१ ॥

अन्वयः

आदित्यानां विष्णुः अहं ज्योतिषां अंशुमान् रविः अहं
मरुतां मरीचिः अहं नक्षत्राणां शशी अहं अस्मि ॥ २१ ॥

टीका.

द्वादश सूर्योमे जो श्रेष्ठ विष्णूनामा सूर्य है उस रूपमे हौं,
प्रकाश मानोमे किरणवान रवि याने सूर्यरूपमेहौं, उंचासमरु-
तमे याने उंचासपवनोमे मरीचि पवन रूप मे हौं, नक्षत्रोमे
चंद्रमा रूप मे हौं ॥ २१ ॥

मूलम्.

वेदानां सामवेदोऽस्मि देवानामस्मि वासवः ॥ इंद्रि-
याणां मनश्चास्मि भूतानामस्मि चेतना ॥ २२ ॥

अन्वयः

वेदानां मध्ये सामवेदः अहं अस्मि देवानां वासवः अहं
अस्मि इंद्रियाणां मनः अहं अस्मि भूतानां चेतना अ-
हं अस्मि ॥ २२ ॥

टीका.

वेदोमे सामवेद, देवमे इंद्र, इंद्रियोमे मन, भूत प्राणीमात्र
मे चेतनारूप मे हौं ॥ २२ ॥

मूलम्.

रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसां ॥ वसू-
नां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहं ॥ २३ ॥

अन्वयः

रुद्राणां शंकरः अस्मि च यक्षरक्षसां वित्तेशः वसूनां पाव-

गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका. ११३

कः अहं अस्मि च शिखरिणां मध्ये मेरुः अहं अस्मि ॥ २३ ॥

टीका

एकादश रुद्रोंमें शंकर यक्षराक्षसोंमें कुबेर अष्टवसुनमें अग्नि शिखरवालोंमें मेरुपर्वतरूप मैं हूँ ॥ २३ ॥

मूलम्.

पुरोधसांचमुख्यं मां विद्धि पार्थ वृहस्पतिं ॥ सेना
नीनामहं स्कंदः सरसां अस्मि सागरः ॥ २४ ॥

अन्वयः

हे पार्थ पुरोधसां मुख्यं वृहस्पतिं मां विद्धि च सेनानी
नां स्कंदः अहं सरसां सागरः अहं अस्मि ॥ २४ ॥

टीका.

हे अर्जुन पुरोहितोंमें जो मुख्य पुरोहित वृहस्पति उन
को मेरा श्रेष्ठरूप जानौ सेनापतिनमें कार्तिकस्वामी औ सर
जो स्थिरजलवाले जलाशय हैं उनमें समुद्ररूप मैं हूँ ॥ २४ ॥

मूलम्.

महर्षीणां भृगुरहंगिरामस्म्येकमक्षरं ॥ यज्ञानां
जपयज्ञोस्मि स्थावराणां हिमालयः ॥ २५ ॥

अन्वयः

महर्षीणां भृगुः अहं गिरां एकं अक्षरं अहं यज्ञानां जप
यज्ञः अहं स्थावराणां हिमालयः अहं अस्मि ॥ २५ ॥

टीका.

महर्षिनमें भृगु वाक्योंमें ओंकार यज्ञोंमें जपयज्ञ स्थाव
रोंमें हिमाचल मैं हूँ ॥ २५ ॥

मूलम्.

अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां देवर्षीणां च नारदः ॥ गंधर्वा

णांचित्ररथःसिद्धानांकपिलोमुनिः ॥ २६ ॥

अन्वयः

वर्स वृक्षाणां श्रवत्यः अहं देवर्षीणां नारदः अहं गंध
र्वाणां चित्ररथः अहं सिद्धानां कपिलः मुनिः अहं
अस्मि ॥ २६ ॥

टीका.

सर्व वृक्षोंमें पीपर मैं हूँ देवऋषिमें नारद मैं हूँ गंध-
र्वोंमें चित्ररथ मैं हूँ सिद्धोंमें कपिलमुनि मैं हूँ ॥ २६ ॥

मूलम.

उच्चैःश्रवसमश्वानांविद्धिमाममृतोद्भवं ॥ ऐराव
तंगजेन्द्राणांनराणांचनराधिपं ॥ २७ ॥

अन्वयः

अश्वानां मध्ये अमृतोद्भवं उच्चैःश्रवसं मां विद्धि गजेन्द्रा
णां ऐरावतं मां विद्धि नराणां मध्ये नराधिपं मा विद्धि ॥ २७ ॥

टीका.

घोड़ोंमें जो अमृतमयनसमयमें समुद्रसे उत्पन्न भया है
उच्चैःश्रवा मैं हूँ ऐसे जानौ हस्तिनमें ऐरावत औ नरोंमें
राजाको मेराही श्रेष्ठ अंग जानौ. ॥ २७ ॥

मूलम.

आयुधानामहंवज्रंधेनूनामस्मिकामधुक् ॥ प्रज
नश्चास्मिकंदर्पःसर्पाणामस्मिवासुकिः ॥ २८ ॥

अन्वयः

आयुधानां वज्रं अहं अस्मि धेनूनां कामधुक् अहं अ
स्मि च प्रजनः कंदर्पः अहं अस्मि सर्पाणां वासुकिः
अहं अस्मि ॥ २८ ॥

टीका.

आयुधोंमें वज्र मैं हूँ गाइनमें कामधेनु मैं हूँ उत्पत्तिका कारक काम मैं हूँ अर्थात् मैं जो केवल इंद्रियसुखके वास्ते भोग भोगते हैं वह कामवासना नीच है औ श्रेष्ठ विभूति गनाते हैं इसवास्ते जनन हेतु कामको विभूतीमें कहा सर्पोंमें याने एकशिरवाले सर्पोंमें वासुकी मैं हूँ ॥ २८ ॥

मूलम्.

अनंतश्चास्मिनागानांवरुणोयादसामहं ॥ पितृ
णामर्यमाचास्मियमःसंयमतामहं ॥ २९ ॥

अन्वयः

नागानां अनंतः अहं अस्मियादसां वरुणः अहं अस्मि पि
तृणां अर्यमा अहं अस्मि संयमतां यमः अहं अस्मि ॥ २९ ॥

टीका.

नाग जो अनेकमस्तकवाले सर्प उनमें अनंत याने शेष मैं हूँ जलवासिनमें वरुण मैं हूँ पितृनमें अर्यमा पितृनका राजा सो मैं हूँ दंड देनेवालोंमें यम मैं हूँ ॥ २९ ॥

मूलम्.

प्रल्हादश्चास्मिदैत्यानांकालःकलयतामहं ॥ मृ
गाणांचमृगेंद्रोऽहंवैनतेयश्चपक्षिणां ॥ ३० ॥

अन्वयः

दैत्यानां प्रल्हादः अहं अस्मि कलयतां कालः अहं अ
स्मि च मृगाणां मृगेंद्रः अहं अस्मि पक्षिणां वैनतेयः
अहं अस्मि. ॥ ३० ॥

टीका.

दैत्योंमें प्रल्हाद मैं हूँ अनर्थ प्राप्तकारककी गनती करने

वालौंमे काल मै हौं अथवा वशकरनेवालौंमे काल मै हौं मृ-
गनमे सिंह मै हौं पक्षिनमे गरुड मै हौं ॥ ३० ॥

मूलम्.

पवनःपवतामस्मिरामःशस्त्रभृतामहं ॥ झषाणां
मकरश्चास्मिस्त्रोतसामस्मिजान्हवी ॥ ३१ ॥

अन्वयः

पवतां पवनः अहं अस्मि शस्त्रभृतां रामः अहं अस्मि
झषाणां मकरः अहं अस्मि स्त्रोतसां जान्हवी अहं
अस्मि ॥ ३१ ॥

टीका.

पवित्र करनेवालौंमे अथवा वेगवालौंमे पवन मै हौं शस्त्र
धारिनमे राम मै हौं इहां शस्त्र धारण मात्र विभूति जानना
क्यौंकि आदित्यादिक क्षेत्रज्ञ हौं औ राम स्वयं भगवान हौं म
त्स्यइत्यादिकौंमे मकर मै हौं जलके प्रवाहवालौंमे भागीरथी
गंगाजी मै हौं ॥ ३१ ॥

मूलम्.

सर्गाणामादिरंतश्चमध्यंचैवाहमर्जुन ॥ अध्यात्म
विद्याविद्यानांवादःप्रवदतामहं ॥ ३२ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन सर्गाणां आदिः अंतः च मध्यः अहं एव विद्या
नां मध्ये अध्यात्मविद्या अहं प्रवदतां वादः अहं ॥ ३२ ॥

टीका.

हे अर्जुन सर्व जे उत्पत्ति कारक तिनका आदि याने मृष्टि
करनेवालैरूप मै हौं औ अंत संहार करनेवाले जे हौं वैभी मै हौं
औ मध्य याने पालन करनेवालेभी मै हौं सर्व विद्यानमे अ-

ध्यात्मविद्या याने आत्मज्ञानविद्या मै हौं औ वाद जल्प वि-
तंड इन तीनोंमे वाद मै हौं जहां तर्क औ प्रमाणसे अन्यके प-
क्षको दूषण दैके आपका पक्ष स्थापित करै वह जल्प जहा अ-
न्य पक्षको दूषण देई औ आपकाभी स्थापित न करै वह वितंड
जहां जिज्ञासूपनेसे गुरुशिष्यका वाद होय वह वाद है ॥ ३२ ॥

मूलम.

अक्षराणामकारोऽस्मिद्वंद्वःसामासिकस्यच ॥ अ
हमेवाक्षयःकालोधाताहंविश्वतोमुखः ॥ ३३ ॥

अन्वयः

अक्षराणां प्रकारः अहं अस्मि सामासिकस्य मध्ये
द्वंद्वः अहं अक्षयः कालः अहं विश्वतोमुखः धाता अहं
अस्मि ॥ ३३ ॥

टीका.

अक्षरोंमे प्रकार मै हौं समाससमूहमे द्वंद्वसमास मै हौं औ
कला काष्ठादि रूप अक्षयकाल मै हौं प्रथमजो काल कहा सो
मरण हेतुक जैसे शतसंवत्सर की प्रायः उसको जोगणना करै
उसको कहा इहां अक्षय काल कहते हैं सर्वका धाता याने
स्वप्ना चतुर्मुख ब्रह्मा मै हौं अथवा धारण पोषण करनेकी श-
क्तिरूप मै हौं अथवा कर्म फल विधातृत्व मै हौं ॥ ३३ ॥

मूलम.

मृत्युःसर्वहरश्चाहमुद्भवश्चभविष्यतां ॥ कीर्तिः
श्रीर्वाक्नारीणांस्मृतिर्मेधाधृतिःक्षमा ॥ ३४ ॥

अन्वयः

सर्वहरः मृत्युः अहं अस्मि च भविष्यतां उद्भवः अहं अ-
स्मि नारीणां कीर्तिः च श्रीः च वाक् स्मृतिः मेधा धृतिः

क्षमा एताः अहं अस्मि ॥ ३४ ॥

टीका.

सर्वस्व हरणेवालोमे मृत्यु मै हौं जो आपके श्रेष्ठत्वकी इच्छा करनेवाले हैं याने अगाडी भला होयगा ऐसा चाहते हैं उनमे उद्भव मै हौं औ स्त्रियौमे कीर्ति श्रीवाक् स्मृति मेधा धृति क्षम यै सात देवता हैं जिनके भासमात्रसे मनुष्य श्लाघाको प्राप्त होता है सो इनरूपभी मै हौं याने ये मेरी श्रेष्ठ विभूति हैं ॥ ३४ ॥

मूलम्.

बृहत्सामतथासाम्नां गायत्री छंदसामहं ॥ मासानां मार्गशीर्षोऽहमृतूनां कुसुमाकरः ॥ ३५ ॥

अन्वयः

साम्नां बृहत्साम अहं छंदसां गायत्री अहं मासानां मार्गशीर्षः अहं ऋतूनां कुसुमाकरः अहं अस्मि ॥ ३५ ॥

टीका.

सामवेदकी ऋचौमे बृहत्साम मै हौं छंदोबद्ध वाक्यौमे गायत्री मंत्र मै हौं अथवा उक्तादिक छंदौमे गायत्री छंद मै हौं महीनौमे मार्गशीर्ष मै हौं ऋतुनमे वसंत मै हौं ॥ ३५ ॥

मूलम्.

द्यूतं छलयतामस्मितेजस्तेजस्विनामहं ॥ जयोऽस्मि व्यवसायोस्मि सत्त्वं सत्त्ववतामहं ॥ ३६ ॥

अन्वयः

छलयतां द्यूतं अहमस्मि तेजस्विनां तेजः अहमस्मि जेत्वां जयः अहं व्यवसायिनां व्यवसायः अहं सत्त्ववतां सत्त्वं अहं ॥ ३६ ॥

टीका.

छल करनेवालेमे जो पांशूसे जुवा खेलते है याने चौपड सो मै हौं तेजस्विनमे तेज मै हौं जीतनवालोंमे जय मै हौं व्यवसाय जो निश्चय सो निश्चयवालोंमे निश्चय मै हौं सत्वजो मनका बडापन सो सत्ववालोंमे सत्व याने महा-मनस्त्व अर्थात् मनकी उदारता मै हौं ॥ ३६ ॥

मूलम्.

वृष्णीनांवासुदेवोऽस्मिपांडवानांधनंजयः ॥ मु
नीनामप्यहंव्यासः कवीनामुशना कविः ॥ ३७ ॥

अन्वयः

वृष्णीनां वासुदेवः अहं अस्मि पांडवानां धनंजयः अहं
अस्मि मुनीनां व्यासः अहं अस्मि कवीनां उशना
कविः अहं अस्मि ॥ ३७ ॥

टीका.

वृष्णीयादवनमे वासुदेव मै हौं इहां वसुदेवपुत्रत्वमात्रविभू
ति जानना पांडवनमे धनंजय याने तुमभी मेरी श्रेष्ठ विभूतिमे
हौ मुनीजो मननकरिके तत्वको देखें उनमे वेदव्यास मै हौं
कवी जेशास्त्रदर्शी अथवा ज्ञानी उनमे शुक्राचार्य मै हौं ॥ ३७ ॥

मूलम्.

दंडोदमयतामस्मिनीतिरस्मिजिगीपतां ॥ मौ
नंचैवास्मिगुह्यानांज्ञानंज्ञानवतामहं ॥ ३८ ॥

अन्वयः

दमयतां दंडः अहमस्मि जिगीपतां नीतिः अहं अस्मि गु-
ह्यानां मौने अहं अस्मि ज्ञानवतां ज्ञानं अहं अस्मि ॥ ३८ ॥

टीका.

नियम उल्लंघन करनेवालोंको दंडदेनेवालोंमें दंड मैं हूँ जो जीतनेकी इच्छा करते हैं उनमें जयका उपायरूप नीति मैं हूँ गुप्तकरनेके कारनाममें मौन मैं हूँ क्योंकि जो बोलतानही उसका अभिप्राय जाननेमें आता नहीं ज्ञानवानोंमें ज्ञान मैं हूँ ॥ ३८ ॥

मूलम्.

यच्चापिसर्वभूतानां वीजं तदहमर्जुन ॥ न तदस्ति
विनायत्स्यान्मया भूतं चराचरं ॥ ३९ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन यत् च सर्वभूतानां वीजं तत् अपि अहं अस्मि
यत् चराचरं भूतं मया विना स्यात् तत् न अस्ति ॥ ३९ ॥

टीका.

हे अर्जुन जो सर्वभूतप्राणिमात्रका कारण है सो मैं हूँ औ जो चराचरभूत मेरेविना होय सो नहीं है ऐसा जानौ क्योंकि सर्व का अंतर्गामी मैं हूँ इस श्लोकमें जो मैं करिके आपहीको देखायाथा सो स्पष्ट किया कि अंतर्गामीरूप मैं हूँ ॥ ३९ ॥

मूलम्.

नांतोऽस्ति मम दिव्यानां विभूतीनां परंतप ॥ एष
तूद्देशतः प्रोक्तो विभूतेर्विस्तरो मया ॥ ४० ॥

अन्वयः

हे परंतप मम दिव्यानां विभूतीनां अंतः न अस्ति तु
एषः विभूतेः विस्तरः मया उद्देशतः प्रोक्तः ॥ ४० ॥

टीका.

हे परंतप मेरी दिव्यविभूतियोंका अंत नहीं है क्योंकि यह विभूतिविस्तार मैंने संक्षेपसे कहा है ॥ ४० ॥

मूलम.

यद्यद्विभूतिमत्सवं श्रीमदूर्जितमेववा ॥ तत्तदे
वाऽवगच्छत्वं ममतेजोऽंशसंभवं ॥ ४१ ॥

अन्वयः

यत् यत् सत्त्वं विभूतिमत् यन् श्रीमत् वा यत् ऊर्जितं ,
एव तत् तत् ममतेजोऽंशसंभवं इति त्वं अवगच्छ ॥ ४१ ॥

टीका.

जो जो ऐश्वर्यवान् पदार्थमात्र याने स्थावर किंवा जंगम
जो ऐश्वर्यमान् हैं वै औ जो श्रीमान् याने शोभायमान अथवा
कांतिमान् अथवा धनधानवान् हैं वै औ ऊर्जित याने कल्याण
के आरंभमे उद्युक्त अथवा कोईभी प्रभावबलादिक गुण करिके
बढाहुआं सो ऐसा जो कुछभी स्थावर जंगम है सो मेरे तेजके
अंश करिके है ऐसा तुम जानौ तेज याने पराभव करनेकी साम
र्थ्य अर्थात् शक्तिसो मेरी अचिंत्य शक्तिके अंशकरिके उत्पन्न
है ऐसा जानौ औरभी खुलासा अर्थ यह है कि विभूतिकहते
है ऐश्वर्यको सो मेरे ऐश्वर्ययुक्त जानौ ॥ ४१ ॥

मूलम.

अथवा बहुनेतेन किं ज्ञानेन तर्वाजुन ॥ विष्टभ्या
ऽहमिदं कृत्स्नमेकांशेन स्थितो जगत् ॥ ४२ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन अथवा एतेन बहुना ज्ञानेन तव किं नाकिमपि
अहं इदं कृत्स्नं जगत् एकांशेन विष्टभ्य स्थितः अस्मि ॥ ४२

टीका.

हे अर्जुन अथवा इस बहुत जाननेसे तुझाराक्या प्रयोजनह
मै इस जडचैतनरूप सर्व जगतको आपकी महिमाके एक अंश-

स्तंभन करिके स्थितहौं इहां श्रुतिप्रमाणहै ॥ पुरुषएवेदमित्यार
 भ्यएतावानस्यमहिमाऽतो ज्यायाश्च पुरुषाः ॥ पादोऽस्य विश्वाभू
 तानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ इदं सर्वं पुरुषः एवं इति एतावान् अ
 स्य पुरुषस्य महिमा अस्य महिन्नः पादः विश्वाभूतानि च दिवि
 अस्मिन् त्रिपात् अतएव अमृतं अतश्च अतः अपि पुरुषाः ज्याया
 न् ॥ अर्थ यह सर्व जगत् पुरुषात्मकही है ऐसा इतना बडा इस
 पुरुषका महिमाहै इसी महिमाका एक अंशसंबंधीयै सर्व भूत प्रा
 णीमात्रहैं औ दिवि वैकुण्ठमे याने प्रकृतिसे परे विष्णुलोकमे इस
 महिमाके तीन अंश हैं इसवास्ते वह लोक मृत्युरहित है औ पु
 रुष तौ इस महिमासे भी श्रेष्ठ है अर्थात् जिसके प्रभावसे यह स-
 र्व प्रकाशि नहै तौ वह तौ बडा होइहीया ॥ ४२ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
 योगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादे विभूतियोगोना
 मदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां श्री
 मद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १०

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ मदनुग्रहाय परमं गुह्यमध्यात्मसं
 जितं ॥ यत्त्वयोक्तं वचस्तेन मोहोऽयं विगतो मम ॥ १ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे भगवन् मदनुग्रहाय यत् परमं गुह्यं अध्या
 त्मसंज्ञितं वचः त्वया उक्तं तेन अयं मम मोहः विगतः ॥ १ ॥

टीका.

पूर्वके अध्यायोंमे भक्तियोगकी उत्पत्ति औ वृद्धिके वास्ते भ-

गवानने जो आपका स्वरूप वैभव वर्णन किया सो अर्जुनने सुना तहां यह कहाथा कि, सर्वभूतमात्र मेरेमे हैं औ मही उनके उत्पत्ति रक्षा औ प्रलयका करनेवाला हौं औ वै मेरे स्वाधीन हैं नही मयिसर्वमिदंप्रोतं सूत्रेमणिगणाइव अहंसर्वस्यप्रभवोमः तः सर्वं प्रवर्त्तते इत्यादिक काक्यों करिके जो भगवानका स्वरूप सुना सो देखनेकी इच्छा करिके अर्जुन बोले हे भगवान् मेरे अनुग्रहके वास्ते याने मेरेपर कृपा करनेके वास्ते जो अतिगोप्य आत्मज्ञान विषयिक वचन आपने कहा उसकरिके यह देहात्मज्ञानरूप मेरा मोह गया ॥ १ ॥

मूलम.

भवाप्ययौहिभूतानांश्रुतौविस्तरशोमया ॥ त्वत्तःकमलपत्राक्षमाहात्म्यमपिचाव्ययं ॥ २ ॥

अन्वयः

हेकमलपत्राक्ष भूतानां भवाप्ययौ त्वत्तः सकाशात् भवतः इति मया विस्तरशः श्रुतौ च अव्ययं तव माहात्म्यं अपि श्रुतं ॥ २ ॥

टीका.

हेकमलदलनयन भूत प्राणियोंकी उत्पत्ती औ प्रलय तुम्हारे हिसे होतीहै औसा मैने विस्तारपूर्वक वारंवार सुनाहै आपही ने कहाकि अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा इत्यादिकरिके औ अक्षय माहात्म्यभी सुना अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं मन्यं ते मामबुद्धयः॥मयाततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना॥नचमांतानि कर्माणि निब्रूयन्ति धनंजय ॥समोहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः॥इत्यादि वाक्योंकरिके विश्वकी सृष्टि करतेभी अतिकारिपना सर्वको तियममे चलाते भये विषमतारहित शुभाशुभ

कर्म करावतेभी असंगताबंध मोक्षादि विचित्र फलदंतेभी श्री
दासीन्य ऐसा माहात्म्य सुना ॥ २ ॥

मूलम्.

एवमेतद्यथात्थत्त्वमात्मानं परमेश्वर ॥ द्रष्टुमि
च्छामितेरूपमेश्वरं पुरुषोत्तम ॥ ३ ॥

अन्वयः

हेपरमेश्वर त्वं यथा आत्मानं आत्थ एवं एतत् हेपुरुषोत्त
म ते ऐश्वरं रूपं द्रष्टुं इच्छामि ॥ ३ ॥

टीका.

हेपरमेश्वर तुम जैसा आपका स्वरूप कहते हो सो ऐसाही
यह है इसमें संशय नहीं तथापि हेपुरुषोत्तम तुम्हारा ऐश्वररूप
याने ज्ञान शक्ति बल ऐश्वर्य वीर्य तेज इन पडैश्वर्यकारिके
युक्त जो तुम्हारा रूप है उसको मैं देखाचाहताहों ॥ ३ ॥

मूलम्.

मन्यसे यदि तच्छक्यं मया द्रष्टुमिति प्रभो ॥ यो
गेश्वर ततो मे त्वं दर्शयात्मानमव्ययं ॥ ४ ॥

अन्वयः

हेप्रभो यदि तत् रूपं मया द्रष्टुं शक्यं इति मन्यसे ततः
हे योगेश्वर त्वं मे अव्ययं आत्मानं दर्शय ॥ ४ ॥

टीका.

हेप्रभो जोवह रूप मेरे करिके देखने योग्य है याने मैं उस
रूपको देखि सकूँगा त्रैसा आप मानते होय तो हेयोगेश्वर
आपका अक्षयरूप मेरेको देखावौ ॥ ४ ॥

मूलम्.

॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ पश्य मे पार्थरूपाणि

शतशोऽथसहस्रशः ॥ नानाविधानिदिव्यानिना
नावर्णाकृतीनिच ॥ ५ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हेपार्थ शतशःअथ सहस्रशःनानावि
धानि दिव्यानिच नानावर्णाकृतीनि मे रूपाणि पश्य ॥ ५ ॥

टीका.

जब अर्जुनने अंतिकौतूहलयुक्त गद्गद कंठसे प्रार्थना की तब
सुनिके अर्जुनको सावधान करते भये बोले हेपृथापुत्रसैकडोंऔ
हजारों प्रकारके तैसेही अनेक प्रकारके अप्राकृत औ अनेक
प्रकारके वर्णोंकरिके युक्त आकार औसा मेरारूपदेखौ ॥ ५ ॥

मूलम्

पश्यादित्यान्वसून् रुद्रानश्विनौमरुतस्तथा ॥
बहून्यदृष्टपूर्वाणिपश्याश्चर्याणिभारत ॥ ६ ॥
इहैकस्थंजगत्कृत्स्नंपश्याद्यसचराचरम् ॥ मम
देहेगुडाकेशयच्चान्यद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ ७ ॥

अन्वयः

हेभारत ममदेहेआदित्यान्वसून् रुद्रान् अश्विनौमरुतः
पश्य तथा अदृष्टपूर्वाणिवहूनि आश्चर्याणि पश्य ॥ ६ ॥ हे
गुडाकेशइह मम देहे सचराचरं कृत्स्नं जगत् एकस्थं अद्य
पश्य च यत् अन्वत् अपि द्रष्टुं इच्छसि तत् अपि पश्य ॥ ७ ॥

टीका.

हे भारत मेरे देहमे द्वादश आदित्य आठ वसू एकादश रुद्र
अश्विनीकुमार उनंचासपवन देखौ तैसेही जो तुमने अथवा तु
सरेनभी पूर्वकालमे कभी न देखे होय वैभी आश्चर्य देखौ ॥ ६ ॥

हे निद्राजीत इसमेरे देहमे चर औ अचर याने स्थावर जंगमस
हितसर्व जगत् एकही जगह स्थित आज देखौ औ जो औरभी
देखा चाहते हाउ वहभी देखौ ॥ ७ ॥

मूलम्.

नतुमांशक्यसेद्रष्टुमनेनैवस्वचक्षुषा ॥ दिव्यंददा
मितचक्षुःपश्यमेयोगमैश्वरम् ॥ ८ ॥

अन्वयः

अनेन एव चक्षुषा मां दृष्टं न शक्यसे तु ते दिव्यं चक्षुः
ददामि तेन मे ऐश्वरंयोगंपश्य ॥ ८ ॥

टीका.

मै तुह्यारेको मेरी देहमै एकही जगह सर्व जगत् देखावै
सो तुम इन अपने चर्मचक्षुनसेदेखि नसकौगे याने ये नेत्रपरि
मित वस्तुके देखनेवाले है औ यह रूप अपारिमित है इसवा-
स्ते तुमको दिव्यनेत्र मे देऊंगा तुम मेरा ऐश्वरयोग याने अ-
नंत विभूति योग देखौ ॥ ८ ॥

मूलम्.

॥ ॥ संजय उवाच ॥ ॥ एवमुक्त्वा ततो राजन्म
हायोगेश्वरो हरिः ॥ दर्शयामास पार्थाय परमं रू
पमैश्वरम् ॥ ९ ॥

अन्वयः

संजयः उवाच हेराजन् महायोगेश्वरः हरिः एवं उक्त्वा
ततः परमं ऐश्वरं रूपं पार्थाय दर्शयामास ॥ ९ ॥

टीका.

संजय घृतरासूसे कहते भये हेराजन् महा योगेश्वर भगवान्
ऐसे कहिके याने मेरा स्वरूप देखौ ऐसा करिके फिरि आपका

विश्वरूपं अर्जुनको देखाते भये ॥ ९ ॥

मूलम्.

अनेकवक्त्रनयनमनेकाद्भुतदर्शनम् ॥ अनेकदि
व्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधं ॥ १० ॥ दिव्यमा
ल्यांबरधरं दिव्यगंधानुलेपनं ॥ सर्वाश्चर्यमयं देव
मनंतं विश्वतोमुखं ॥ ११ ॥

अन्वयः

कीदृशं तत् रूपं तत् आह अनेकवक्त्रनयनं अनेकाद्भुत
दर्शनं अनेकदिव्याभरणं दिव्यानेकोद्यतायुधं ॥ १० ॥
दिव्यमाल्यांबरधरं दिव्यगंधानुलेपनं सर्वाश्चर्यमयं देवं अ
नंतं विश्वतोमुखं ॥ ११ ॥

टीका.

जो रूप देखाया है उसका वर्णन करते हैं कैसा वह रूप है सो
कहते हैं अनेक हैं मुख और नेत्र जिसमें और अनेक अद्भुत हैं दर्शन
जिसमें और अनेक दिव्य हैं आभूषण जिसमें और अनेक दिव्य
आयुध उठाये भये याने ऊंचे किये हाथोंमें लिये भये हैं जिसमें
॥ १० ॥ दिव्यमाला और कल धारण किये है और दिव्यचंदनकाले
पन किये है और सर्व आश्चर्यमय देदीप्यमान हैं और जिसका अंत
नहीं और सर्वतरफको है मुख जिसमें ऐसा रूप देखाते भये ॥ ११ ॥

मूलम्.

दिविसूर्यसहस्रस्य भवेद्युगपदुत्थिता ॥ यदिभाः
सदृशीसास्याद्भासस्तस्यमहात्मनः ॥ १२ ॥

अन्वयः

यदिभाः सदृशीसास्याद्भासस्तस्यमहात्मनः भवेद्युगपदुत्थिता भाः भवेत् सा

भाः यस्य महात्मनः भासः सदृशी स्यात् एवं भूतं रूपं दर्शयामास इति पूर्वेणान्वयः ॥ १२ ॥

टीका.

पूर्वश्लोकमे देव याने देदीप्यमान कहा उसीको विशेषकरिके कहते हैं जो आकाशमे हजार सूर्य एकसंग उदय होय और उनका तेज एक भारगी प्रकाश होय सो प्रकाश कदापि उन विश्वरूपके प्रकाशतुल्य होय और उपमा नहीं है अर्थात् अपम है ऐसा रूप अर्जुनको देखांते भये. ॥ १२ ॥

मूलम्.

तत्रैकस्थं जगत्कृत्स्नं प्रविभक्तमनेकधा ॥ अपश्य
देवदेवस्य शरीरे पांडवस्तदा ॥ १३ ॥

अन्वयः

तदा तत्र देवदेवस्य शरीर अनेकधा प्रविभक्तं कृत्स्नं जगत् एकस्थं पांडवैः अपश्यत् ॥ १३ ॥

टीका.

तब वहा देदीप्यमानौमे देदीप्यमान जो भगवान उनके शरीरमे अनेक प्रकारका विभक्त अर्थात् ब्रह्मादि विविध विचिः देव पशु मनुष्य स्थावर इन आदिक भोक्तोंका समूह और पृथ्व अंतरिक्ष स्वर्ग पाताल इत्यादि भोगस्थान और भोग्यभोगोपकरणके भेदों करिके अनेक प्रकारका विभाग किया भया प्रकृति रूपयुक्त समस्त जगत् एक स्थानमे अर्जुन देखते भये ॥ १३ ॥

मूलम्.

ततः सविस्मया विष्टो हृष्टरोमा धनंजयः ॥ प्रणम्य
शिवसादेवं कंतांजलिरभाषत ॥ १४ ॥

अन्वयः

ततः त्वंस्मयाविष्टः हृष्टरोमः सः धनंजयः शिरसादेवं
प्रणम्य कृताजलिःसन् अभाषत ॥ १४ ॥

टीका.

जब अर्जुनने ऐसा आश्चर्यमय रूप देखा तब विस्मयकरि-
कै व्यास औ रोमांचयुक्त अर्जुन मस्तक नवाइके नमस्कार क-
रिके हाथ जोडिके भगवान्से बोलते भये. ॥ १४ ॥

मूलम्.

॥ ॥ अर्जुन उवाच ॥ ॥ पश्यामि देवांस्तव देव
देहे सर्वास्तथाभूतविशेषसंधान् ॥ ब्रह्माणमीशं
कमलासनस्थमृषींश्च सर्वानुरगांश्च दिव्यान् ॥ १५ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे देव तव देहे देवान् तथा सर्वान् भूतविशे-
षसंधान् ब्रह्माणं च कमलासनस्थं ईशं यद्वा एतेषा ई-
शंकमलासनस्थं ब्रह्माणं च सर्वान् ऋषीन् च दिव्या-
न् उरगान् पश्यामि ॥ १५ ॥

टीका.

अर्जुन जो बोले सो कहते हैं, हे देव! तुम्हारे देहमे सर्व देव त-
था सर्व भूत प्राणीमात्रके समूह औ ब्रह्मा औ कमलासन जो ब्र-
ह्मातिनमें स्थित ईश्वर अथवा इन देवादिकोंके ईश्वर जो ब्रह्मा
उनको तुम्हारे नाभिकमलमे स्थित देखताहौ, औ सर्व ऋषी औ
दैदीप्यमान सर्व सर्प इन्नोंको आपके देहमे देखताहौ. ॥ १५ ॥

मूलम्.

अनेकवाहूदरवक्रनेत्रं पश्यामि त्वां सर्वतोऽनंतरू-
पं ॥ नांतं न मध्यं न पुनस्तवादिं पश्यामि विश्वेश्वर

विश्वरूप ॥ १६ ॥

अन्वयः

हे विश्वेश्वर हे विश्वरूप अनेकवाहूदरवक्रनेत्रं अनंतरूपं त्वां सर्वतः पश्यामि तव अंतं न पश्यामि मध्यं च न पश्यामि पुनः तव आदिं न पश्यामि ॥ १६ ॥

टीका.

हे विश्वकेईश्वर हे विश्वरूप! अनेकहैं भुजा, उदर, मुख औ नेत्र जिसमे औ अनंतहैं रूप जिनके ऐसे तुमको मै देखताहैं औ तुझारा अंत नहीं देखता हों, मध्यभी नहीं देखता हों औ आदिभी नहीं देखता हों. ॥ १६ ॥

मूलम्.

किरीटिनंगदिनंचक्रिणंचतेजोराशिंसर्वतोदीप्ति
मंतं ॥ पश्यामित्वांदुर्निरीक्ष्यंसमंताद्दीप्ताऽनलार्क
द्युतिमप्रमेयं ॥ १७ ॥

अन्वयः

हेदेवदेव त्वां किरीटिनं गदिनं चक्रिणं पश्यामि च ते-
जोराशिं सर्वतः दीप्तिमंतं च दीप्तानलार्कद्युतिं अतएव
अप्रमेयं च समंतात् दुर्निरीक्ष्यं पश्यामि ॥ १७ ॥

टीका.

हेदेवदेव! तुमका किरीट, गदा औ चक्र धारण किये हुयेको देखता हों औ तेजकी राशि चारौ औरसे प्रकाशवान् औ प्रदीपअग्नि तथा सूर्यकी कांतिकी सदृश आपकी कांति इसी वास्ते अप्रमेय याने जो प्रमाण करनेमे न आवै औ चौतरफ-

त्वमक्षरंपरमं वेदितव्यं त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम् ॥ त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता सनातनत्वं पुरुषो मतो मे ॥ १८ ॥

अन्वयः

हे प्रभो वेदितव्यं परमं अक्षरं त्वं अस्य विश्वस्य परं, निधानं त्वं अव्ययः त्वं शाश्वतधर्मगोप्ता त्वं अतएव सनातनः पुरुषः त्वं इति मे मतः ॥ १८ ॥

टीका.

हे प्रभो! मुमुक्षुन करिके जानने योग्य परम अक्षर आप ही इस जगतका परम आधार आप ही नाशरहित आप ही, नित्यधर्मके रक्षक आप ही, इसीसे सनातन पुरुष आप ही, ऐसा मैंने जाना है. ॥ १८ ॥

मूलम्.

अनादिमध्यांतमनंतवीर्यमनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रं ॥ पश्यामि त्वां दीप्तहुताशवत्क्रं स्वतेजसा विश्वमिदं तपंतं ॥ १९ ॥

अन्वयः

अनादिमध्यांतं अनंतवीर्यं अनंतबाहुं शशिसूर्यनेत्रं दीप्तहुताशवत्क्रं स्वतेजसा इदं विश्वं तपंतं एवंभूतं त्वां पश्यामि ॥ १९ ॥

टीका.

नहि हैं आदि मध्य औ अंत जिनका औ अनंत है पराक्रम जिनका औ अनंत है भुजा जिनके औ चंद्र तथा सूर्य हैं नेत्रों में जिनके, प्रदीप्त अग्नि सदृश हैं मुख जिनके औ आपके तेज करिके इस विश्वको तपायमान करि रहे हैं ऐसे आपको मैं देखता हूँ ॥ १९ ॥

मूलम्.

द्यावापृथिव्योरिदमंतरंहिव्याप्तंत्वयैकेनदिशश्च
सर्वाः ॥ दृष्ट्वाद्भुतरूपमुग्रंतवंदंलोकत्रयंप्रव्य
थितंमहात्मन् ॥ २० ॥

, अन्वयः

हेमहात्मन् यत् यत् द्यावापृथिव्योः अंतरं तत् त्वया एकेन
व्याप्तं च सर्वाः दिशः त्वया एकेन व्याप्ताः एवं इदं तव
अद्भुतं उग्रं रूपं दृष्ट्वा लोकत्रयं प्रव्यथितं पश्यामि इति
पूर्वेणान्वयः ॥ २० ॥

टीका.

हे महात्मन् याने महान् है देह जिनका जैसे हे भगवान्! जो
यह ब्रह्मांडका गोल है सो सर्व आपके शरीरकरिके व्याप्त है
श्री संपूर्ण दिशाभि व्याप्त हैं अर्थात् आपकी उंचाई श्री चौ-
डाई करिके यह विश्व परिपूरित है ऐसा यह आपका अद्भुत
श्री उग्ररूप देखिके तीनों लोकवासी सर्व सुरासुर, मनुष्य, पशु
पक्षी इत्याहिक व्यथाको प्राप्त भये हैं ऐसा मैं देखता हौं ॥ २० ॥

मूलम्.

अमीहित्वांसुरसंघाविशंतिकेचिद्धीताः प्रांज
लयोगृगंति ॥ स्वस्तीत्युत्कामहर्षिसिद्धसंघाः
स्तुवंतित्वांस्तुतिभिः पुष्कलाभिः ॥ ११ ॥

अन्वयः

हि अमी सुरसंघाः त्वां विशंतिकेचित् भीताः प्रांजलयः
संतः तव गुणनामानि गृणंति महर्षिसिद्धसंघाः स्वस्ति
इति उत्का पुष्कलाभिः स्तुतिभिः स्तुवंति ॥ ११ ॥

टीका.

तीनों लोकके वासिनको व्यथित देखिके ये महर्लोंकादि-
कौंके वासी देवसमूह आपके अतिअद्भुत विश्वाश्रयरूपको दे-
खिके अतिआनंदसे आपके समीप प्राप्त होते हैं, औ उन्हीमेसे
केतनेक भयभीत भयेहुये हाथ जोडिके हेशरण्यपाल दीनबंधो
दयासिंधो इत्यादिक आपके गुणनाम उच्चारणरूप स्तुति कर-
ते है. श्री महर्षी तथा सिद्धोंके समूह अनेक प्रकारकी स्तुतिनक-
रिके आपका स्तवन करते हैं. ॥ २१ ॥

मूलम्.

रुद्रादित्यावसवोयेचसाध्याविश्वेऽश्विनौमरुत
श्रोष्मपाश्च ॥ गंधर्वयक्षाऽसुरसिद्धसंघावाक्ष्यं
तेत्वांविस्मिताश्चैवसर्वे ॥ २२ ॥

अन्वयः

रुद्रादित्याः वसवः च ये साध्याः विश्वे अश्विनौ मरुतः
च उष्मपाः च गंधर्वयक्षाऽसुरसिद्धसंघाः एते सर्वे विस्मि-
ताः संतः त्वा त्वां वीक्ष्यंते ॥ २२ ॥

टीका.

एकादशरुद्र १२ सूर्यऽवसु औ जो साध्यनामके देवता हैं,
वै श्री १३ विश्वेदेव २ अश्विनीकुमार ४१ वायु औ उष्मप याने
पितर, गंधर्व, हाहा हूहू इत्यादिक यक्ष कुबेरादिक, असुर विरांच
नादिक, सिद्ध कपिलादिक, सिद्धोंके समूह ये सर्व विस्मयको
प्राप्त भये हुये तुमको देखते हैं. ॥ २२ ॥

मूलम्

रूपंमहत्तेवहुवक्रनेत्रंमहावाहोवहुवाहूरूपादं ॥

बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथितास्तथाहं ॥ २३ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो बहुवक्रनेत्रं बहवाहूरूपादं बहूदरं बहुदंष्ट्राकरालं एवंभूतं ते महत् रूपं दृष्ट्वा लोकाः प्रव्यथिताः तथाऽग्रहं प्रव्यथितः अस्मि ॥ २३ ॥

टीका.

हे महाबाहो बहुत हैं मुख औ नेत्र जिसमे श्री बहुत हैं भुजाजघि औ पाय जिसमे श्री बहुत हैं उदर जिसमे श्री बहुत दाढों करिके विकराल अता जो तुम्हारा रूप उसको देखिके सर्वलोक श्री मैभी व्यथित भया हौं. ॥ २३ ॥

मूलम.

नभःस्पृशं दीप्तमनेकवर्णं व्यात्ताननं दीप्तविशालनेत्रं ॥ दृष्ट्वा हि त्वां प्रव्यथितांतरात्मा धृतिं न विंदा मिशमंचविष्णो ॥ २४ ॥ दंष्ट्राकरालानि च ते मुखानि दृष्ट्वैव कालानलसन्निभानि ॥ दिशोनजाने नलभे च शर्म प्रसीद देवेश जगन्निवास ॥ २५ ॥ अमीचत्वांधृतराष्ट्रस्य पुत्राः सर्वे सहेवाऽवनिपालसंधैः ॥ भीष्मोद्रोणः सूतपुत्रस्तथाऽसौ सहाऽस्मदीयैरपि योधमुख्यैः ॥ २६ ॥ वक्त्राणिते त्वरमृणा विशंति दंष्ट्राकरालानि भयानकानि ॥ केचिद्विलग्नादशनांतरे पुंसं दृश्यंते चूर्णितैरुत्तमांगैः ॥ २७ ॥

अन्वयः

हे विष्णो नभःस्पृशं दीप्तं अनेकवर्णी व्यात्ताननं दीप्तवि-
शालनेत्रं एवंभूतं त्वां दृष्ट्वा हियस्मात् प्रव्यथितांतरा-
त्मा अहं धृतिं च शमं न विंदामि च दंष्ट्राकरालानि
कालानलसन्निभानि ते मुखानि एव दृष्ट्वा दिशः न जा-
ने च शर्म न लभे च एवं अमी सर्वे धृतराष्ट्रस्य पुत्राः अव-
निपालसुधैः सह तथा भीष्मः द्रोणः अशौ सूतपुत्रः अ-
स्मदीयैः योधमुरव्यैः अपि सह त्वां दृष्ट्वा दिशः न जानं-
ति च शर्म न लभन्ते किंतु त्वरमाणाः संतः दंष्ट्राकराला-
नि भयानकानि ते वक्राणि विशन्ति केचित् दशनांतरेषु
विलग्नाः संतः चूर्णितैः उत्तमागैः संदृश्यन्ते तस्मात् हे देवे-
श हे जगन्निवास त्वं प्रसीद ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

टीका.

हे विष्णो याने हे सर्वव्यापिन! नभ जो परम आकाश या-
ने प्रकृतिसे पर आकाश उसमे है स्पर्श जिनका याने आपका
यह शरीर प्रकृतिसे परे वैकुण्ठ पर्यंत देखता है औ प्रकाशमान
अनेक वर्ण हैं जिनमे औ अति फैले हैं मुख जिनके औ प्रकाश
मान बडे बडे हैं नेत्र जिनके ऐसे तुमको देखिके मेरा मन व्यथित
भया है इसीवास्ते मेरेको धीरज नहीं रहता है औ सुखभी नहीं
पावता हौं औ बडी बडी दाढी करिके विकराल औ कालानल
जो प्रलयकालका अग्नि उस अग्निके समान देदीप्यमान ऐसे
तुम्हारे मुखोंको देखिके मै दिशोंकोभी नहीं जानता हौं याने कि-
धर पूरव औ किधर पश्चिम इत्यादिभी ज्ञान नहीं रहा है, औ
सुख नहीं पावता हौं औ ये सर्व धृतराष्ट्रके पुत्र औरभी राजा
करिके सहित तथा भीष्म औ द्रोणाचार्य औ यह कर्ण ये सर्व

राजौंकरिके सहित वैसेही आपको देखिके धीरज नहीं धरते हैं औ मुखभी नहीं पाते हैं औ इनको दिशाभ्रम भया है, इसवास्ते ये सुखभी पाते नहीं क्योंकि, बडेवेगसहित विकराल है इस दाढ़ें जिसमे ऐसे भयानक तुल्लारे मुखौंमे प्रवेश करते जाते हैं, याने दिशौंको भूलेहुये भागते भागते आपके मुखौंमे प्रवेश करते हैं- तहांभी केतनेक दांतौंके बीच बीचमे चूर्णित मस्तकौं सहित दीखते हैं याने उनके मस्तक चूर चूर भये हैं औ वै आपके दांतौंके बीच बीचमे लगे दीखते है, इसवास्ते आपको हम डरते हैं इसी वास्ते हे देवनकेभी परमेश्वर हे जगन्निवास! आप प्रसन्न होउ याने सौम्यरूप धारण करौ. ॥ २४ ॥ २५ ॥ २६ ॥ २७ ॥

मूलम्.

यथानदीनां वहवांबुवेगाः समुद्रमेवाऽभिमुखाद्
वन्ति ॥ तथातदामीनरलोकवीराविशंतिवत्क्रा
प्यभितोज्वलन्ति ॥ २८ ॥

अन्वयः

यथा नदीनां वहवः अंबुवेगाः समुद्रं एव अभिमुखाः
द्रवन्ति तथा अमी नरलोकवीराः अभितः ज्वलन्ति त-
व वक्राणि विशन्ति ॥ २८ ॥

टीका.

जैसे नदियोंके पानिके अनेक वेग समुद्रहीके संमुख जाते हैं, तैसेही ये नरलोक वीर सर्व औरसे प्रकाशमान ऐसे तुल्लारे मुखौंमे प्रवेश करते हैं. ॥ २८ ॥

मूलम्.

यथाप्रदीप्तं ज्वलनं पतंगाविशंतिनाशाय समृद्ध

वेगाः ॥ तथैवनाशायविशंतिलोकास्तवापिव
त्क्राणिसमृद्धवेगाः ॥ २९ ॥

अन्वयः

यथा समृद्धवेगाः पतंगाः नाशाय प्रदीप्तं ज्वलनं विशं-
ति तथा एव समृद्धवेगाः लोकाः अपि नाशाय तव
वत्क्राणि विशंति ॥ २९ ॥

टीका.

जैसे बड़े वेगयुक्त पतंगा अपने नाशके वास्ते प्रज्वलित
अग्निमें प्रवेश करते हैं, तैसेही बड़ेवेगयुक्त ये लोकभी अपने
नाशके वास्ते आपके मुखोंमें प्रवेश करते हैं. ॥ २९ ॥

मूलम्.

लेलिह्यसेग्रसमानःसमंताल्लोकान्समग्रान्वदनै
र्ज्वलद्भिः ॥ तेजोभिरापूर्यजगत्समग्रंभासस्तवो
ग्राःप्रतपंतिविष्णो ॥ ३० ॥

अन्वयः

हेविष्णो ज्वलद्भिः वदनैः समग्रान् लोकान् ग्रसमानः
सन् ओष्ठपुटादिकं समंतात् लेलिह्यसे तव उग्राः भासः
तेजोभिः समग्रं जगत् आपूर्य प्रतपंति ॥ ३० ॥

टीका.

हेजगद्व्यापिन्! प्रकाशमान जो आपके मुख उनोंकरिके
सर्व लोकोंको भक्षण करते करते औंठ गल फरादिक चौतर-
फसे वारंवार चाटते हो औ आपके प्रकाशहि अपने तेज
करिके सर्व जगतको परिपूरण करिके तपि रहे हैं. ॥ ३० ॥

मूलम्.

आख्याहिमेकोभवानुग्रूपोनमोस्तुतेदेववर

प्रसीद ॥ विज्ञातुमिच्छामि भवंतमाद्यं न हि प्रजा
नामितव प्रवृत्तिं ॥ ३१ ॥

अन्वयः

हे देववर एवं उग्ररूपः भवान् कः इति मे आख्याहि हि
यतः अहं तव प्रवृत्तिं न प्रजानामि अतः भवंतं आद्यं
विज्ञातुं इच्छामि त्वं प्रसीद ते नमः अस्तु ॥ ३ ॥

टीका.

हे देवनमे श्रेष्ठ! अर्थात् हे देवनके ईश! ऐसे उग्ररूप आपकौ
न हों. यह मेरेसे कहौ क्योंकि, मैं आपकी प्रवृत्ति नहीं जानता
हूँ, इसवास्ते आप जो आदिपुरुष हौ उन तुमको मैं जानता
चाहता हूँ. तुम प्रसन्न होउ अर्थात् प्रसन्न व्हेके कहौ तुमको
मेरा नमस्कार होउ. ॥ ३१ ॥

मूलम्.

॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ कालोऽस्मिलोकक्षय
कृत्प्रवृद्धोलोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्तः ॥ ऋतेऽ
पित्वां न भविष्यंति सर्वे यवास्थिताः प्रत्यनीके पुयो
धाः ॥ ३२ ॥ तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व जित्वा
शत्रून् भुङ्क्ष्व राज्यं समृद्धं ॥ नये वै ते निहताः पूर्वमे
व निमित्तमात्रं भवसव्यसाचिन् ॥ ३३ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच अहं लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः कालः अ-
स्मि इह लोकान् समाहर्तुं प्रवृत्तः अस्मि ये योधाः प्रत्य
नीकेषु अवास्थिताः ते त्वां ऋते सर्वे अपि न भविष्यंति
॥ ३२ ॥ हे सव्यासाचिन् तस्मात् त्वं उत्तिष्ठ यशः लभस्व

शत्रून् जित्वा समृद्धं राज्यं क्षुब्ध एतेपूर्वं एव मया निह
ताः श्रतः त्वं निमित्तमात्रंभव ॥ ३३ ॥

टीका.

जब अर्जुनने बड़ी प्रार्थना करिके पूछाकि, मैंआपकी प्रवृत्ति
औ आपकोभी नहीं जानता हौं आपकहौ तब भगवान् बोलेकि
मैं लोकोँके क्षय करनेवाला अतिबडाभया काल हौं. जोकहौंगे
मैनेतौ ईश्वररूप देखनेको प्रार्थनाकीथी आपक्यौँ आएतौकह-
ता हौं किइस जगहमै इन मनुष्यौँका संहार करनेको प्रवर्त्तभया
हौं जो कि ये भीष्म द्रोणादिकौँकी सेनौँ सेनौँमे याने सबसेनौँमे
अर्थात् तुम्हारे शत्रुनकीसेनौँमे युद्ध करनेको खडे हँ वैतुम्हारेवि
ना सर्वही न रहँगे, याने तुमइनके मारनेवाले हौसोतुमही रहौंगे
और ये सर्वमैरँगे ॥ ३२ ॥ इसीवास्ते हे सव्यसाचिन् तुमयुद्ध
करनेको उठौँ यशको लेउ यशक्या है सो कहते हँ, शत्रुनको
जीतौँ औ अकंटक राज्य भोगौँ; ये सर्व प्रयमही मेरे मारे भ-
ये हँ इसवास्ते तुम निमित्तमात्र होउ सव्यसाची कहते हँ
जो दोनौँ हाथौँसे बाणप्रहार करता होइ उसको सो अर्जुन
दोनौँ हाथौँसे चलानेवाले हँ इसवास्ते सव्यसाची कहिके
बोलाया. ॥ ३३ ॥

मूलम्.

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथा भ्रन्यात् अपि
रान् ॥ मया हतांस्त्वं जहि मा व्यथिष्ठा युध्यस्व जे
तासिरणे सपत्नान् ॥ ३४ ॥

अन्वयः

द्रोणं च भीष्मं च जयद्रथं च कर्णं तथा भ्रन्यात् अपि
योधवीरान् मया हतान् त्वं जहि मा व्यथिष्ठाः रणे सप-
त्नान् जेतासि श्रतः युध्यस्व ॥ ३४ ॥

टीका.

जो प्रथम शंका किथी कि, क्या मालूम हम जीतेंगे किये जीतेंगे सोभी, शंका अब त्यागौ. क्यों कि, द्रोणाचार्य भीष्म जयद्रथ औ कर्ण तथा औरभी शूर वीर वैमेरे मारे भये हैं इनको तुम निमित्तमात्र व्हैके मारौ औ भयमति मानौ तुम रणमे शत्रुनको जीतैगे इसवास्ते युद्ध करौ. ॥ ३४ ॥

मूलम्.

॥ संजय उवाच ॥ एतच्छ्रुत्वावचनं केशवस्य
कृतांजलिर्वेपमानः किरीटी ॥ नमस्कृत्वा
भूय एवाह कृष्णं स गद्गदं भीतभीतः प्रणम्य ॥ ३५ ॥

अन्वयः

संजयः उवाच किरीटी केशवस्य एतत् वचनं श्रुत्वा वे-
पमानः कृतांजलिः सन् नमस्कृत्वा भूयः एव भीतभी-
तः स गद्गदं प्रणम्य कृष्णं आह ॥ ३५ ॥

मूलम्.

संजय यह वृत्तांत कहिके फिरिभी अगाडीका कहतेहैं कि, हे राजन्! किरीटी जो अर्जुन सो भगवानके ये ऐसे वचन सुनिके कांपता कांपता हाथ जोडे हुये नमस्कार करिके फिरिभी अति भयभीत गद्गद कंठ युक्त भये हुये नमस्कार करिके श्रीकृष्णसे बोलता भया. ॥ ३५ ॥

मूलम्.

॥ अर्जुन उवाच ॥ स्थाने त्वपी केशव प्रकी
र्त्याजि गत्प्रत्हप्यत्यनुरज्यते च ॥ रक्षांसि भीतानि
दिशो द्रवन्ति सर्वे नमस्यन्ति च सिद्धसंघाः ॥ ३६ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे हृषीकेश तव प्रकीर्त्या जगत् प्रहृष्य-
ति च अनुरज्यते च रक्षांसि भीतानि दिशः द्रवन्ति
च सर्वे सिद्धसंघाः नमस्यन्ति इति, स्थाने योग्यं ॥ ३६ ॥

टीका.

श्रव ११ लोकों करिकै अर्जुन स्तुति करते हैं कि, हे हृ-
षीकेश! आप भक्तवत्सल हौ इसवास्ते आपकी कीर्तिकरिके
जगत आनंदको प्राप्त होता है औ आपमे प्रीति करता है
औ राक्षस भयको प्राप्त हुये दिशाविदिशाको भागते हैं औ स-
र्व सिद्ध लोगोंको समूह आपको नमस्कार करते हैं यह सर्व
आपके योग्यही है. ॥ ३६ ॥

मूलम्.

कस्माच्च तेन न मे रन्महात्मन् गरीयसे ब्रह्मणोऽप्या
दिकर्त्रे ॥ अनन्त देवेश जगन्निवास त्वमक्षरं सदस
त्परं यत् ॥ ३७ ॥

अन्वयः

हे महात्मन् ब्रह्मणः अपि गरीयसे च आदिकर्त्रे तुभ्यं
ते सिद्धसंघाः कस्मात् न मे रन् अपितु न मे रन् एवं
हे अनन्त हे देवेश हे जगन्निवास यत् अक्षरं तत् त्वं
यत् सत् यत् असत् यत् तत्परं तत्सर्वं त्वं एव ॥ ३७ ॥

टीका.

जो प्रथम कहा कि, जगत् हर्षता है औ अनुराग करता है तथा
राक्षस भागते हैं औ सिद्ध नमस्कार करते हैं सो सर्व योग्य है; इ
सी योग्यताहीको वर्णन करते हैं हे महात्मन्! ब्रह्मासे भी आप
अति बड़े हौ क्योंकि आदिकर्ता हौ ऐसे तुमको वै सिद्धोंके समू
ह क्यों न नवै अर्थात् नवहींगे हे अनन्त हे देवेश हे जगन्निवास जो

अक्षर याने आत्मा अर्थात् जीवतत्त्व न जायते त्रियतेवा कदा
चित् इत्यादि प्रामाण्यसे अक्षर शब्द निर्दिष्ट जीवात्मा सोभि
आपही हैं औ सदसत् जो कार्य कारणभावकरिके स्थित प्रकृ
तितत्व सो भी आपही हैं सत् जो स्थूल कार्य नामरूप वि
भागके योग्य औ असत् सूक्ष्म जो कारण याने नामरूपके
योग्य नहीं औ इनसे परे जो मुक्त जीव ये सर्व आपही ही
अर्थात् ये सर्व शरीररूप हैं आप सबके अंतर्यामी हौ ॥ ३७ ॥

मूलम्

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य परं
निधानं ॥ वेत्तासिवेद्यं च परं च धाम त्वया ततं वि
श्वमनंतरूप ॥ ३८ ॥

अन्वयः

त्वं आदिदेवः पुराणः पुरुषः असि अस्य विश्वस्य परं
निधानं त्वं असि वेत्ता च वेद्यं च परं धाम त्वं असि हे
अनंतरूप इदं विश्वं त्वया ततं ॥ ३८ ॥

टीका.

तुम आदिदेव याने ब्रह्मादि देवतोंके आदि हौ. क्योंकि,
आप पुराणपुरुष हौ औ इस विश्वके आधार आप हौ औ
जो इसमे जाननेवाला है सो आप हौ औ जो जाननेयो
ग्य है सो आप हौ औ इस जगतके परम धाम याने रहने
का स्थान आप हौ. हे अनंतरूप! अर्थात् आपके रूपका अं
त नहीं औ यह विश्व आपकरिके व्याप्त है इस श्लोकमे आ
दिदेवशब्दसे उत्पत्ति निधानसे आधार याने रक्षण परंधाम-
से लय देखाया अर्थात् इस विश्वके उत्पत्ति रक्षा औ प्रलय
आपहीसे हैं इसवास्ते यह आपमय है ॥ ३८. ॥

मूलम्.

वायुर्यमोऽग्निर्वरुणःशशांकःपितामहस्त्वंप्रपिता
महश्च ॥ नमोनमस्तेस्तुसहस्रकृत्वःपुनश्चभूयोऽ
पिनमोनमस्ते ॥ ३९ ॥

अन्वयः

वायुः त्वं यमः त्वं अग्निः त्वं वरुणः त्वं शशांकः त्वं पि
तामहः च प्रपितामहः त्वं असि अतः ते सहस्रकृत्वः न
मोनमः अस्तु पुनः च भूयः अपि ते नमोनमः अस्तु ॥ ३९ ॥

टीका.

वायु यम अग्नि वरुण चंद्र इत्यादि शब्दोंकरिके कहने योग्य
आपही हौ, औ इस जगतके पितामह ब्रह्मा अर्थात् पिता प्र-
जापती तिनके पिता ब्रह्मा उन ब्रह्माकेभी पिता आप है
इसवास्ते इस जगतके प्रपितामहभी आप हैं इसीवास्ते
आपको हजारहौ वार नमस्कार होउ फिरिभी नमस्कार होउ
नमस्कार होउ इस श्लोकमे हजारौंवारनमस्कार करनेमे तौ
यह वरशाया कि, ईश्वर को एकवेर साष्टांग करिके न रहिजाना.
अति आदरपूर्वक वारंवार नमस्कार करना चाहिये. ॥ ३९ ॥

मूलम्.

नमःपुरस्तादथपृष्ठतस्तेनमोऽस्तुतेसर्वतएवसर्व
॥ अनंतवीर्यामितविक्रमस्त्वंसर्वसमाप्नोपिततो
सिसर्वः ॥ ४० ॥

अन्वयः

हेसर्व ते पुरस्तात् नमः अस्तु अथ पृष्ठतः नमः अस्तु ते
सर्वतः नमः अस्तु अनंतवीर्यामितविक्रमः त्वं सर्व स
माप्नोपि ततः सर्वाः असि ॥ ४० ॥

टीका.

हे सर्वरूप तुमको सन्मुख नमस्कार होउ औ पिछाडीसे होउ औ सब ओरसेभी होउ आपका सामर्थ्य औ पराक्रमका अंत नहीं इसवास्ते आप सर्वमे व्यापक हौ, इसी व्यापकत्वसे आप ही सर्व हैं इसवाक्यसे जो प्रथम समानाधिकरणसे शब्द कहेथे उनका यह खुलासा किया कि, वायु इत्यादिकों के अंतर्गामी रूप आप हैं. ॥ ४० ॥

मूलम्.

सखेतिमत्वाप्रसभंयदुक्तंहेरुष्णहेयादवहेसखेति
॥ अजानतामहिमानंतवेदंमयाप्रमादात्प्रणयेन
वापि ॥ ४१ ॥ यच्चावहासार्थमसत्कृतोसिविहार
शय्यासनभोजनेषु ॥ एकोऽथवाप्यच्युततत्सम
क्षंतक्षामयेत्वामहमप्रमेयं ॥ ४२ ॥

अन्वयः

हे अच्युत तव महिमानं च इदं विश्वरूपं अजानतामया प्रमादात् वा प्रणयेन अपि त्वां ईश्वरं प्राकृतसखा इति मत्वा हेरुष्ण हेयादव हेसखे इति प्रसभं यत् उक्तं च विहारशय्यासनभोजनेषु एकःअथवातत्समक्षं अपि अवहासार्थं यत् असत्कृतः अस्ति तत् अहं अप्रमेयं त्वां क्षामये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

टीका.

हे अच्युत! आपके महिमोका औ इस विश्वरूपको वहि जानता भया जो मै तिस मैने प्रसाद किंवा स्नेहसे आप ईश्वरको प्राकृत सखा मानिके हे रुष्ण हे यादव हे सखे जैसे जो कुछ कहा होय औ क्रीडा शयनआसनभोजन इन कालोंमे अकलेमे अथवा और सखोंके सन्मुख हसीके वास्ते जो अस्कार किया होय. ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

जो मैं प्रमाणातीतसे क्षमा करता हूँ ॥ ४१ ॥

मूलम्

पितासिलोकस्यचराचरस्यत्वमस्यपूज्यश्रगुरु
गरीयान् ॥ नत्वत्समोस्त्यभ्यधिकःकुतोऽन्यो
लोकत्रयेप्यप्रतिमप्रभावः ॥ ४३ ॥ तस्मात्प्रण
म्यप्रणिधायकायंप्रसादयेत्वामहमीशमीड्यं ॥
पितेवपुत्रस्यसखेवसरयुःप्रियःप्रियायाऽर्हसि
देवसोढुं ॥ ४४ ॥

अन्वयः

हेअप्रतिमप्रभाव त्वंअस्य चराचरस्य लोकस्य पिताअ-
सि च अतः एव पूज्यःअसि च गरीयान्गुरुः असि अतः
लोकत्रये अपि त्वत्समः अन्यः न अस्ति तर्हि अभ्यधि-
कःकुतः ॥ ४३ ॥ तस्मात् अहं ईशंईश्यांत्वांभूमौ कायंप्र-
णिधाय प्रणम्य प्रसादये हेदेव पुत्रस्य प्रियाय तदपराधा-
न पिता इव सरयुःप्रियाय सखा इव एवं ममापि प्रियः
त्वमेप्रियाय सोढुं अर्हसि ॥ ४४ ॥

टीका.

हे अप्रतिमप्रभाव याने जिसकी उपमाको दूसरा नहीं ऐसा.
आपका प्रभाव है ऐसे जो आप सो इस चराचर लोकके
पिता उत्पन्न करनेवाले हौ औ इसीसे इसके पूज्य हौ औ गुरु
जो ब्रह्मादिक उनकेभी गुरुहौ इसीकारणसे तीनों लोकमेभी
आपके समान कोई नहींहै तौ अधिक कहासे होयगा ॥४३ ॥ इ-
सीवास्ते मेभी ईश्वर श्री स्तुतिकरनेकेयोग्य आपकोसाष्टांगदंड-
वतकरिगेप्रसन्नकराताहौं. हेदेव! पुत्रके पियारकेवास्ते उसकेअ-

परार्थको पिता जैसेसहता है औ सखाके प्रियकरनेको उसके अपराधों को सखाजैसे सहताहैऐसे ही मेरेभी प्रिय आप हौ सो मेरी प्रियताकेवास्ते मेरे अपराध क्षमा करौ. ॥ ४४ ॥

मूलम्.

अदृष्टपूर्वहृषितोस्मिदृष्ट्वाभयेनचप्रव्यथितंमनो
मे ॥ तदेवमेदर्शयदेवरूपंप्रसीददेवेशजगन्नि
वास ॥ ४५ ॥ किरीटिनंगदिनंचक्रहस्तमिच्छा
मित्वांद्रष्टुमहंतथैव ॥ तेनैवरूपेणचतुर्भुजेनस
हस्रबाहोभवविश्वमूर्ते ॥ ४६ ॥

अन्वयः

अदृष्टपूर्वतव रूपंदृष्ट्वा हृषितःअस्मिच मे मनःभयेनप्र-
व्यथितं अस्ति हेदेव मे तत् एव रूपंदर्शय हे देवेश हे जग-
न्निवास त्वं प्रसीद ॥४५ ॥ हेसहस्रबाहो हेविश्वमूर्ते अहं
तथाकिरीटिनंगदिनंचक्रहस्तं एव त्वां द्रष्टुंइच्छामि अतः
तेन एव चतुर्भुजेन रूपेण भव ॥ ४६ ॥

टीका.

नहीं देखता है पूर्वकालमे मैंनेअथवा किसीने ऐसा आपका
रूप देखिके हर्षित भया हौं औ मेरा मन भयसे व्यथित है. हेदेव
मेरेको वही प्रथमका रूप देखावौ हे देवेश हे जगन्निवास! आप
प्रसन्न होउ ॥ ४५ ॥ हे सहस्रबाहो हे विश्वमूर्ते! याने अब जो आ-
पने सहस्रभुजायुक्त विश्वरूप धारण किया है इसके सवायजो
वैसा किरीटयुक्त गदा औ चक्र हाथमे लिये ऐसा चतुर्भुज रू-
पदेखनेकी इच्छा करता हौं इसवास्ते उसी चतुर्भुज रूपकरि-
केयुक्त होउ. ॥ ४६ ॥

मूलम्.

॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ मया प्रसन्नेन त
वर्जुने दं रूपं परं दर्शितमात्मयोगात् ॥ तेजोमयं
विश्वमनंतमाद्यं यन्मे त्वदन्येन न दृष्टपूर्वं ॥ ४७ ॥

अन्वयः

श्रीभगवानुवाच हे अर्जुन यत् तेजोमयं विश्वं अनंतं
आद्यं त्वदन्येन केनापि न दृष्टपूर्वं तत् इदं मे परं रूपं
प्रसन्नेन मया आत्मयोगात् दर्शितं ॥ ४७ ॥

टीका.

श्रीरुष्णभगवान् अर्जुनके वाक्यसुनिके बोलेकि, हे अर्जुन
जो तेजोमय विश्वरूप अनंत सर्वकी आदि औ तुम्हारे विना प्र-
थम किसीने भी नहीं देखा है सो यह मेरा पररूप प्रसन्न वहैके मै-
ने आपके सत्यसंकल्परूप योगसे देखाया है. ॥ ४७ ॥

मूलम्.

न वेदयज्ञाऽध्ययनैर्न दानैर्न च क्रियाभिर्न तपोभिरु
ग्रैः ॥ एवंप्रवृत्तः शक्योऽहं नृलोके द्रष्टुं त्वदन्येन
कुरुप्रवीर ॥ ४८ ॥

अन्वयः

हे कुरुप्रवीर एवंप्रवृत्तः अहं नृलोके त्वदन्येन वेदयज्ञाध्य-
यनैः द्रष्टुं न शक्यः च दानैः द्रष्टुं न शक्यः च क्रियाभिः
द्रष्टुं न शक्यः च उग्रैः तपोभिः द्रष्टुं न शक्यः ॥ ४८ ॥

टीका.

हे कुरुवंशिनमे श्रेष्ठवीर ऐसा विश्वरूप मै मनुष्यलोकमे तु-
म्हारे सेवाय कौईभी दूरे मनुष्यको वेदाध्ययन अग्निष्टोमादि

यज्ञ मंत्रजप पृथ्वी इत्यादि दान औ अष्टांगयोगक्रिया औ क
 लूचांद्रायणादिक उग्र तप इनाँ साधनाँकरिकेभी नहीं देखनेयो-
 ग्य ही अर्थात् तुम हमारे प्रिय भक्त हो औ तुम्हारे सेवाय याने
 अभक्त जन जो वेद पढ़ें यज्ञकरें मंत्र जपें दान देइं योगक्रिया
 करें अथवा उग्रतप करें तौभी ऐसे विश्वरूप मेरेको न देखिसु-
 केंगे ॥ ४७ ॥

मूलम्.

मातेव्यथामाचविमूढभावोदृष्टारूपंधोरमीदृङ्
 ममेदं ॥ व्यपेतभीःप्रीतमनाःपुनस्त्वंतदेवमेरू
 पमिदंप्रपश्य ॥ ४९ ॥

अन्वयः

ईदृङ् घोरं इदं मम रूपं दृष्ट्वा ते व्यथा मा अस्तु च वि-
 मूढभावः मा अस्तु किंतु व्यपेतभीः प्रीतमानाःत्वं तत्
 एव इदं मे रूपं पुनः प्रपश्य ॥ ४९ ॥

टीका.

ऐसे घोर इत मेरे रूपको देखिके तुम्हारे व्यथा न होय औ
 मोहभावभी न होय क्योंकि, भयरहित प्रसन्नमनयुक्त तुम वही
 प्रथमका चतुर्भुज यह मेरा रूप इसीको फिर देखौ ॥ ०० ॥

मूलम्.

॥ संजयउवाच ॥ इत्यर्जुनंवासुदेवस्तथोत्का
 स्वकरूपंदर्शयामासभूयः ॥ आश्वासयामासच
 भीतमेनंभूत्वापुनःसौम्यवपुर्महात्मा ॥ ५० ॥

अन्वयः

संजयः उवाच वासुदेवः इति अर्जुनं उत्का यथा पूर्वं

चतुर्भुजं रूपं आसीत् तथा स्वकं रूपं भूयः दर्शयामास
च महात्मा सौम्यवपुः भूत्वा पुनः भीतं एनं आश्वास-
यामास ॥ ५० ॥

टीका.

संजय धृतराष्ट्रसे कहते भये कि, वासुदेव भगवान् ऐसे अर्जु-
नसे कहिके जैसा चतुर्भुज आपका रूप प्रथम था वैसाही आ-
पका चतुर्भुज रूप फिरिभी देखाने भये औ विश्वरूप जाये सोसौ
म्य चतुर्भुज रूप व्हेके फिरि भयाभीत अर्जुनका आश्वासन
करते भये ॥ ५० ॥

मूलम.

॥ ॥ अर्जुन उवाच ॥ ॥ दृष्ट्वेदं मानुषं रूपं तव सौ-
म्यं जनार्दन ॥ इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृ-
तिं गतः ॥ ५१ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे जनार्दन! तव इदं सौम्यं मानुषं रूपं दृष्ट्वा
इदानीं अहं सचेताः प्रकृतिं गतः सन् संवृत्तः अस्मि ॥ ५१ ॥

टीका.

श्रीकृष्ण भगवान् का सौम्य चतुर्भुज रूप देखिके अर्जुन
बोलेकी, दे जनार्दन! तुझारा यह सौम्य मनुष्याकार रूप देखि-
के इसकालमे मै प्रसन्नचित्त आपके स्वभावको प्राप्त भया हुवा
सावधान हौं ॥ ५१ ॥

मूलम.

॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ सुदुर्दर्शमिदं रूपं दृष्ट-
वानसियन्मम ॥ देवा अप्यस्य रूपस्य नित्यं द-
र्शनकांक्षिणः ॥ ५२ ॥

अन्वयः

श्रीभवान् उवाच हेअर्जुन! यत् सुदुर्दर्शं इदं मम रूपं
दृष्टवान् अस्ति देवाः अपि अस्य रूपस्य नित्यं दर्शन-
कांक्षिणः संति ॥ ५२ ॥

टीका.

अर्जुनके वाक्यसुनिके भगवान् बोले, हे अर्जुन! जो अति
दुर्दर्श याने बडेपरिश्रमसे भी जप तपादिकारिके देखनेमे न आ-
वै ऐसा जो मेरा रूप तुमने देखाहै सोई रूपके दर्शनकी इच्छा
देवताभी नित्य करते रहते हैं ॥ ५७ ॥

मूलम्.

नाहं वेदैर्न तपसानदानेन न चैज्यया ॥ शक्य एवं
विधोद्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा ॥ २३ ॥ भक्त्या त्व
नन्यया शक्य अहमेवंविधोर्जुन ॥ ज्ञातुं द्रष्टुं च त
त्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप ॥ ५४ ॥

अन्वयः

हेअर्जुन यथा मां दृष्टवान् अस्ति एवं विधः अहं वेदैः द्रष्टुं
न शक्यः न तपसा न दानेन न च ईज्यया द्रष्टुं शक्यः तु
हेपरंतप एवंविधः अहं अनन्यया भक्त्या तत्त्वेन ज्ञातुं
द्रष्टुं च प्रवेष्टुं अपि शक्यः ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

टीका.

हेअर्जुन! जैसा मेरेको तुमने देखा ऐसा मैं वेदके पढनेसे त-
पसे दानसे औ यज्ञसे भी नहीं देखनेमे आता हौं क्योंकि, हेपरं
तप! ऐसा मैं अनन्य भक्तिहीकारिके तत्त्वसे जाननेके औ देखने
के औ प्राप्तहोनेके भी योग्य हौं ॥ ५३ ॥ अर्थात् अनन्यभक्ती ही
से मेरेको मनुष्य जानि सकता है औ देखि सकता है औ प्रा-

सभी होता है और उपायसे नहीं. ॥ ५४ ॥

मूलम्.

मत्कर्मकृन्मत्परमोमद्भक्तःसंगवर्जितः ॥ निर्वैरः
सर्वभूतेषुयःसमामेतिपांडव ॥ ५५ ॥

अन्वयः

हे पांडव यः मत्कर्मकृत् मत्परमः मद्भक्तः संगवर्जितः
सर्वभूतेषु निर्वैरः समां एति ॥ ५५ ॥

टीका.

. हेपंडुतनय! जो वेदाध्यायन इत्यादि कर्म मेरेही निमित्त कर
ताहै सो औ मैही हौं परमपुरुषार्थ जिसका सो औ मेराही आ-
राधन भजन प्रेमपूर्वक जो करता है सो औ मेरेही स्वरूप ध्यान
विना दूसरे संगसे रहित औ सर्वभूत प्राणिमात्रको मेरे जानिके
सर्वसे वैररहित ऐसा मेरा भक्त मेरेको प्राप्त होता है. ॥ ५५ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयो

गशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादेविश्वरूपदर्शनयो

गोनामएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादरु
तायांश्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायांए
कादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

मूलम्.

अर्जुनउवाच ॥ एवंसततयुक्तायेभक्तास्त्वांपर्यु
पासते ॥ येचाप्यक्षरमव्यक्तंतेपांकेयोगवित्त
माः ॥ १ ॥

युक्ताउपासते ॥ श्रद्धयापरयोपेतास्तेमेयुंक्त
मामताः ॥ २ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच जनाः नित्ययुक्ताः मयि मनः आ-
वेश्य परया श्रद्धया उपेताः संतः मां उपासते ते युक्त
तमा मे मताः ॥ २ ॥

टीका.

श्रीकृष्णभगवान् अर्जुनका प्रश्न सुनिके उत्तर देते हैं कि,
जे मनुष्य नित्यही मेरे संयोगकी इच्छा करते हैं वै मेरेको
श्रुतिप्रिय जानिके मेरेहीसे मानको लगाये हुये मेरी उपास-
ना करते हैं, अर्थात् सर्व लौकिक वैदिक कर्म मेरेही प्राप्ति
निमित्त करते भये मेरा स्मरण करते है, वैही योगिनमे श्रेष्ठ
हैं ऐसे मैने माना है, याने वै मेरेको शीघ्रही प्राप्त होयेंगे. ॥२॥

मूलम्.

येत्वक्षरमनिर्देश्यमव्यक्तंपर्युपासते ॥ सर्वत्रग
मर्चिंत्यंचकूटस्थमचलंध्रुवं ॥ ३ ॥ सन्नियम्ये
न्द्रियग्रामंसर्वत्रसमबुद्ध्यः ॥ तेप्राप्नुवंतिमामवस
र्वभूतहिते रताः ॥ ४ ॥ क्लेशोऽधिकतरस्तेपा
मव्यक्तासक्तचेतसां ॥ अव्यक्ताहिगतिर्दुःखंदे
हवद्भिरवाप्यते ॥ ५ ॥

अन्वयः

येतु इंद्रियग्रामं संनियम्य सर्वत्र समबुद्ध्यः सर्वभूतहि-
तेरताः संतः अनिर्देश्यं अव्यक्तं सर्वत्रगं अर्चिंत्यं च कूट-
स्थं अचलं ध्रुवं एवभूतं अक्षरं प्रत्यगात्मतत्त्वं पर्युपासते

अपि मां एव प्राप्नुवन्ति हि यस्मात् अव्यक्ता गतिःदुःखं
यथा स्यात् तथा देहवद्भिः अवाप्यते तस्मात् तेषां अ-
व्यक्तासक्तचेतसां क्लेशः अधिकतरः भवति ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

टीका.

जो कोई मनुष्य सर्व इंद्रियोंको जीतिके सर्वत्र सचराचर
देहोंमें समबुद्धि याने आत्माको एकसमान जाननेवाले इसीसे
वैसर्वभूत प्राणीमात्रके हितकारकहुयेभये अनिर्देश्य याने देवा-
दिक शरीरोंके शब्दों करिके कहनेमें न आवैं कि, यह देव है
अथवा मनुष्य इत्यादिक है ऐसे कहनेमें न आवैं, इसीसे अ-
व्यक्त याने अदृश्य है औ सर्वत्र देवादिकशरीरोंमें प्राप्त हो-
ता है औ अचिंत्य याने चिंतवन करनेमेंभी आता नहीं औ
कूटस्थ याने सर्वदा एकरस अर्थात् देवादिकशरीरोंमें प्राप्त व्हेके
भी, स्वयं निर्विकार औ अचल याने स्वस्वरूपसे चलायमान न
है. इसीसे ध्रुव याने नित्य ऐसा जो अक्षरप्रत्यगात्मस्वरूपकी
उपासना करते हैं याने आत्मस्वरूपका अनुसंधान करते हैं वै भी
मेरेहीको प्राप्त होते हैं; परंतु अव्यक्तगति याने अप्रकटवस्तुकी
प्राप्ति देहधारियों करिके दुःखसे भी प्राप्त होना कठिन है, इसवा-
स्ते जिनका अव्यक्तयाने अप्रकटवस्तु आत्मातत्वमें चित्त लगा
है उनको क्लेश बहुतही होता है. ॥ ३ ॥ ४ ॥ ५ ॥

मूलम्.

येतु सर्वाणिकर्माणिमयिसंन्यस्यमत्पराः ॥ अ-
नन्येनैवयोगेनमांध्यायंतउपासते ॥ ६ ॥ तेषा-
महंसमुद्धर्तामृत्युसंसारसागरात् ॥ भवामिन-
चिरात्पार्थमध्यावेशितचेतसां ॥ ७ ॥

अन्वयः

हेपार्थ ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः
अनन्येन एव योगेन मां ध्यायंतः संतः उपासते मयि
आवेशितचेतसां तेषां अहं मृत्युसंसारसागरात् नचि
रात् समुद्धर्ता भवामि ॥ ६ ॥ ७ ॥

टीका.

हेपृथापुत्र! जो कोई मनुष्य सर्वाणि कर्माणि याने लौकिक
क औ वैदिक सर्व कर्म लौकिकदेहधारण पोषणार्थ आहारादि-
क औ वैदिक यज्ञदानादिक सर्व कर्म अभ्यात्मबुद्धिसे मेरेमे
रखिके याने मेरे अर्पण करिके मत्पराः याने मही हौं पर प्रा-
प्ति होने योग्य जिनके ऐसे जो अनन्यभक्तियोगकरिके मेरा-
ही ध्यान करते भये रीही ध्यान पूजन कीर्त्तनरूप उपासना
करते हैं, ऐसे जिनोंने मेरेमे चित्त लगाया है उनका मैं मेरी
प्राप्तिकी विरोधताकारक जो मृत्युरूप संसारसागर तिसते
थोडेही कालमे उद्धार करौंगा. ॥ ६ ॥ ७ ॥

मूलम्.

मय्येवमनआधत्स्वमयिबुद्धिनिवेशय ॥ निवसि
ष्यसिमय्येवअतउर्ध्वनसंशयः ॥ ८ ॥

अन्वयः

हेअर्जुन त्वं मयि एव मनः आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेश-
यअतःऊर्ध्वमयि एव निवसिष्यसि इति संशयः न ॥ ८ ॥

टीका.

हेअर्जुन! तुम मेरे हीमे मनको युक्त करौ, याने मेरेहीको अति
परमप्रिय जानिके मेरेही मिलनेका प्रयत्न करौ. ऐसे मेरेहीको
बुद्धिको प्रविष्ट करौ याने बुद्धिसे यही दृढनिश्चय करौ की, श्रीम-
न्नारायणके सेवाय दुसरा हमारे नहीं है तो इसमनके प्रवेश कर-

नेके अनंतर मेरे समीपहीमे तुम निवास करोगे इसमे संशय नहीं है. ॥ ८ ॥

मूलम्.

अथचित्तंसमाधातुं न शक्नोषिमयि स्थिरम् ॥ अ
भ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनं जय ॥ ९ ॥

अन्वयः

हे धनंजय अथ मयि स्थिरं चित्तं समाधातुं न शक्नोषि
ततः अभ्यासयोगेन मां आप्तुं इच्छ ॥ ९ ॥

टीका.

हे धनंजय! अर्जुन जो सहसा मेरेमे चित्तके स्थिर समाधा
न नहीं करि सकते हौ तौ अभ्यासयोग करिके मेरी प्राप्तिकी
इच्छा करौ याने मेरे गुणकीर्त्तन श्रवणादिक करिके मेरा श्रव
ड स्मरण करते भये मेरी प्राप्तिकी उत्कंठा करौ. ॥ ९ ॥

मूलम्.

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव ॥ मदर्थ
मपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिं नवाप्स्यसि ॥ १० ॥

अन्वयः

अभ्यासे अपि असमर्थः असि तर्हि मत्कर्मपरमः भवम-
दर्थं कर्माणि कुर्वन्सन् अपि सिद्धिं नवाप्स्यसि ॥ १० ॥

टीका.

जो कि, तुम ऐसा स्मृतिरूप अभ्यास करनेकोभी असमर्थहो
तौ मेरे संबंधी कर्मोंमे तत्पर होहु याने मेरा मंदिर करावौ वाग
लगावौ मेरे मंदिरमे दीपक करौ, झारौ, लीपौ, छिरकाव करौ मेरे
पूजननिमित्त पुष्पादिक लावौ पूजन करौ नामकीर्त्तन प्रदक्षिणा
स्तुति नमस्कार इत्यादिक कर्म मेरेवास्ते करौ तौ मेरेनिमित्त

गीतावाक्यार्थबोधिनी भागटीका. २३७

कर्म करते मेरी प्राप्तिरूप सिद्धिको प्राप्त होउगे ॥ १० ॥

मूलम्.

अथैतदप्यशक्तोऽसिकर्तुमद्योगमाश्रितः ॥ सर्व
कर्मफलत्यागंततःकुरुयतात्मवान् ॥ ११ ॥

अन्वयः

अथ एतत् अपि कर्तुमर्धं कर्म कर्तुं अपि अशक्तः असि
ततः आत्मवान् भूत्वा मद्योगं आश्रितः सन् सर्वकर्म
फलत्यागं कुरु ॥ ११ ॥

टीका.

जो तुम यह जो मेरे अर्थ कर्म इसकोभी करनेको न समर्थ
होउ तौ, मनको मेरी प्राप्तिके यत्नमे राखिके मेरे भक्तियो-
गका आश्रय करते हुवे सर्वलौकिक वैदिक कर्मके फलका त्या-
गकरौ ॥ ११ ॥

मूलम्.

श्रेयोहिज्ञानमभ्यासाज्ञानाद्विज्ञानंविशिष्यते ॥
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनंतरम् ॥१२॥

अन्वयः

अभ्यासात् श्रेयः ज्ञानं भवति ज्ञानात् ध्यानं विशिष्यते ध्या-
नात् कर्मफलत्यागः त्यागात् अनंतरं शान्तिः स्यात् ॥ १२ ॥

टीका.

अभ्यास करनेसे कल्याण कारक तत्वज्ञान होता है औ ज्ञान-
नसे ध्यान याने विचार होता है उस ध्यानसे याने विचारसे स-
र्व कर्म याने लौकिक तथा वैदिक सर्व कर्मोंके फलका त्याग हो-
ता है औ त्यागके पीछे शान्ति होती है, याने संसारसे वैराग्य
होता है ॥ २ ॥

मूलम्.

अद्वेषासर्वभूतानामैत्रः करुण एव च ॥ निर्ममो
 निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥ १३ ॥ संतुष्टः
 सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ॥ मय्यर्पितम
 नाबुद्धिर्यो मद्भक्तः समेप्रियः ॥ १४ ॥

अन्वयः

यः सर्वभूतानां अद्वेषा मैत्रः च करुणः एव च निर्ममः
 निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी संतुष्टः सततं योगी
 यतात्मा दृढनिश्चयः मय्यर्पितमनोबुद्धिः सः मद्भ
 क्तः मे प्रियः अस्ति ॥ १३ ॥ १४ ॥

टीका.

जो सर्वभूतोंका अद्वेषा याने सर्व मित्र तथा शत्रु इन सर्वोंसे
 द्वेष न करै सबसे मित्रता राखै सबपर करुणा करै औ निर्मम
 याने देह इंद्रिय औ देहसंबंधी स्त्री पुत्र द्रव्य गृहादिकोंको अ-
 पना नजानै औ निरहंकार याने देहाऽभिमानरहित होय औ
 सुखदुःखमे सम याने सुखमे हर्ष न करै दुःखमे शोक न करै
 औ क्षमी सहनशील होय संतुष्ट याने जो मिला उसीसे देह-
 निर्वाह करिके संतुष्ट रहै औ निरंतर मेरे प्राप्तिरूप योगयुक्त
 रहै औ मनको नियममे राखै औ मेरेही गुणकीर्तनादिकोंमे
 दृढ निश्चय राखै एतेही मेरेहीमे मन औ बुद्धिको लगाये
 होय सो मेरा भक्त मेरेको प्याराहै ॥ १३ ॥ १४ ॥

मूलम्.

यस्मान्नोद्विजते लोकोलाकान्नोद्विजते च यः ॥
 हर्षामर्षभयोद्विगैर्मुक्तो यः संचमेप्रियः ॥ १५ ॥

लोकः कस्मात् न उद्विजसे च यः लोकात् न उद्विज-

ते च यः हर्षामर्षभयोर्हर्षैः मुक्तः सः मे प्रियः अस्ति ॥ १५ ॥

टीका.

लोक याने कोईभी जन प्राणीमात्र जिसते उद्वेगको न प्राप्त होयै याने ऐसे कर्म करै जिसते लोगोंको पीडा न होय और वह आपभी लोगोंसे उद्वेगको न प्राप्त होय याने जिसके उद्वेगकारक कर्म कोईभी न करै इसीसे वह हर्ष और अमर्ष याने असहनशीलता ईर्ष्या और भय तथा उद्वेग इनसे वह रहित होता है सो पुरुष मेरेको प्रिय है. ॥ १५ ॥

मूलम्

अनपेक्षःशुचिर्दक्षउदासीनोगतव्यथः ॥ सर्वारं

भपरित्यागीयोमद्भक्तःसमेप्रियः ॥ १६ ॥

अन्वयः

यः पुरुष अनपेक्षः शुचिः दक्षः उदासीनः गतव्यथः
सर्वारंभपरित्यागी सन् मद्भक्तः अस्ति सः मे प्रियः अ-
स्ति ॥ १६ ॥

टीका.

जो पुरुष अनपेक्षयाने आत्माके सेवाविना औरसर्ववस्तुमे इच्छारहित है और शुचि याने जो शास्त्रविहित पदार्थ हैं उन्हीसे बढा है पवित्र शरीर जिनका अथवा बाहेर मृत्तिका जलादिसे और अंदर चित्तकी शुद्धतासे पवित्र है और दक्ष याने शास्त्रोक्त कर्म करनेमे समर्थ और उदासीन याने शास्त्रीव्यवहारसे अन्यत्र उदासीन अथवा शत्रुता मित्रता करिके रहित और गतव्यथः याने शास्त्रोक्त कर्म करते जो शीत उष्ण वर्ष धूप इत्यादिक स्पर्श करते हैं उनकी व्यथासे रहित और सर्वारंभपरित्यागी

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां
श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः

॥ १२ ॥

॥ इति द्वितीयपट्टकं समाप्तम् ॥

॥ अत तृतीयपट्टकं प्रारभ्यते ॥

उपाद्घातः

प्रथमपट्टमे ईश्वरप्राप्तिका उपायभूत भक्ति जो उपासना औ
उस उपासनाका अंगभूत आत्मस्वरूपज्ञान सो आत्मज्ञान
ज्ञानयोग कर्मयोगनिष्कारिके प्राप्त होता है, ऐसा कहा औ म-
ध्यपट्टमे परमात्मस्वरूपका यथार्थज्ञान औ उसके महात्मज्ञान-
पूर्वक उपासना जिसको भक्ति कहते हैं सो भक्तियोगप्रतिपादन
किया. अब अंतपट्टमे प्रकृति औ पुरुषका निरूपण औ प्रकृति
पुरुषके संसर्गसे प्रपंचका होना कहेंगे औ प्रथमद्वितीयमे कहा
जो परमात्मस्वरूपका यथार्थ निश्चय औ कर्म ज्ञान भक्ति इन-
के स्वरूप औ इनके उपादानके प्रकार न्यारे न्यारे कहेंगे, तहां
तेरहें अध्यायमे देह औ आत्माके स्वरूप औ देह क्या है ऐसा-
निश्चय औ देहसे न्यारा जो आत्मा उससी प्राप्तिका उपाय
औ प्रकृतिसे मुक्तका स्वरूप औ उसका प्रकृतिसंबंधका कारण
औ प्रकृतिपुरुषविवेकका अनुसंधानप्रकार कहेंगे. ॥ १ ॥

मूलम्.

॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ इदंशरीरं कौंतेय क्षेत्र
मित्यभिधीयते ॥ एतद्यो वेत्ति तं प्राहुः क्षेत्रज्ञ इति
तद्विदः ॥ १ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हे कौंतेय इदं शरीरं क्षेत्रं इति अभिधीयते यः एतत् वेत्ति तद्विदः तं क्षेत्रज्ञः इति प्राहुः ॥ १ ॥

टीका.

श्रीकृष्णभगवान् कहते भये कि, हे कुंतिपुत्र! यह शरीर क्षेत्र ऐसा कहा जाता है, और जो इसको जानता है उसको उसके जाननेवाले पुरुष क्षेत्रज्ञ ऐसा कहते हैं, अर्थात् देह और आत्माके जाननेवाले देहको क्षेत्र और आत्मा जो इस देहका ज्ञाता है उसको क्षेत्रज्ञ कहते हैं. ॥ १ ॥

मूलम्.

क्षेत्रज्ञं चापि मां विद्वि सर्वक्षेत्रेषु भारत ॥ क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोर्ज्ञानं यत्तज्ज्ञानं मतं मम ॥ २ ॥

अन्वयः

हे भारत सर्वक्षेत्रेषु क्षेत्रज्ञं च मां अपि विद्वि यत् क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः ज्ञानं यत् तत् ज्ञानं मम मतं ॥ २ ॥

टीका.

हे भारत! अर्जुन सर्व क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञ जो आत्मा और मैं जो परमात्मा ये दोनों रहते हैं ऐसा तुम जानौ. इसविषयमें प्रमाण श्रुति है. द्वौमुपणौ सयुजौ सखायौ समानं वृक्षपरिपस्वजाते ॥ तथो रेकः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नयोऽभिचाकशीति ॥ अर्थ दो पक्षी संगसंग रहनेवाले परस्पर मित्र एकसरीखे वृक्षपर रहते हैं उनमें एक उस वृक्षके स्वादुफल खाता है दूसरा फल खायविना प्रकाश करता है अर्थात् ईश्वर और जीव ये दोनों एकसंग रहते हैं. परस्पर सखा हैं. एकही देहमें रहते हैं उनमें जीव कर्मफलभोक्ता है और ईश्वर साक्षिमात्र प्रकाशक है. अथवा दूसरा अर्थ कहते हैं ॥ हे भारत! सर्वक्षेत्रेषु क्षेत्रज्ञं च तत् क्षेत्रमपि मां विद्वि ॥ अर्थ हे अर्जुन त

वक्षेत्रौमेक्षेत्रज्ञ औ वह क्षेत्रभी मेरेहीको जानौ याने मेरे वैशरी
 रमै उनाका अंतर्यामी हौं ऐसा जानौं. जो इहां कोई शंका करै
 कि, जीवात्मा औ परमात्मा न्यारे नहीं हैं, उसी परमात्माका
 एक भाग आत्मा है. अज्ञानसे जीव संज्ञक हुआ है औ ज्ञान
 प्राप्त होनेसे वही परमात्मामें मिलिकै परमात्माही होयगा. इ-
 स शंकाके निवारणके वास्ते वाक्य लिखते हैं कि, परमात्मा
 बद्ध औ मुक्त दोनौ आत्मस्वरूपोंसे न्यारा है ॥ द्वाविमौपुरुषौ
 लोकेक्षरश्चाक्षरएवच ॥ क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षरउच्य
 ते ॥ उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ योलोकत्रयमा
 विश्यविभर्त्यव्ययईश्वरः ॥ यस्मात्क्षरमतीतोहमक्षरादपिचोत्त
 मः ॥ अतोस्मिन्लोकेवेदेचप्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ इत्यादि वाक्यों
 करिके यहसिद्धहुआ कि, बद्ध मुक्त दोनौ अवस्थाके जीवोंसे प-
 रमात्मान्यारा औ सर्वोत्तम है ॥ योलोकत्रयमाविश्यविभर्त्य
 व्यय ईश्वर इस वाक्यसे अंतर्यामित्वभी सिद्ध भया. औ अंत-
 र्यामित्वप्रमाणमें श्रुतिभी है ॥ अस्यपृथिवीशरीरंयः पृथिवीमं
 तरोयमयतिसतआत्मांतर्याम्यमृतइत्यारभ्ययआत्मनितिष्ठन्ना
 त्मनोतरोयमात्मानवेद यस्यात्माशरीरंयमात्मनमंतरोयमयति
 सतआत्मांतर्याम्यमृतइत्याद्याः ॥ औ इहाभी कहाहै ॥ ईश्वरःसर्व
 भूतानांहृद्देशेर्जुनतिष्ठति ॥ नतदस्तिविनायत्स्यान्मयाभूतंच
 राचरं ॥ इत्यादि वाक्यों करिके यह अर्थ सिद्ध हुआ कि, शरी
 र क्षेत्र औ आत्मा क्षेत्रज्ञ औ मै उन दोनौका अंतर्यामी हौं य-
 ह जो क्षेत्र क्षेत्रज्ञका विवेकरूप जो ज्ञान सोई ज्ञानग्राह्य है
 यह मेरा मत है. ॥ २ ॥ मूलम्.

तत्क्षेत्रंयच्चयादृक्कयद्विकारियतश्चयत् ॥ सच

योयत्प्रभावश्चतत्समासेनमे शृणु ॥ ३ ॥

अन्वयः

तत् क्षेत्रं यत् च यादृक् च यद्विकारि च यतः च यत्प्र-
स्ति च तः क्षेत्रज्ञः यः च यत्प्रभावः अस्ति तत् समा-
सेन मे शृणु ॥ ३ ॥

टीका.

जो क्षेत्र कहा सो वह जो है औ जैसा है औ जो वि-
कारों करिके युक्त है औ जिसवास्ते है औ जैसे स्वरूपयुक्त
है सो औ वह क्षेत्रज्ञ जो है औ जैसे प्रभावों करिके युक्त
है सो सब संक्षेप करिके मेरेसे सुनौ. ॥ ३ ॥

मूलम्.

ऋषिभिर्वहुधागीतंछंदोभिर्विविधैः पृथक् ॥ ब्र-
ह्मसूत्रपदैश्चैव हेतुमद्भिर्विनिश्चितैः ॥ ४ ॥

अन्वयः

ऋषिभिः बहुधा गीतं विविधैः छंदोभिः पृथक् पृथक् गीतं
हेतुमद्भिः ब्रह्मसूत्रपदैः विनिश्चितैः एव गीतं ॥ ४ ॥

टीका.

जो यह क्षेत्र औ क्षेत्रज्ञका ज्ञान है सो ज्ञान पराशरादिक
ऋषियोंने अनेकप्रकारसे कहा है औ वेदोंनेभि क्षेत्र औ क्षेत्रज्ञ-
का स्वरूपज्ञान न्यारा न्यारा कहा है औ ब्रह्मसूत्रके हेतुयुक्त
पदोंकरिके निश्चय किया गया कहा है; परंतु मैं संक्षेपसे
कहता हौं सो सुनौ. ॥ ४ ॥

मूलम्.

महाभूतान्यहंकारोबुद्धिरव्यक्तमेव च ॥ इंद्रिया
णिदशैकंचपंचचंद्रियगोचराः ॥ ५ ॥ इच्छाद्वे

पःसुखंदुःखंसंघातश्चेतनाधृतिः ॥ एतत्क्षेत्रं त
मासेनसविकारमुदाहृतं ॥ ६ ॥

अन्वयः

महाभूतानि अहंकारः बुद्धिः च अव्यक्तं एव दश च एकं
इंद्रियाणि च पंच इंद्रियगोचराः ॥ ५ ॥ इच्छा द्वेषः सुखं
दुःखं अयं संघातः चेतना धृतिः भवति एतत् सविकारं
क्षेत्रं समासेन उदाहृतं ॥ ६ ॥

। टीका.

महाभूत अहंकारबुद्धि औ अव्यक्तयै ८ क्षेत्रजो शरीर तिसके
आरंभके द्रव्य हैं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु औ आकाश ये पांच
महाभूत एक अहंकार जो इन भूतोंका आदि है एक बुद्धि याने
महत्त्व औ एक अव्यक्त याने सूक्ष्मरूप प्रकृति ऐसे आठ अव
विकार अर्थात् कार्य कहते हैं. श्रोत्र, त्वक्, चक्षुः, जिह्वा औ घ्राण
ये पांच ज्ञानेन्द्रिय वाक् पाणि पाद पायु उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय
औ एक मन ऐसे एकादश ११ इंद्रिय औ शब्द, स्पर्श, रूप, रस,
गंध ये पांच इंद्रियगोचर ये सोरह क्षेत्रविकार याने कार्य हैं
॥ ५ ॥ औ इच्छा द्वेष सुख दुःख ये चार ४ जद्यपि इच्छा द्वेष
सुख दुःख ये आत्माके धर्म हैं तथापि क्षेत्रहीके संबंधसे आ-
त्मामे प्रयुक्त होते हैं इसवास्ते क्षेत्रविकारकरिके कहे गये जो य-
ह अट्टाईस तत्वका समूह काहा सो चेतनके आधार अथवा
चेतनका आधार है प्रकृति आदि लैके पृथ्वीपर्यंत ८ द्रव्य श-
रीरके आरंभका कारण हैं इंद्रियादिक इच्छा द्वेष सुख दुःख
विकारयुक्तशरीर चेतनके सुख दुःख भोगनेका आधार हैं इसको
क्षेत्र कहते हैं याने सुखादिकके उत्पात्तिका स्थान है इसवास्ते इ-
सको क्षेत्र कहते हैं यह क्षेत्र मने कार्योंतहित संज्ञेपसे कहा है. ॥६

मूलम्

आमानित्वमदंभित्वमहिंसाक्षांतिरार्जवं ॥ आ
चार्योपासनंशौचंस्थैर्यमात्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥ इं
द्रियार्थेषुवैराग्यमनहंकारएवच ॥ जन्ममृत्युज
राव्याधिदुःखदोषानुदर्शनं ॥ ८ ॥ असाक्तिर
नभिष्वंगःपुत्रदारगृहादिषु ॥ नित्यंचसमचित्त
त्वसिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥ ९ ॥ मयिचानन्ययोगे
नभक्तिरव्यभिचारिणी ॥ विविक्तदेशसेवित्वम
रतिर्जनसंसदि ॥ १० ॥ अध्यात्मज्ञाननित्य
त्वंतत्त्वज्ञानार्थदर्शनं ॥ एतज्ज्ञानमितिप्रोक्तम
ज्ञानंयदतोऽन्यथा ॥ ११ ॥

अन्वयः

श्रमानित्वं अदंभित्वं अहिंसा क्षांतिः आर्जवं आचार्यो-
पासनं शौचं स्थैर्यं आत्मविनिग्रहः ॥ ७ ॥ इंद्रियार्थेषु वै-
राग्यं च अनहंकारः एव जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदो
षाऽनुदर्शनं ॥ ८ ॥ असाक्तिः पुत्रदारगृहादिषु अनभि-
ष्वंगः च इष्टाऽनिष्टोपपत्तिषु नित्यं समचित्तत्वं ॥ ९ ॥
च मयि अनन्ययोगेन अव्यभिचारिणी भक्तिः विविक्त
देशसेवित्वं जनसंसदि अरतिः ॥ १० ॥ अध्यात्मज्ञान
नित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं इति एतत् ज्ञानं प्रोक्तं यत्
अतः अन्यथा तत् अज्ञानं ॥ ११ ॥

टीका.

अव क्षेत्र कार्योके विषे आत्मज्ञान साधननिमित्त गृहण क-
रनेयोग्य गुण कहते हैं. श्रमानित्व याने गुणाधिक पुरुषसे मान

न चाहै अदंभित्व याने आपको धर्मिष्ठ कहानेके वास्ते धर्मकार्यको न देखवै जैसे कि, मै दान पूजन इत्यादिक करौंगा तौ लोगमेरेको दानीभक्त ऐसा कहेंगे. अहिंसा जो दूसरेको पीडाकारकर्म न करना सो क्षांति: याने समर्थ व्हेके दूसरेके अपराध सहन करना. आर्जवं याने सर्वसे सीधे रहना. आचार्योपासनं अर्थात् मन वाक्य औ शरीरकारिके गुरुकी सेवा करना. शौच दोप्रकारका है बाह्य औ अभ्यंतर बाह्य जल मृत्तिकादिकसे अभ्यंतर निष्कपटपनासे ईश्वरका स्मरण स्थैर्य याने आध्यत्मशास्त्र करिके कहेभये अर्थोम निश्चलता आत्मविनियह अर्थात् आत्मस्वरूपके सेवाय और विषयोंसे मनको निवारणकरना ॥७॥ इंद्रियार्थेषु वैराग्यं याने इंद्रियोंके विषयोंके गुणबुद्धि न करना. अनहंकार याने अनात्मा जो यह देह उसमे आत्माभिमान न करना अर्थात् देहसंबंधी सर्व स्त्री पुत्र धनादिकोंमे हमारे हैं ऐसा अभिमान न करना. जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनं याने जन्म होनेसे शरीर भया तब मृत्यु वृद्धावस्था रोगयै होतेही हैं औ अनिवार्य हैं ऐसा दुःखरूप दोषका देखना ॥ ८ ॥ असक्ति याने आत्माके सेवाय दूसरे पदार्थमे आसक्त न होना. पुत्र दारगृहादिषु अनाभिष्वंगः याने इन पुत्रादिकोंके नाश होनेसे हमभी मरेंगे ऐसी बुद्धि न करना आपका इच्छित अथवा अनिच्छित अर्थात् प्रिय औ अप्रियके प्राप्त होनेसे समचित्त रहना ॥ ९ ॥ औ मेरेमे अनन्य अखंडभक्ति राखना औ एकांतमे बैठना लोकोंमे बैठनेसे नाराज रहना ॥ १० ॥ अध्यात्मज्ञानमे नित्य निष्ठा रखना औ तत्त्वज्ञानका प्रयोजन देखा करना ऐसे ये आत्मज्ञानके उपयोगी गुण कहे इनका समूह यही ज्ञान है औ इन गुणोंके सेवाय और गुण आत्मज्ञानके विरोधी हैं इसवास्ते उनका समूह आज्ञान है. ॥ ११ ॥

मूलम्.

ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि यज्ज्ञात्वाऽमृतमश्नुते ॥ अ
नादिमत्परं ब्रह्म न सत्तन्नासदुच्यते ॥ १२ ॥

अन्वयः

यत् ज्ञेयं तत् प्रवक्ष्यामि यत् ज्ञात्वा अमृतं अश्नुते,
किंभूतं अनादि मत्परं ब्रह्म तत् सत् न उच्यते न
असत् उच्यते ॥ १२ ॥

टीका.

जो प्रथम कहा कि, इस क्षेत्रके जाननेवालेको क्षेत्रज्ञ कहते हैं, सो उस क्षेत्रज्ञका ज्ञातृत्व याने जानपन खुलासा कहते हैं. ज्ञेयं यत्तत्प्रवक्ष्यामि इत्यादि करिके अमानित्व इत्यादि साधनों करिके जो आत्मस्वरूप जानने योग्य है सो मैं कहता हौं. जिसको जानिके जरामरणादिक प्राकृत धर्मोंसे रहित अमृत जो आत्मस्वरूप उसको प्राप्त होता है, सो आत्मस्वरूप कैसा है कि, अनादि जिसका आदि याने जन्म नहीं है; जब जन्म नहीं तो मरणभी अर्थात् नहीं. उहां श्रुतिभी प्रमाण है ॥ न जायते म्रियते वा विपश्चित् ॥ तथा मत्परं याने मैं हौं पर उत्कृष्ट अंतर्यामी जिसका ऐसा वह आत्मा है इहां. प्रमाण ॥ इतस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे परां जीवभूतामिति ॥ इत करिके यह कहा कि, वह आत्मा मेरा शरीर है इस विषयमे भी श्रुति प्रमाण लिखते हैं ॥ य आत्मनि तिष्ठन्नात्मनो तरोयमात्मानवेद ॥ यस्यात्मा शरीरं भात्मानमंतरोयमयतीति ॥ तथा ब्रह्म याने बृहत्त्वगुणयुक्त शरीरसे न्यारा अर्थात् क्षेत्रज्ञ जीवात्माको ब्रह्म कहनेमे प्रमाण प्रथम ही लिखा है ॥ सगुणान्समतीत्यैतान् ब्रह्म भूयाय कल्पते ॥ ऐसे शुद्धस्वरूप जीवात्माहीको ब्रह्म कहा है इसका भी कोई अर्थ करते हैं कि,

ब्रह्मभूयायकल्पते अर्थात् जैसे घटाकाश घट नष्ट होनेसे महदा-
काशमें मिलताहै ऐसे यहभी परमात्मामें मिलनेसे ब्रह्म कहता
है.तहां समुझना चाहिये कि,उन विद्वद्भूपणोंकी बुद्धिमें कफवा-
युकी अधिकतासे मैल चढगया है इसवास्ते उनको पूर्वापरका
विचार नहीं रहता है क्योंकि, इसीमें प्रमाण हैं ॥ ब्रह्मणोहिप्रति
ष्टाहममृतस्याव्ययस्यच ॥ ब्रह्मभूतःप्रसन्नात्मानशोचतिगकांक्ष-
ति ॥ समःवर्षेषुभूतेषुमद्भक्तिंलभतेपरां ॥ इन वाक्योंमें यह खु-
लासा दीखता है कि, ब्रह्म ठहैके मेरी परमभक्तिको पावता है
जो एकमें मिलि जायगा उसको भक्ति मिलनेका संभव कैसे
होयगा.इसवास्ते इहा निश्चय यही है कि, ब्रह्मप्रकृतिरहित शुद्ध
जीवात्माही इस प्रकरणमेंकहा औरभी कारण दीखता है कि,
यह अध्याय भी प्रकृति पुरुष विवेकयोगनाम है इसवास्ते इहां
शुद्ध जीवात्माहीका नाम ब्रह्म कहना चाहिये, तथा सो प्रत्य-
गात्मा न सत् है न असत् है याने स्थूल सूक्ष्म दोनो अवस्थासे
रहित है अर्थात् कार्य औ कारण इन दोनोसे रहित है,
कार्यअवस्थामें देवादिक नाम रूप योग्य होता है; जब सत्
कहते हैं औ कारण अवस्थामें नाम रूपके योग्य नहीं अति-
सूक्ष्म हैं तब असत् कहते हैं ये दोनौ अवस्था कर्म रूप
अविद्याकृत हैं औ शुद्धस्वरूपके नहीं इसवास्ते वह सत् औ
असत् रहित है. ॥ १२ ॥ मूलम्.

सर्वतःपाणिपादंतत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखं ॥ सर्व

तःश्रुतिमल्लोकेसर्वमावृत्यतिष्ठति ॥ १६ ॥

अन्वयः

तत् सर्वतः पाणिपादं सर्वतोऽक्षिशिरोमुखं सर्वतःश्रुति

मत् सर्वं आवृत्य तिष्ठति ॥ १३ ॥

टीका.

सो शुद्ध रूप जीवात्मा सर्व और हात पावों करिके युक्त है याने उसके सर्व और हाथ पांव है अर्थात् सर्व ओरसे हाथ पावों का कार्य करि सकता है औ तैसाही सर्व ओरसे नेत्र, मस्तक औ मुखों करिके युक्त है औ वैसाही सर्व और उसके कान है अर्थात् सर्व ओरसे नेत्रादिकों का काम करि सकता है जैसे कि, परमात्माका वर्णन किया है कि ॥ अपाणिपादोजवनागृहीतापश्यत्यक्षुःसशृणोत्यकर्णः इति ॥ अर्थ वह परमात्मा हाथ विना गृहण करता है पायँविना बड़े वेगसे चलता है, नेत्रविना देखता है, कानविना सुनता है, ऐसीही जीवात्माभी मुक्तदशामे परमात्माके सदृश होता है इहां प्रमाण श्रुति और गीताजीके वाक्य है ॥ तथा विद्वान्पुण्यपापे विषयनिरंजनः परमं साम्यमुपैति श्रुतिः ॥ औ इहाभी अगाडी कहेंगे ॥ इदं ज्ञानमुपाश्रित्य मम साधर्म्यमागतः इति ॥ जब प्रकृतिविमुक्त शुद्ध व्हेके परमात्माकी समताको प्राप्त भया तब सर्व और हाथ इत्यादिक होनेमें क्या संदेह है औ लोकमें जो वस्तुमात्र है उसका व्यापक व्हेके स्थित होता है इहां प्रसिद्ध देखनेमें आता है कि, इंद्रादिक देवता प्रकृतियुक्तभी जीव हैं ऐसीही हनुमान औ भैरव इत्यादिकभी जीव हैं इनका आराधन एकही समयमें पृथ्वीपर अनेक ठेकाने होता है सो वै सर्वका कियाहुआ आराधन स्वीकार करिके सर्वको सिद्धी देते हैं औ केतनेक पिशाचों में भी जत्र रहें तौ वै एकही समयमें अनेक जगह व्यापक होते हैं और भी केतनेक देहको भी हाथ, पाव, मुख, नेत्र इत्यादिक सर्व ओरको होते हैं, जैसे दुमुहां इत्यादिक सर्प बहुत नेत्रोंकी मक्खी इनमें रहने से सर्व ओरको नेत्रादिक होते ही है इसमें शंका क्या है ॥ १२ ॥

मूलम्.

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ॥ असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुणभोक्तृ च ॥ १४ ॥

अन्वयः

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितं असक्तं च सर्वभूत एव निर्गुणं च गुणभोक्तृ अस्ति ॥ १४ ॥

टीका.

सर्वेन्द्रियोंकी वृत्तिकारिके है आभास जिसका अर्थात् सर्वेन्द्रियोंकी वृत्तिकारिके विषयोंको जाननेको समर्थ है औ स्वतः स्वभावसे सर्वेन्द्रियोंकारिके रहित है अर्थात् इन्द्रियोंकी वृत्तिविनाभी आपही सर्व जानता है औ आसक्त है याने स्वभावसेही देवादिदेहोंके संगसे रहित है औ सर्वभूत याने देवादिक सर्व देहोंके भरण पोषण करनेमे समर्थ है निर्गुण याने सत्वादिगुणरहित है औ गुणभोक्तृ याने सत्वादिगुणोंको भोगि सकता है ॥ १४ ॥

मूलम्.

वहिरंतश्च भूतानामचरंचरमेव च ॥ सूक्ष्मत्वात् दविज्ञेयंदूरस्थंचांतिके च तत् ॥ १५ ॥

अन्वयः

तत् आत्मतत्त्वं भूतानां वहिः च अंतः वर्तते च अचरं चरं एव भवति सूक्ष्मत्वात् तत् अविज्ञेयं तत् दूरस्थं च अंतिके अपि अस्ति ॥ १५ ॥

टीका.

वह आत्मतत्त्व मुक्तदशामे तौ भूतोंके वाहेर ओ वृद्धावस्थामे अंदर वर्तमान होता है औ यह स्वतः अचर है तौभी देहयोगसे चर होता है सूक्ष्म है इसवास्ते जाननेमे मही आता है ऐ-

वह अज्ञानियोंके दूर है तथा ज्ञानियोंको नजिकभी है ॥१५॥

मूलम्

अविभक्तंचभूतेषुविभक्तमिवचस्थितं ॥ भूत

भर्तृचतज्ज्ञेयंग्रसिष्णुप्रभविष्णुच ॥ १६ ॥

अन्वयः

तत् आत्मतत्त्वं भूतेषु अविभक्तं च विभक्तं इव स्थितं
अस्ति च तत् भूतभर्तृ ज्ञेयं च ग्रसिष्णु ज्ञेयं च प्रभवि-
ष्णुज्ञेयं ॥ १६ ॥

टीका.

वह आत्मतत्त्व पृथिव्यादि भूतविकार देवादिक शरीरोंमें
अविभक्त याने एकरस अर्थात् देवशरीरसे लैके पिपीलिकापर्यं
त भूतप्राणीमें एक समान है यह नहीं कि, देवशरीरोंमें देवाका-
र पिपीलिकादिकोंमें पिपीलिकादिक आकार होता है क्यों
कि. वह देहसे न्यारा सदा एकरस है परंतु अज्ञानिलोगोंको दे-
वादिशरीरोंमें देवादिशरीरसदृश दीखता है औ वह देवादिक
भूत ताके पोषण है औ अन्नादिक भूतोंका भक्षक याने शरीर
रूपसे आहार करनेवाले है औ उसी अन्नादिक भूतविकारसे
उत्पन्नकारकभी है ॥ १६ ॥

मूलम्.

ज्योतिषामपितज्ज्योतिस्तमसःपरमुच्यते ॥

ज्ञानंज्ञेयंज्ञानगम्यंत्वादिसर्वस्यधिष्ठितं ॥ १७ ॥

अन्वयः

तत् ज्योतिषां अपि ज्योतिः तमसः परं उच्यते च ज्ञा-
नं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं सर्वस्य त्वादिसधिष्ठितं ॥ १७ ॥

टीका.

वह आत्मतत्त्व सूर्य दीपादिक ज्योतियोंकाभी प्रकाश
 और तूम जो सूक्ष्मकारणरूप प्रकृति उसतेभी परे है याने भिन्न
 है और ज्ञानरूप है तथा जाननेयोग्य है और ज्ञानसे प्राप्त वह सक-
 ता है और सर्वदेवादिकशरीरोंके हृदयमें स्थित है. ॥ १७ ॥

मूलम्.

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं ज्ञेयं चोक्तं समासतः ॥ मद्भ-
 क्त एतद्विज्ञाय मद्भावायोपपद्यते ॥ १८ ॥

अन्वयः

इति क्षेत्रं तथा ज्ञानं च ज्ञेयं समासतः उक्तं मद्भक्तः ए-
 तत् विज्ञाय मद्भावाय उपपद्यते ॥ १८ ॥

टीका.

हे अर्जुन! महाभूतान्यहंकार इहांसे लैके संघातश्चेतनाधृति-
 ऐसे इहांपर्यंत क्षेत्रतत्त्व संक्षेपसे कहा और अमानित्वसे लैके
 तत्त्वज्ञानार्थदर्शनं इहांतक ज्ञानसाधन कहा और अनादिमत्परं
 ब्रह्मसे लैके तृदिसर्वस्यधिष्ठितं इहांतक ज्ञेय याने जाननेयोग्य
 आत्मयाथात्म्य कहा मेरा भक्त यह जानिके याने क्षेत्रस्वरूप
 क्षेत्रसे भिन्न आत्मस्वरूप और उसके प्राप्तिहोनेका उपाय जा-
 निके मेरे भाव याने असंसारी स्वभावको प्राप्त होय अर्थात्
 मोक्षप्राप्तिके योग्य होय. ॥ १८ ॥

मूलम्.

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्विद्यनादि उभावपि ॥ विका-
 रांश्च गुणांश्चैव विद्वि प्रकृतिसंभवान् ॥ १९ ॥

अन्वयः

प्रकृतिं च पुरुषं उभौ अपि अनादि विद्वि विकारान्
 च गुणान् एव प्रकृतिसंभवान् विद्वि ॥ १९ ॥

टीका.

अब अत्यंत न्यारे न्यारे स्वभावयुक्त जो प्रकृतिपुरुष उनके संसर्ग याने मिलापका अनादिपना औ उन दोनौ संसर्गियोंका कार्यभेद जो संसर्गका हेतु है सो कहते हैं. जैसे कि, प्रकृति औ पुरुष ये दोनौ परस्पर मिलापी औ अनादी हैं ऐसा जानो औ वंधनकारणभूत जे इच्छाद्वेषादिक विकार तथा मोक्षकारणभूत अमानित्वादि गुण ये प्रकृतिसे उत्पन्न हैं ऐसा जानो अर्थात् पुरुषको मिलीभई यह प्रकृति आपके इच्छा द्वेषादिक विकारों करिके वंधन करनेवाली होती है औ वही अमानित्वादिआपके गुणोंकरिके पुरुषके मोक्षकी कारण होती है ॥ ११ ॥

मूलम्.

कार्यकारणकर्तृत्वहेतुःकृतिरुच्यते ॥ पुरुषः
सुखदुःखानांभोक्तृत्वहेतुरुच्यते ॥ २० ॥

अन्वयः

कार्यकारणकर्तृत्व हेतुः प्रकृतिः उच्यते सुखदुःखानां
भोक्तृत्व हेतुः पुरुषः उच्यते ॥ २० ॥

टीका.

मिले भये जो प्रकृतिपुरुष हैं उनका कार्यभेद कहते हैं. जैसे कि, कार्य शरीर औ कारण मनयुक्त इंद्रियां इनके क्रिया कारावनमे हेतु पुरुषाधिष्ठित प्रकृति है अर्थात् भोगसाधन क्रिया पुरुषकरिके अधिष्ठित क्षेत्राकार परिणामको प्राप्त भई जो प्रकृति उसहीके आश्रित है औ सुखदुःखोंके भोक्तृत्वमे कारण पुरुष है याने प्रकृतिके संसर्गसे सुख औ दुःखके अनुभवका आश्रय पुरुष है ऐसे परस्पर मिलेभये प्रकृतिपुरुषोंका कार्यभेद कहा. ॥ २० ॥

मूलम्.

पुरुषःप्रकृतिस्थोहिभुंक्तेप्रकृतिजान्गुणान् ॥
कारणंगुणसंगोऽस्यसदसद्योनिजन्मसु ॥ २१ ॥

अन्वयः

हि यस्मात् पुरुषः प्रकृतिस्थितः सन् प्रकृतिजान् गु-
णान् भुंक्ते तस्मात् अस्य सदसद्योनिजन्मसु गुणसंगः
कारणं भवति ॥ २१ ॥

टीका.

जिसवास्ते कि पुरुषप्रकृतिमे स्थित व्हेके प्रकृतिजन्य गु-
ण याने प्रकृतिके मत्वादिक गुणोंके कार्य जो सुखदुःखादिक
उनको भोगता है इसीवास्ते इसके ऊँच औ नीच योनिमे
जन्म लेनेमे उन गुणोंका संगही कारण है अर्थात् सत्त्वादि गु-
णोंकी आसक्तीसे पुण्यपापरूप कर्म करता है उनसे फिर ऊँच
नीच योनिमे जन्मता है जैसे कि, पुण्यसे देवयोनि इत्यादिक
औ पापकर्मस पशु इत्यादिकमे जन्मके सुखदुःखादिकारक
कर्म करता है फिरभी जन्मता है ऐसे जबतक अमानित्वादि
क गुणयुक्त नहीं होता है तबतक संसरता है. ॥ २१ ॥

मूलम्.

उपद्रष्टाऽनुमंताचभर्ताभोक्तामहेश्वरः ॥ परमा
त्मंतिचाप्युक्तोदेहेस्मिन्पुरुषःपरः ॥ ५२ ॥

अन्वयः

अस्मिन् देहे वर्तमानः पुरुषः अस्य देहस्य उपद्रष्टा च
अनुमंता च भर्ता च भोक्ता च महेश्वरः अस्ति अतः
सः आत्मा अस्मात् देहात् परः अपि तथापि अज्ञैः प-
रं आत्मा इति अर्थात् देहः इति उक्तः ॥ ५२ ॥

टीका.

इस देहमे वर्तमान् पुरुष इस देहका देखनेवाला औ अनुमानकरनेवाला औ भरण पोषण करनेवाला औ भोगनेवाला औ इस देहका महेश्वर है इन्ही कारणोंसे यह जीवात्मा इस देहसे पर याने न्यारा अर्थात् देहसे दूसरा है तौभी, अज्ञानी पुरुषों करिके केवल देह याने यही देह है, अर्थात् देह औ आत्मा एकही है, ऐसा कहा है. ॥ २२ ॥

मूलम्.

यएवंवेत्तिपुरुषंप्रकृतिंचगुणैःसह ॥सर्वथावर्तमानोऽपिनसभूयोऽभिजायते ॥ २३ ॥

अन्वयः

यः एवं पुरुषं च गुणैः सह प्रकृतिं वेत्ति सः सर्वथा वर्तमानः भूयः न अभिजायते ॥ २३ ॥

टीका.

जो ऐसे प्रकारसे पुरुषको जानता है औ स्वकीय सत्वादि गुणों करिके सहित प्रकृतिको जानता है, सो सर्व तरहसे संसारमे वर्तमान है तौभी, फिरि जन्मता नहीं. ॥ २३ ॥

मूलम्.

ध्यानेनात्मनिपश्यंतिकेचिदात्मानमात्मना ॥
अन्येसांरूपेनयोगेनकर्मयोगेनचापरे ॥ २४ ॥
अन्येत्वेवमजानंतःश्रुत्वाऽन्येभ्यउपासते ॥ ते
ऽपिचातितरंत्येवमृत्युंश्रुतिपरायणाः ॥ २५ ॥

अन्वयः

केचित् निष्पन्नयोगाः आत्मनि स्थितं आत्मानं आत्म-

ना ध्यानेन पश्यन्ति अन्ये अनिष्पन्नयोगाः सांख्येन योगेन पश्यन्ति च अपरे अनिष्पन्नयोगज्ञानाः कर्मयोगेन पश्यन्ति ॥ २४ ॥ तु अन्ये एवं अजानन्तः अन्येभ्यः श्रुत्वा कर्मयोगादिभिः उपासते च ये श्रुतिपरायणाः ते अपि मृत्युं अतितरन्ति एव ॥ २५ ॥

टीका.

केतने पुरुष जिनको योग प्राप्त भया है, वै योगी देहमे स्थित आत्माको मनसे ध्यान याने भक्तियोग करिके देखते हैं, औ दूसरे जिनको योग नहीं प्राप्त भया है वै सांख्ययोग याने ज्ञानयोग करिके योगके योग्य मनको करिके आत्माको देखते हैं, औ दूसरे जिनको योग औ ज्ञानभी नहीं प्राप्त भया है, केवल प्राप्तिकी इच्छा मात्र करिके कर्मयोग करते हैं तब वै उस कर्मयोगहीके अंतर्गत ज्ञानकरिके मनको योगके योग्य करिके उससे आत्माको देखते हैं ॥ २४ ॥ औ औरभी दूसरे ऐसे कर्मयोगकोभी नहीं जानते है वै और ज्ञानियाँसे मुनिके कर्मयोगादिक करिके पूर्ववत् आत्माकी उपासना करते हैं, याने कर्मसे सांख्य सांख्यसे योग प्राप्त वहेके उस योगबलसे आत्माको देखते औ जो केवल श्रवणमात्रमे श्रद्धा रखते हैं वैभी मृत्युको उलंघन करते है, याने आत्मदर्शन पायके मुक्त होते हैं. ॥ २५ ॥ मूलम.

यावत्संजायते किञ्चित् सत्त्वं स्थावरजंगमं ॥ क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात्तद्विद्विभरतर्पभ ॥ २६ ॥

अन्वयः

यावत् स्थावरजंगमं यत्किञ्चित् सत्त्वं संजायते हेभरतर्पभ तत् सर्व क्षेत्रक्षेत्रज्ञसंयोगात् विद्वि ॥ २६ ॥

टीका.

तेतना स्थावर औ जंगम रूपकारिके जो कुछ सत्व उत्प-
ता है हे, अर्जुन! सो सर्व क्षेत्र क्षेत्रज्ञ याने जीव औ प्रक-
ः संयोगसे होता है, ऐसा जानौ ॥ २६ ॥

मूलम्.

समंसर्वेषुभूतेषुतिष्ठंतंपरमेश्वरं ॥ विनश्यत्स्व
विनश्यंतंयःपश्यतिसपश्यति ॥ २७ ॥

अन्वयः

यः सर्वेषु भूतेषु समं तिष्ठंतं परमेश्वरं तेषु विनश्यत्सु
अविनश्यंतं पश्यति सः पश्यति ॥ २७ ॥

टीका.

जो पुरुष सर्व भूतोंमे समस्थित औ परमेश्वर याने मन इं-
द्रियादिकोंका केवल ईश्वर अथवा पर जो परमात्मा सोहै ई-
श्वर जिसका ऐसे आत्माको इंद्रादिभूतोंके विनाश होनेसेभी
वेनाशरहित देखता है, सोई देखता है ॥ २७ ॥

मूलम्.

समंपश्यन् हि सर्वत्र समवस्थितमीश्वरं ॥ नहिन
स्त्यात्मनात्मानंततोयाति परां गतिं ॥ २८ ॥

अन्वयः

सर्वत्र समवस्थितं ईश्वरं समं पश्यन् सन् हि आत्म-
ना आत्मानं न हिनस्ति ततः परां गतिं याति ॥ २८ ॥

टीका.

सर्वत्र देवादि विषमाकार शरीरोंमे स्थित जो मन इंद्रियादि-
कोंका ईश्वर आत्मा तिसको सम देखता भया जिसवास्ते कि,
बुद्धिपूर्वक आत्माको संसारमे नहि पटकता है इसीवास्ते परां

२६० गीतावाक्यार्थबोधेनी भाषाटीका.
गतीको याने आत्मस्वरूपको प्राप्त होता है. ॥ २८ ॥

मूलम्

प्रकृत्यैवचकर्माणिक्रियमाणानिसर्वशः ॥ यः
पश्यतितथात्मानमकर्तारंसपश्यति ॥ २९ ॥

अन्वयः

यः सर्वशः कर्माणि प्रकृत्या एव क्रियमाणानि इति
पश्यति च तथा आत्मानं अकर्तारं पश्यति सः एव
पश्यति ॥ २९ ॥

टीका.

जो सर्वकर्मोंको प्रकृतिहीके किये भये जानता है, याने देहा-
दिरूप परिणामको प्राप्त भई प्रकृतिही करती है ऐसा देखता है,
औ आत्माको अकर्ता देखता है, सोई देखता है अर्थात् और
नहीं देखता है, याने आत्मस्वरूप देखता है. ॥ २९ ॥

मूलम्.

यदाभूतपृथग्भावमेकस्थमनुश्रयति ॥ अ
तएवचविस्तारंब्रह्मसंपद्यतेतदा ॥ ३० ॥

अन्वयः

यदा भूतपृथग्भावं एकस्थं अनुपश्यति च अतः एव
विस्तारं पश्यति तदा ब्रह्म संपद्यते ॥ ३० ॥

टीका.

जब प्रकृतिपुरुष तत्त्वद्वयात्मक सर्व देवादि भूतोंका देव-
त्व, मनुष्यत्व, इन्द्रत्व, दीर्घत्व, रुद्रत्व, स्थूलत्व, इत्यादिक
पृथग्भावोंको एकप्रतिहीमे स्थित देखता है औ इसीप्रकृतिसे
पुत्रपौत्रादि रूप विस्तार देखता है, तत्र शुद्ध आत्मस्वरूपको
प्राप्त होता है. ॥ ३० ॥

मूलम्.

अनादित्वात्त्रिगुणत्वात्परमात्माऽयमव्ययः ॥
शरीरस्थोपिकौंतेय न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥

अन्वयः

हे कौंतेय अयं परमात्मा अनादित्वात् अव्ययः निर्गु-
णत्वात् शरीरस्थः अपि न करोति न लिप्यते ॥ ३१ ॥

टीका.

हेकुंतीपुत्र! यह परमात्मा याने देहादिकौंते पर, अर्थात्
अन्य आत्मा अनादि है इसवास्ते अविनाशी है औ निर्गुण
याने सत्त्वादिगुणरहित है इसते न करता है, न फलौंकरि लि-
प्त होता है ॥ ३१ ॥ मूलम्.

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यादाकाशं नोपलिप्यते ॥ स
र्वत्रावस्थितो देहे तथात्मानोपलिप्यते ॥ ३२ ॥

अन्वयः

यथा सर्वगतं आकाशं सौक्ष्म्यात् सर्वस्वभावैः न उप-
लिप्यते तथा सर्वत्र देहे अवस्थितः आत्मा देहस्वभा-
वैः न उपलिप्यते ॥ ३२ ॥

टीका.

जैसे सर्व वस्तुमे प्राप्त भयाहुआ आकाश सूक्ष्मपणसे
सर्वभूतोंके स्वभावों करिके लिप्त नहीं होता है, तैसेही सर्वत्र
देवादिदेहमे स्थित आत्मा सूक्ष्मत्वसे सर्व देहोंके स्वभावों
करिके लिप्त नहीं होता है ॥ ३२ ॥

मूलम्.

यथाप्रकाशयत्येकः कृत्स्नं लोकमिमं रविः ॥ क्षेत्रं
क्षेत्रीतथा कृत्स्नं प्रकाशयति भारत ॥ ३३ ॥

अन्वयः

हेभारत यथा एकः रविः इमं कृत्स्नं लोकं प्रकाशयति
तथा क्षेत्री कृत्स्नं क्षेत्रं प्रकाशयति ॥ ३३ ॥

टीका.

हे अर्जुन! जैसे एक सूर्य आपके प्रकाशकरिके इस सर्व लो-
कको प्रकाशित करता है, तैसेही क्षेत्री याने आत्मा इस सर्व क्षेत्रं
याने सर्व शरीरको आपने ज्ञानकरिके प्रकाशित करता है ॥ ३३ ॥

मूलम्.

क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोरेवमंतरंज्ञानचक्षुषा ॥ भूतप्र
कृतिमोक्षंचयेविदुर्यातितेपरम् ॥ ३४ ॥

अन्वयः

ये क्षेत्रक्षेत्रज्ञयोः एवं अंतरं ज्ञानचक्षुषा पश्यन्ति च
भूतप्रकृतिमोक्षं विदुः ते परं यांति ॥ ३४ ॥

टीका.

जे कोई पुरुष क्षेत्र औ क्षेत्रज्ञका ऐसा अंतर ज्ञानदृष्टिक-
रिके देखते हैं, औ भूतप्रकृतिका मोक्ष जानते हैं; वै पर जो शुद्ध
आत्मस्वरूप उसको प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥

इतिश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे प्रकृतिपुरुषवि
वेकयोगोनामत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां
श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां त्रयोदशो
ऽध्यायः ॥ १३ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ परंभूयःप्रवक्ष्यामिज्ञानानां
ज्ञानमुत्तमं ॥ यज्ज्ञात्वा मुनयःसर्वे परांसिद्धिमितो
गताः ॥ १ ॥ इदंज्ञानमुपाश्रित्यममसाधर्म्यमाग
ताः ॥ सर्गेऽपिनोपजायंतेप्रलयेनव्यथंतिच ॥ २ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच अहं ज्ञानानां उत्तमं परं ज्ञानं भूयः प्र-
वक्ष्यामि यत् ज्ञानं ज्ञात्वा सर्वे मनुयः इतः परांसिद्धिं ग-
ताः ॥ १ ॥ ते मुनयः इदं ज्ञानं उपाश्रित्य मम साधर्म्यं
आगताः संतः सर्गे अपि न उपजायंते च प्रलयेऽपि न-
व्य थंति ॥ २ ॥

टीका.

तेरहे अध्यायमे यह कहाकि, परस्पर आश्रित भयेहुये प्रकृ-
ति औ पुरुषका स्वरूपनिश्चय जानिके भगवद्भक्ति करिके प्राप्त
भये अमानित्वादिगुणोंकरिके बंधनसे छूटते है तहाँ कहाकि, बंध-
नका कारण सत्त्वादिगुणामयसुखादिकैकी आसक्ती है ॥
कारणगुणसंगोस्यसदसद्योनिजन्मसु ॥ इसकरिके अब चौदहेमे
जैसे गुणबन्धनके कारण होते हैं सो श्री गुणोंसे मुक्त होनेका प्र-
कार कहेंगे ॥ श्रीकृष्णभगवान् कहतेभये कि, मै ज्ञानोंमे उत्तम
पूर्वोक्तज्ञानसेदूसराऔप्रकृतिपुरुषकेहीअंतर्गत सत्त्वादिगुणवि-
षयिकज्ञान फिरिभी कहता हौं जिस ज्ञानको जानिके सर्व मुनी
जन संसारसे पर सिद्धि जो मोक्ष उस मोक्षको प्राप्त भये है ॥ १
अब मोक्ष प्राप्त भयोंका स्वरूप कहते हैं, जो अगाडी कहेंगा
इसी ज्ञानका वै मुनि अनुष्ठान करिके याने इसका अनुसंधानक-
रिके मेरे साधर्म्यको अर्थात् मेरे सदृश रूप श्री सुखको प्राप्त

भये हैं, वै उत्पत्तिकालमे जन्मतेभी नहीं औ प्रलम्कालमे व्य-
थाकोभी नहीं प्राप्त होते हैं, याने लयमे आते नहीं. ॥ २ ॥

मूलम्.

ममयोनिर्महद्ब्रह्मतस्मिन् गर्भदधाम्यहं ॥ संभ-
वः सर्वभूतानां ततो भवति भारत ॥ ३ ॥

अन्वयः

मम मदीयः योनिः महद्ब्रह्म अस्ति अहं तस्मिन् गर्भद-
धामि हे भारत ततः सर्वभूतानां संभवः भवति ॥ ३ ॥

टीका.

अब यह कहते हैं कि, जो प्रकृतिपुरुषके योगसे भूतप्राणी-
मात्रकी उत्पत्ति है वहभी मेरेही स्वाधीन है. जैसे कि, मेरे गर्भ-
धारण करनेका स्थान जो महद्ब्रह्म याने प्रकृति उसमे मैं चेत-
नरूप याने जीवरूप गर्भधारण करता हौ. हे अर्जुन! उसीसे स-
र्वभूतप्राणीमात्रकी उत्पत्ति होती है. ॥ ३ ॥

मूलम्.

सर्वयोनिपकौंतेयमूर्तयः संभवंतियाः ॥ तासां
ब्रह्ममहद्योनिरहं बीजप्रदः पिता ॥ ४ ॥

अन्वयः

हेकौंतेय सर्वयोनिपु याः मूर्तयः संभवंति तासां ब्रह्मम
हत् योनिः बीजप्रदः पिता अहं अस्मि ॥ ४ ॥

टीका.

हे कुंतीपुत्र! सर्व देव, मनुष्य, पशु, पक्षी औ कीट इत्यादिक
योनियोंमे जो मूर्ती उत्पन्न होती हैं उनका उत्पत्तिकारण प्र-
कृति है औ बीज जो चेतनवर्ग जीव उसका धारण, पालन क-
रनेवाला मैं हौं. ॥ ४ ॥

मूलम्.

सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृतिसंभवाः ॥ निब
धंति महाबाहो देहे देहिनमव्ययं ॥ ५ ॥

अन्वयः

हे महाबाहो सत्त्वं रजः तमः इति प्रकृतिसंभवाः गुणाः
देहे अव्ययं देहिनं निबधंति ॥ ५ ॥

टीका.

हे अर्जुन! सत्त्व, रज और तम ये प्रकृतिजन्य गुणा देहके
विषे रहे भये जीवको बंधन प्राप्त करते हैं और श्राप स्वरूपसे
तो वह जीव अविनाशी है. ॥ ५ ॥

मूलम्.

तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात् प्रकाशकमनामयं ॥ सुखसं
गेन वध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ॥ ६ ॥

अन्वयः

हे अनघ तत्र निर्मलत्वात् सत्त्वं प्रकाशकं अनामयं अ-
स्ति तत् सुखसंगेन च ज्ञानसंगेन वध्नाति ॥ ६ ॥

टीका.

दे अनघ याने हेनिष्पाप अर्जुन! तहां उन तीनों गुणोंमें
सत्त्वगुण मलरहित है, इसवास्ते प्रकाशक है, याने विहित अ-
र्थात् करनेयोग्यकार्यका देखनेवाला भी व्याधिरहित है सो
सुख और ज्ञानकी आसक्तीमें बंधता है; याने सुख और ज्ञान उत्प-
त्ति करता है उससे फिरि देवादिशरीर प्राप्त होते हैं. ॥ ६ ॥

मूलम्.

रजोरागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमृद्धं ॥ तन्न वि

ध्रातिकौंतेयकर्मसंगेनदेहिनं ॥ ७ ॥

अन्वयः

हेकौंतेय तृष्णासंगसमुद्भवं रजः रागात्मकं विद्धि तत्
कर्मसंगेन देहिनं निवध्नाति ॥ ७ ॥

टीका.

देकुंतीपुत्र! तृष्णा औ संगकी है उत्पत्ति जिसते ऐसा रजोगु-
ण रागका कारण है, तृष्णा याने शब्दादिविषयोंकी चाहना, संग
याने स्त्री पुत्र मित्रादिकोंका मिलाप, राग याने स्त्री पुरुषकी पर-
स्पर चाहना प्रीति इन सबका कारण रजोगुण है इसवास्ते वह
जो जो कर्मकी इच्छा कराइके कर्म करताही है उसी कर्मके
माफिक योनियोंमे यह जीव जन्मताहै. ॥ ७ ॥

मूलम्.

तमस्त्वज्ञानजंविद्धिमोहनं सर्वदेहिनां ॥ प्रमादा
लस्यनिद्राभिस्तन्निवध्नातिभारत ॥ ८ ॥

अन्वयः

हेभारत तमः अज्ञानजं विद्धि तु सर्वदेहिनां मोहनंविद्धि
तत् प्रमादालस्यनिद्राभिः देहिनं निवध्नाति ॥ ८ ॥

टीका.

हेभारत अर्जुन! तमोगुण अज्ञानकी उत्पत्तिकारक है इसीसे
सर्वदेहधारियोंको मोहनेवाला है याने विपरीतज्ञान उत्पादक
है सो तमोगुण प्रमाद, आलस्य औ निद्राकरिके देहधारीको बांध
ता है, प्रमाद याने करनेयोग्यकार्यको छोडना औ न करनेयोग्य
करना, आलस्य याने कोईभी कार्य करनेमे निरुद्यमता, निद्रा
याने पुरुषके इंद्रियोंकी प्रवृत्ति शांति सो निद्रा, तहां बाह्यइं-
द्रियोंकी विश्रांतिस्वप्न औ मनकाभी उपराम सुषुप्ति जानना ॥ ८ ॥

मूलम्

सत्त्वंसुखेसंजयतिरजःकर्मणिभारत ॥ ज्ञानमा
वृत्यतुतमःप्रमादेसंजयत्युत ॥ ९ ॥

अन्वयः

हे भारत सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि संजयति त-
मः ज्ञानं ज्ञावृत्य उत प्रमादे संजयति ॥ ९ ॥

टीका.

अब सत्त्वादिकके प्राधान्यकार्य कहते हैं, सत्त्वगुण सुखमे
लगाता है, रजोगुण कर्ममे, और तमोगुण ज्ञानको ढाकिक प्रमादमे
लगाता है. ॥ ९ ॥

मूलम्.

रजस्तमश्चाभिभूयसत्त्वंभवतिभारत ॥ रजःस-
त्त्वंतमश्चैवतमःसत्त्वंरजस्तथा ॥ १० ॥

अन्वयः

हेभारत रजः च तमः अभिभूय सत्त्वं भवति च रजः स-
त्त्वं अभिभूय तमः भवति तथा तमः सत्त्वं अभिभूय र-
जः भवति ॥ १० ॥

टीका.

अहो सत्त्वादिक गुण प्रकृति संबंधी हैं वै सर्वकाल रहते हैं
और ऐसा विपरीत क्यों करते हैं; तहां कहते हैं कि, यद्यपि सत्त्वा-
दिक गुण प्रकृतिके हैं और देहमे सदा वर्तमान हैं तौ भी, प्राचीन
कर्मवदाने और देहके तृप्तिकारक आहारकी विषमताते सत्त्वादि-
क गुण एकएकको जीतिके प्रबल होते हैं जैसेकि, रजोगुणको और
तमोगुणको जीतिके सत्त्वगुण प्रबल होता है, रजोगुणसत्त्वगुणोंको

जीतिके तमोगुण प्रबल होता है औ तमोगुण सत्वगुणोंको जी-
ति रजोगुण प्रबल होता है. ॥ १० ॥

मूलम्.

सर्वद्वारेषु देहेस्मिन् प्रकाश उपजायते ॥ ज्ञानं य
दा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ॥ ११ ॥ लोभः
प्रवृत्तिरारंभः कर्मणामशमः स्पृहा ॥ रजस्येता
नि जायंते विवृद्धे भरतर्षभ ॥ १२ ॥ अप्रकाशो
ऽप्रवृत्तिश्च प्रमादो मोह एव च ॥ तमस्येता नि जा
यंते विवृद्धे कुरुनन्दन ॥ १३ ॥

अन्वयः

हे भरतर्षभ अस्मिन् देहे सर्वद्वारेषु यदा ज्ञानं प्रकाशः उ-
पजायते तदा सत्त्वं विवृद्धं इति विद्यात् ॥ ११ ॥ उत
लोभः प्रवृत्तिः कर्मणां आरंभः अशमः स्पृहा रजसि प्रवृ
द्धे सति एतानि जायंते ॥ १२ ॥ हे कुरुनन्दन अप्रकाशः
च अप्रवृत्तिः च प्रमादः च मोहः एतानि तमसि विवृ-
द्धे सति जायंते एव ॥ १३ ॥

टीका.

अब सत्त्वादिगुणोंकी वृद्धिके चिन्ह कहते हैं, हे भारत! याने भ-
रतवंशोत्पन्न हे अर्जुन! इस देहमे सर्व कर्णनेत्रादिरूप द्वारोंमे ज-
ब वस्तु याथात्म्य याने यह वस्तु अमुक है ऐसे वस्तुरूप
साक्षात्कार करनेवाला ज्ञान उपजै तब सत्वगुण बढ़ा है ऐसा
ज्ञानना ॥ ११ ॥ औ जब लोभ जो धनादिकके खर्च किये
विना औरहु धनकी इच्छा प्रवृत्ति याने प्रयोजनविना चंचलता
कर्मणां आरंभः याने फलसाधनरूप कर्मोंका आरंभ अशमः या.

ने इंद्रियोंकी शांति नहोना स्पृहा याने, विषयइच्छा ये यतने र-
जोगुण बढनेसे होते हैं. ॥ १२ ॥ हेकुरुनंदन! अप्रकाश याने ज्ञा-
नका उदय नहोना अर्थात् विवेककी हानि, अप्रवृत्ति याने अ-
नुद्यम अर्थात् कुछभी उद्यमका न दीखना, प्रमाद याने नकरने-
का काम करना, मोह उलटाज्ञान ये यतने तमोगुण बढनेसे
होते हैं. ॥ १३ ॥

मूलम्.

यदासत्त्वेप्रवृद्धेतुप्रलयंयातिदेहभृत् ॥ तदोत्त
मविदांल्लोकानमलान्प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

अन्वयः

यदा सत्त्वे प्रवृद्धेसति देहभृत् प्रलयं याति तदा उत्त-
मविदां अमलान् प्रतिपद्यते ॥ १४ ॥

टीका.

जब सत्त्वगुणकी वृद्धिकालमे देहधारी मृत्युको प्राप्त होता है,
तब आत्मस्वरूप जाननेवालोंके जो निर्मल लोक हैं याने अ-
ज्ञानरहित लोकोंको प्राप्त होता है, अर्थात् आत्मज्ञानियोंके कुल-
मे जन्म लैके आत्मस्वरूप साक्षात् करनेको पुण्यकर्म करता है,
लोकवस्तुभुवनेजने इहां लोक शब्द जनवाची है. ॥ १४ ॥

मूलम्.

रजसिप्रलयंगत्वाकर्मसंगिपुजायते ॥ तथाप्र
लीनस्तमसिमूढयोनिपुजायते ॥ १५ ॥

अन्वयः

रजसि तु प्रलयं गत्वा कर्मसंगिपु जायते तथा तमसि
प्रलीनः मूढयोनिपु जायते ॥ १५ ॥

टीका.

रजोगुणकी वृद्धिसमये मृत्यु पावै तौ कर्म संगीयाने कर्मकर-
नेवाल्लैके कुलमे जन्मता है अर्थात् उहां जन्मिके फिरि स्वर्गप्रा-
प्तिकारक कर्म करता है, तैसाही तमोगुणवृद्धिकालमे मराहुआ
मूढयोनि याने कुत्ता इत्यादिक योनियोमे जन्मता है, जहां
कोईसाभी साधन नही व्हे सकता है. ॥ १४ ॥

मूलम्.

कर्मणःसुकृतस्याहुःसात्त्विकंनिर्मलंफलं ॥ रज
सस्तुफलंदुःखमज्ञानंतमसःफलं ॥ १६ ॥

अन्वयः

सुकृतस्य कर्मणःफलं सात्त्विकं निर्मलं आहुः तु रजसः
फलं दुःखं आहुः तमसः फलं अज्ञानं आहुः ॥ १६ ॥

टीका.

ऐसे आत्मज्ञानियोके कुलमे जन्मिके जो क्रिया सुकृतकर्म
याने फलानुसंधानरहितमेरेआराधनरूप कर्म उसकाभीफल है
सो पूर्वसात्त्विकसेभी अधिक सात्त्विक औ निर्मल याने दुःखलै
शरहित होता है ऐसे मुनिजन सात्त्विक औ जाननेवाले कहते
हैं औ रजोगुणीकर्म याने काम्यकर्मका फल संसार है सो दुःख-
रूप है औ तमोगुणीकर्मका फल अज्ञान है, सात्त्विकादिफलोंके
लक्षण अठारहे अध्यायमे ॥ नियतंसंगरहित ॥ इत्यादि करिके
कहेंगे ॥ १६ ॥

मूलम्.

सत्त्वात्संजायतेज्ञानंरजसोलोभएवच ॥ प्रमा
दमोहौतमसोभवतोऽज्ञानमेवच ॥ १७ ॥

अन्वयः .

सत्त्वात् ज्ञानं संजायते रजसः लोभः एव संजायते तम-
सः प्रमादमोहौ भवतः च अज्ञानं एव भवति ॥ १७ ॥

टीका.

अब अतिसात्विक प्रकाशरूप निर्मल फल क्या है? सो कहते हैं, ऐसे परंपरासे उत्पन्न भया जो अधिक सात्विकफल उससे ज्ञान उत्पन्न होता है, राजफलसे लोभ और तामससे प्रमाद, मोहऔ अज्ञान ये होते हैं. ॥ १७ ॥

मूलम्.

ऊर्ध्वंगच्छंतिसत्वस्थामध्येतिष्ठंतिराजसाः ॥ ज
घन्यगुणवृत्तिस्था अधोगच्छंतितामसाः ॥ १८ ॥

अन्वयः

सत्वस्थाः ऊर्ध्वं गच्छंति राजसाः मध्ये तिष्ठंति जघन्य
गुणवृत्तिस्था तामसाः अधः गच्छंति ॥ १८ ॥

टीका.

ऐसे कहेभये प्रकारसे सात्विक कर्म करनेनाले कर्म करिके ऊर्ध्व याने मोक्षको प्राप्त होते हैं, रजोगुणी कर्मकरिके स्वर्ग, फिरि पुण्य क्षीण होनेसे संसार, फिरि स्वर्ग, ऐसे संसारमे रहते हैं; यह दुःखरूपही है औ तमोगुणी नीचगुणकी वृत्तिमे स्थित है इसवास्ते अधोगच्छंति याने नीच जातिमे जन्मते हैं. फिरि पशु फिरि कृमि कीट स्थावर गुल्म शिला काष्ठ कंकर इत्यादि योनियोंमे जन्मते हैं. ॥ १८ ॥

मूलम्.

नान्यंगुणेषु कर्तारं यदाद्रष्टानुपश्यति ॥ गुणे
षु च परं वेत्ति मद्भावं सोऽधिगच्छति ॥ १९ ॥

ल्योमित्रारिपक्षयोः ॥ सर्वारंभपरित्यागीगुणा
तीतः स उच्यते ॥ २५ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हे पांडव यः प्रकाशं च प्रवृत्तिं च मोहं
एव एतानि संप्रवृत्तानि न द्वेषति च निवृत्तानि न कांक्षति
॥ २२ ॥ चयः उदासीनवत् आसीनः सन् गुणैः न विचाल्यते
गुणाः एव वर्तन्ते इति यः तिष्ठति न इंंगते ॥ २३ ॥ यः
समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाठमकांचनः तुल्यप्रियाऽ
प्रियः धीरः तुल्यनिंदात्मसंस्तुतिः ॥ २४ ॥ मानापमान-
योः तुल्यः मित्रारिपक्षयोः तुल्यः सर्वारंभपरित्यागी सः
गुणातीतः उच्यते ॥ २५ ॥

टीका.

अब श्रीकृष्ण भगवान् गुणातीतके लक्षण कहते हैं, प्रकाश
शब्दसे जो सत्वगुणके सर्व कार्य अर्थात् आरोग्य सौमनस्यइ-
त्यादिक प्रवृत्तिसे रजोगुणकार्य मोहसे तमोगुणके सर्व कार्य ये
जो आपहसे प्रवृत्त होय तौ उनमे द्वेषबुद्धि न करै और निवृत्त
होय तौ उनकी इच्छा न करै ॥ २२ ॥ उदासीन याने शत्रुमित्र
भावसे रहित सरिखा रहाभया जो गुणोंकरिके याने गुणकार्यों
करिके याने सुखदुःखादि करिके न चलायमान होय, आप आप
के कार्योंमे गुण आपहि वर्तमान होते हैं इनकरिके मेरासंब-
ंधभी नहि, ऐसा जानिके जो स्थित रहता है औ चलायमान
नही होता है ॥ २३ ॥ औ समान मै और दुःख जिसके याने
जो सुख औ दुःखको सम जानता है औ आपके स्वरूपमे आनं-
दसे स्थित है औ कंकर तथा कंचनको सम जानता है याने कं-
करमे त्याज्यबुद्धि औ कंचनमे स्वीकारबुद्धि नही इसीसे तुल्य है

प्रिय औ अप्रिय जिसके इसीसे वह धीर है औ आपकी निंदा तथा स्तुतिकोभी सम जानता है ॥ २४ ॥ औ मान तथा अपमानमेभी समचित्त, तैसेही शत्रुमित्रपक्षमेभी सम औ तैसेही शरीरपोषणसेवाय सर्व आरंभोंका परित्याग करनेवाला पुरुष गुणातीत कहा जाता है ॥ २५ ॥

मूलम् :

मांचयोऽव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते ॥ सगुणान् समतीत्यैतान् ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥ ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्य च ॥ शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकांतिकस्य च ॥ २७ ॥

अन्वयः

यः मां एव अव्यभिचारेण भक्तियोगेन सेवते सः एतान् गुणान् समतीत्यै ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २६ ॥ हियस्मात् अमृतस्य च अव्ययस्य ब्रह्मणः च शाश्वतस्य धर्मस्य च एकांतिकस्य सुखस्य अहं प्रतिष्ठा तस्मात् मम सेवकः ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ २७ ॥

टीका.

जो मेरेहीको अनन्यतासे याने तैलकी धारप्रमाण अखंड भक्तियोग करिके सेवता है तो इन गुणोंका अतिक्रमण करिके ब्रह्मभूयाय याने ब्रह्मभूवयोग्य अर्थात् शुद्ध आत्मस्वरूपको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ क्योंकी, अमृत औ अविनाशी जो ब्रह्म याने आत्मस्वरूप उसकी औ शाश्वतधर्म जो भक्तियोग उत्तकी औ एकांतिक सुख जो आत्मस्वरूपप्राप्तिरूपसुख उसकीभी भैप्रतिष्ठा हों इसीवास्ते जो मेरेको अखंड भक्तियोग करिके सेव है तो आत्मस्वरूपको प्राप्त होता है ॥ २७ ॥

इतीश्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायां यो
गशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादे गुणत्रयविभागयो
गोनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां
श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां चतुर्दशोऽध्यायः
॥ १४ ॥ ॥ ७३ ॥ ॥ ७३ ॥

मूलम्.

श्रीभगवान् उवाच ॥ ऊर्ध्वमूलमधःशाखमश्वत्थं
प्राहुरव्ययं ॥ छंदासियस्य पर्णासियस्तं वेदस
वेदवित् ॥ १ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच यं अश्वत्थं ऊर्ध्वमूलं अधःशाखं अ
व्ययं श्रुतयः प्राहुः तथा छंदासि यस्य पर्णानि प्राहुः
यः तं वेद सः वेदवित् अस्ति ॥ १ ॥

टीका.

क्षेत्राध्यायमे क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूप प्रकृतिपुरुषका स्वरूप कहा औ
परिशुद्धभी पुरुषको प्रकृतगुणसंगप्रवाहके निमित्तदेवादिकआ-
कार करिके परिणामको प्राप्त भया जो प्रकृतिसंबंध सो अनादि
है, ऐसाभी कहा. फिरि चौदहें अध्यायमे यह कहा कि, पुरुषको
जो कार्य श्री कारण अवस्थारूप प्रकृतिसंबंध है सो भगवानहि
का किषाभया है ऐसे कहिके फिरि विस्तारपूर्वक गुणसंगप्र-
वाह प्रतिपादन करिके कहा कि, गुणसंगनिवृत्तिपूर्वक जो आ-
त्मस्वरूपकी प्राप्ति है उसकाभी मूल भगवद्भक्तिही है. अब पंद्रहें
अध्यायमे क्षराक्षरयाने बद्धमुक्त ये विभूति कहिके क्षराक्षरसे
विलक्षण भगवानका पुरुषोत्तमत्व कहेंग तहां प्रथम असंगशास्त्र

करिके छिन्न भया है बंधन जिसका ऐसी अक्षरविभूति कहनेको छेदनेयोग्य रूप जिसका ऐसा बंधन आकार करिके विस्मृत सो प्रकृतिविकार संसार उसको वृक्षरूप कल्पना करिके भगवान कहते भये, जिस संसाररूप अश्वत्थ याने संसाररूपी परके वृक्षको उर्ध्वमूल अधःशाख याने ऊपरको जड़ औ नीचको जिसकी शाखें औ अव्यय याने नाश रहित ऐसा श्रुती कहती हैं जैसे कि ॥ उर्ध्वमूलोऽर्वाक्शाखएषोऽश्वत्थःसनातनः ॥ उर्ध्वमूलमर्वाक्शाखंवृक्षंयोवेदसंप्रति ॥ इत्यादिक औ वेदजिसवृक्षके पत्ते हैं ऐसा श्रुति कहती हैं जो इसको जानै सोईवेदार्थका जाननेवाला है, ऊपरको जो इसका मूल कहा तहां कोई कहते हैं कि, ऊपर पुरुषोत्तम परमात्मा मूल है. ब्रह्मादिकशाखा हैं तहां एक शांका है कि, उसको अव्ययभी कहा है तो जिसका मूल परमात्मा औ अव्यय है तब उसका छेदन करनेका क्या काम है औ जो इसका दृढ असंगशास्त्रसे छेदन किया तो मूल सुद्धा काटना चाहिये नहितो फिरभी होयगा औ जब मूलसहित छेदन किया तो परमात्माकाभी छेदन होता है परंतु परमात्माका छेदन नही सकता इसवास्ते इहां यह अर्थ किया चाहिये कि, उर्ध्व याने सत्यलोकपर चतुर्मुख ब्रह्मा इस संसारवृक्षका आदि है वही मूल रूप है औ अधः याने नीचे पृथ्वी निवासी सर्व मनुष्य पशु पक्षीमृग कीट पतंग स्थावर इन आदिक सब शाखारूप हैं औ यह प्रवाहरूपसे नाशरहित है जैसे पत्तोंसे वृक्ष बढता है ऐसैही वेदसे याने वेदोक्त कर्मसे यह संसारबढता है इसवास्ते इसके पत्ते वेद कहे. ॥ १ ॥

मूलम्

अधश्चोर्ध्वंप्रसृतास्तस्यशाखागुणप्रवृद्धाविषय

प्रवालाः ॥ अधश्चमूलान्यनुसंततानिकर्मानुब
धीनिमनुष्यलोके ॥ २ ॥

अन्वयः

गुणप्रवृद्धाः विषयप्रवालाः तस्य शाखाः अधः च ऊर्ध्वं
अपिप्रसृताः च तस्य वृक्षस्य अधः अपि मनुष्यः लोके
मर्कानुबंधीनि मूलानि अनुसंततानि ॥ २ ॥

टीका.

उसवृक्षकी औरभी विलक्षणता कहते हैं. गुणप्रवृद्धाःयाने
सत्वादिकगुणोंकरिके बढी भई श्री शब्दादिक विषय जिनके
कोमल पत्ते हैं ऐसी उस संसारवृक्षकी शाखें नीचे औ उपरभी
फैलीं हैं, नीचे तौ नीचकर्मसे मनुष्योंसे नीच पश्वादिकरूप औ
ऊपर उत्तमकर्मसे देवादिशरीर औ इस वृक्षकी मूलें याने ज-
हैं जो कर्मके बंधनसे भई हैं वै नीचेभी मनुष्यलोकमे फैलि
रहीं हैं याने नीच, मध्यम औ श्रेष्ठ ऐसे जो कर्म हैं वै इस
मनुष्य लोकही मे व्ही सकते हैं. वै कर्मही संसारवृक्षके मूल
हैं, उनहीसे उर्ध्वं श्री अधोगती होती है इसवास्त मनुष्य-
लोकमेभी मूल है. ॥ २ ॥

मूलम.

नरूपमस्येहतयोपलभ्यतेनांतोनचादिर्नचसंप्र
तिष्ठा ॥ लश्वत्थमेनंसुविरूढमूलमसंगशस्त्रेण
दृढेनछित्वा ॥ ३ ॥ ततःपदंतत्परिमार्गितव्यं
यस्मिन्गताननिवर्ततिभूयः ॥ तमेवचाद्यंपुरुषं
प्रपद्येतःप्रवृत्तिःप्रसृतापुराणि ॥ ४ ॥

अन्वयः

अस्य संसारवृक्षस्य रूपं द्रह तथा न उपलभ्यते च अ

टीका.

जिसके मान औ मोह नहीं औ जीते हैं संगके दोष जिनोंने औ अध्यात्मशास्त्रके नित्य अभ्यास करनेवाले इसीसे जिनकी कामनाभी निवृत्त भई है इसीसे सुखदुःखसंज्ञिक द्वंद्वीसेभी छुटे भये हैं. वै श्रात्मज्ञानी उस अविनाशी पदकोयाने स्वस्वरूप को प्राप्त होते हैं. ॥ ५ ॥

मूलम्.

नतद्भासयतेसूर्यो न शशांको न पावकः ॥ यद्गत्वा
न निवर्त्तते तद्दाम परमं मम ॥ ६ ॥

अन्वयः

तत् आत्मज्योतिः सूर्यः न भासयते शशांकः न भास-
यते पावकः न भासयते यत् गत्वा न निवर्त्तते तत्तु
मम परमं धाम ॥ ६ ॥

टीका.

उस आत्मज्योतिको सूर्य, चंद्र औ अग्नि ये प्रकाशि सकते नहीं कारण वह ज्ञानाकार सबका प्रकाशक है जिसको प्राप्त व्हेके फिरि संसारी नहीं होते है वह श्रेष्ठधाम याने श्रेष्ठ ज्योति मेरा याने मेरी श्रेष्ठ विभूति मेरा अंश है सूर्यादिकोंकाभी प्रकाश है इसते उसका श्रेष्ठत्व है. ॥ ६ ॥

मूलम्.

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ॥ मनः प
ष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥ ७ ॥

अन्वयः

एवं उक्तस्वरूपः सनातनः मम एव अंशः सन् जीवलोके
जीवभूतः प्रकृतिस्थानि मनः पष्ठानि इंद्रियाणि कर्षति ॥ ७

स्य अंतः न उपलभ्यते च आदिः न उपलभ्यते च सं-
प्रतिष्ठा न उपलभ्यते सुविरूढमूलं एनं अश्वत्थं दृढेन अ-
संगशस्त्रेण छित्वा ॥३॥ ततः च यतः सकाशात् पुराणि
प्रवृत्तिः प्रसृता तं एव आद्यं पुरुषं प्रपद्ये तत्पदं परिमार्गि
तव्यं यस्मिन् गतः भूयः न निवर्तति ॥ ४ ॥

टीका.

इस संसारवृक्षका मूल ब्रह्मा कहा औ शाखा मनुष्यादिक
कहे, ऐसे ऊपर मूल नीचे शाखा कहीं औ फिरि कहा कि, मनु-
ष्यलोकमे कराभया जो शुभाशुभकर्म है सोभी मूल है औ इस
ते जो जो लोक प्राप्त होते हैं वेई शाखा हैं जो ऐसा यह रूप
कहा सो इस लोकमे संसारी लोगौ करिके जाननेमे नही आ-
ताहै औ इसका अंतभी जाना नही जाता है ऐसेही आदि याने
उत्पत्ति औसंप्रतिष्ठा याने स्थितिभीजानीनही जाती है, ऐसा
जो यह मूलका संसार वृक्ष इसको असंगरूप शस्त्रसे छेड़न
करिके ॥३॥ फिरि जिससे यह प्राचीन प्रवृत्ति याने गुणमय भो-
गरूपसंसारप्रवृत्तिविस्तृत है उसी आदिपुरुषकीशरणप्राप्तव्हेके
उसपदको ढूंढाना कि जिसको प्राप्त व्हेके फिरि जन्मता नही ॥४॥

मूलम्.

निर्मानमोहाजितसंगदोषाअध्यात्मनित्याविनि
वृत्तकामाः ॥ द्वंद्वैर्विमुक्ताःसुखदुःखसंज्ञैर्गच्छन्त्य
मूढाःपदमव्ययंतत् ॥ ५ ॥

अन्वयः

ये निर्मानमोहाः जितसंगदोषाः अध्यात्मनित्याःविनि
वृत्तकामाः सुखदुःखसंज्ञैः द्वंद्वैः विमुक्ताः ते अमूढा त
त् अव्ययं पदं गच्छन्ति ॥ ५ ॥

टीका.

ऐसे वर्णन कियाहुवा स्वरूप सनातन मेरा अंश याने मेरा ही संबंधी मेरा अनुचर शुद्धचैतन्यहै तौभी, जीवलोकमे जीवंभूत याने अति संकुचितज्ञानवान् अर्थात् अल्पज्ञ वहैके प्रकृतिसंबंधी मनुष्यादि शरीरोंमे स्थित पांच ज्ञानइंद्रिय एक छटा मन इनको खींचता भया स्वकर्मानुसार शरीरोंमे फिरता है. इहां को ई अंशका यह अर्थ करते हैं कि, अंगका एक भाग याने एक टुकडा तौ जब जीवहीको अच्छेय, अभेद्य कहते हैं तब परमात्माका टुकडा कैसे न्यारा वहैके जीवलोकमे आया इसवास्ते वैमोहसे कहते हैं. अंश नाम स्वकीयपदार्थका यही अर्थ सिद्धांत दीखता है. ॥ ७ ॥

मूलम्.

शरीरं यदा प्राप्नोति यच्चाप्युक्तामतीश्वरः ॥ गृही
त्वैतानि संयाति वायुर्गंधानि वाशयात् ॥ ८ ॥

अन्वयः

यत् यदा शरीरं प्राप्नोति च यत् यदा शरीरात् उत्क्रामति तदा वायुः आशयात् गंधान् इव अयं इंद्रियादिनां ईश्वरः एतानि मनः पट्टेन्द्रियाणि गृहीत्वा संयाति ॥ ८ ॥

टीका.

जब दूसरे शरीरको प्राप्त होता है औ जब वर्तमानशरीरको त्यागिके जाता है तब जैसे वायु कस्तुरी इत्यादि गंधाशय भैसे गंधको लैके अन्यत्र जाता है तैसे यह इंद्रियादिकोंका ईश्वर जीवात्मा मनसंयुक्त इंद्रियोंको यान पांच ज्ञानेन्द्रिय औ छटे मनको संग लैके जाता है. ॥ ८ ॥

मूलम्.

श्रोत्रं चक्षुःस्पर्शनं चरमनं घ्राणमेव च ॥ अविष्टा

यमनश्चायंविषयानुपसेवते ॥ ९ ॥

अन्वयः

अयं जीवात्मा श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं च घ्राणं च मनःएतानि एव अधिष्ठाय विषयान् उपसेवते ॥ ९ ॥

टीका.

यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षुः, स्पर्शन, रसना, घ्राण और मन याने कान, नेत्र, त्वचा, वाणी, नासिका और मन इनको अपने विषय भोगके अनुकूल करिके शब्दादिक विषयोंको भोगता है. ॥ ९ ॥

मूलम्

उक्कामंतंस्थितंवापिभुंजानंवागुणान्वितं ॥ विमूढानानुपश्यंतिपश्यंतिज्ञानचक्षुषः ॥ १० ॥

अन्वयः

एनं गुणान्वितं उक्कामंतं वा स्थितं वा भुंजानं अपि विमूढाः न अनुपश्यंति ज्ञानचक्षुषः पश्यंति ॥ १० ॥

टीका.

गुणयुक्त इस आत्माको याने सत्त्वादिगुणमय प्रकृति परिणामइंद्रिययुक्त इसको देहसे निकसते वखत औ देहमे स्थितको और विषयभोगते भयेकोभी अज्ञानी लोग नहीं देखते है, याने इसके स्वरूपको निश्चय नहीं करि सकते हैं औ जिनके ज्ञानरूप नेत्र हैं वै ज्ञानी देखते हैं याने ज्ञानद्वारानिश्चय करते हैं. १०

मूलम्.

यतंतोयोगिनश्चैनंपश्यंत्यात्मन्यवस्थितं ॥ यतंतोऽप्यकृतात्मानोनैनंपश्यंत्यचेतसः ॥ ११ ॥

अन्वयः

योगिनःयतंतःसंतः आत्मनि अवस्थितं एनं पश्यंति च

अकृतात्मानः यतंतः अपि अचतेसः एनं न पश्यंति ॥११॥

टीका.

योगी यत्न करते करते योगबलसे आपके अंतःकरणमे स्थित इस आत्माको शरीरेंद्रियसे न्यारा देखते है याने जानते हैं औ जिनका चित्त शुद्ध नहीं है वैमंदबुद्धिवाले शास्त्र-द्वारा यत्न करतेभी नहीं निश्चय करि सकते हैं. ॥ ११ ॥

मूलम्.

यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयते खिलं ॥ यच्चंद्र-
मसि यच्चाग्नी तत्तेजो विद्धि मामकं ॥ १२ ॥

अन्वयः

यत् आदित्यगतं तेजः अखिलं जगत् भासयते यत्
चंद्रमसि च यत् अग्नी तत् तेजः मामकं विद्धि ॥ १२ ॥

टीका.

अब यह कहते हैं कि, सूर्यादिकोंमे भी जो तेज है सो भी मेरी ही विभूति है; जैसे कि, जो सूर्यमे प्राप्त भया तेज सब जगतको प्रकाशता है औ जो चंद्रमामे है, अग्निमे है, सो तेज मेरा ही है याने उनोंने जब मेरा आराधन किया तब उनको मैने ही दिया है. ॥ १२ ॥

मूलम्.

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्य च मोजसा ॥ पु-
ष्णामि च औषधीः सर्वाः सोमो भूत्वारसात्मकः ॥ १३ ॥

अन्वयः

अहं गां आविश्य भूतानि ओजसा धारयामि च रसा-
त्मकः सोमः भूत्वा सर्वाः औषधीः पुष्णामि ॥ १३ ॥

टीका.

मै पृथिवीमे प्रवेश करिके अपनी अचिंत्यसामर्थ्य करिके भूतप्राणीमात्रको धारण करता हौं और अमृतरसमय चंद्रमा व्हैके सर्व औषधियोंके पोषण करता हौं. ॥ १३ ॥

मूलम्.

अहंवैश्वानरोभूत्वाप्राणिनां देहमाश्रितः ॥ प्रा
णापानसमायुक्तः पचास्यन्नंचतुर्विधम् ॥ १४ ॥

अन्वयः

अहं वैश्वानरः भूत्वा प्राणिनां देहं आश्रितः सन् प्रा-
णापानसमायुक्तः चतुर्विधं अन्नं पचामि ॥ १४ ॥

टीका.

मै वैश्वानर व्हैके याने जठराग्नि व्हैके प्राणिमात्रकी देहोंमे रहा भया प्राणवायु औ अपानवायु संयुक्त चतुर्विध याने भक्ष्य, क्षोज्य, लेह्य, पेय, इन भेदों करिके चारिप्रकारका अन्न पचाता हौं. ॥ १४ ॥

मूलम्.

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिज्ञानमपो
हनंच ॥ वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदांतकृद्वेदविदेव
चाहं ॥ १५ ॥

अन्वयः

अहं सर्वस्य हृदि सन्निविष्टः च मत्तः सर्वस्य स्मृतिः
ज्ञानं च अपोहनं भवति च सर्वैः वेदैः वेद्यः अहं एव
च वेदांतकृत् च वेदवित् अहं एव ॥ १५ ॥

अन्वयः

मै सर्वप्राणिमात्रके हृदयोंमे प्रविष्ट हौं औ मेरेहीमे सबकी स्मृति ज्ञान औ वितर्क हैं औ सर्ववेदों करिके जाननेयोग्य मही

हौंश्रौवेदांतकाकर्ता तथा वेदका जाननेवाला भीमही हौं ॥ १५ ॥

मूलम्.

द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ॥ क्षरः सर्वा
णि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ॥ १६ ॥

अन्वयः

लोके क्षरः च अक्षरः एव इमौ द्वौ पुरुषौ स्तः तत्र सर्वा
णि भूतानि क्षरः च कूटस्थः अक्षरः इति मुनिभिः उच्यते ॥ १६
टीका.

लोकमे क्षर औ अक्षर यै दो प्रकारके पुरुष याने जीव हैं तहां
सर्वभूत याने प्रकृतिसंसर्गसे बंधे भये जीव क्षर हैं औ कूटस्थ
जो मुक्त वै अक्षर हैं ॥ १६ ॥

मूलम्.

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ॥ यो
लोकत्रयमाविश्य विभर्त्यव्यय ईश्वरः ॥ १७ ॥

अन्वयः

उत्तमः पुरुषः तु क्षराऽक्षराभ्यां अन्यः परमात्मा इति उ-
दाहृतः यः ईश्वरः अव्ययः लोकत्रयं आविश्य विभर्ति ॥ १७
टीका.

उत्तमपुरुष तौ इन क्षर औ अक्षरसे अर्थात् बद्धमुक्तसे
अन्य है जिसेको परमात्मा कहते हैं जो सर्व चराचरमे औ
मुक्तमेभी प्रवेश करिके सबका भरण पोषण करता है. वह ई-
श्वर अविनाशी है. ॥ १७ ॥

मूलम्.

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ॥ अतो
ऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ॥ १८ ॥

अन्वयः

यस्मात् अहं क्षरं अतीतः च अक्षरात् अपि उत्तमः अस्मि
अतः लोके च वेदे पुरुषोत्तमः इति प्रथितः अस्मि ॥ १८ ॥

टीका.

जिसवास्ते कि, मैं क्षरसे न्यारा औ अक्षरसेभी उत्तम अर्थात्
बद्ध औ मुक्त इन दोनोंसे न्यारा औ उत्तम हौं, इसीवास्ते लो-
क जो स्मृति औ वेद तिनमेभी पुरुषोत्तम करिके प्रसिद्ध हौं. १८

मूलम्.

योमामेवमसंमूढोजानातिपुरुषोत्तमं ॥ ससर्व
विद्वज्जतिमांसर्वभावेनभारत ॥ १९ ॥

अन्वयः

हे भारत यः असंमूढः एवं पुरुषोत्तमं मां जानाति सः
सर्वतित् सर्वभावेन मां भजति ॥ १९ ॥

टीका.

हे भारत याने अर्जुन! जो ज्ञानी पुरुष ऐसे क्षराक्षर पुरुषो-
त्तम मेरेको जानता है सो सर्वज्ञ है, इसीसे वह सर्व भा-
वना करिके मेरेहीको भजता है. ॥ १९ ॥

मूलम्.

इतिगुह्यतमंशास्त्रमिदमुक्तंमयाऽनघ ॥ एतद्बु
ध्वाबुद्धिमान्स्यात्कृतकृत्यश्चभारत ॥ २० ॥

अन्वयः

हेअनघ इति मया उक्तं इदं शास्त्रं गुह्यतमं अस्ति हे भारत
एतत् बुध्वा बुद्धिमान् च कृतकृत्यः स्यात् ॥ २० ॥

टीका.

हे निष्पाप अर्जुन! ऐसे मैने जो कहा सो यह शास्त्र अति गौप्य है

भारत इसको जानिके बुद्धिमान् औ कृतकृत्य होता है. ॥ २० ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
योगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसंवादे पुरुपोत्तमयोगो
नामपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां
श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषा टीकायांपंचदशोऽध्यायः
॥ १५ ॥

मूलम्

श्रीभगवानुवाच ॥ अभयंसत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयो
गव्यवस्थितिः ॥ दानंदमश्चयज्ञश्चस्वाध्यायस्त
पआर्जवं ॥ १ ॥ अहिंसासत्यमक्रोधस्त्यागः
शांतिरपैशुनं ॥ दयाभूतेष्वलोलुप्त्वंमार्दवंह्रीर
चापलं ॥ २ ॥ तेजःक्षमाधृतिःशौचमद्रोहोना
तिमानिता ॥ भवंतिसंपदंदैवीमभिजातस्य
भारत ॥ ३ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच हेभारत अभयंसत्त्वसंशुद्धिःज्ञानयो-
गव्यवस्थितिः दानं दमः च यज्ञः च स्वाध्यायः तपः आ-
र्जवं ॥ १ ॥ अहिंसा सत्यं अक्रोधः त्यागः शांतिः अपैशु-
नं भूतेषु दया अलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीः अचापलं ॥ २ ॥ ते
जः क्षमाधृतिः शौचं अद्रोहः नातिमानिता एते गुणाः दै-
वीं संपदं अपिजातस्य भवंति ॥ ३ ॥

टीका.

तेरहेअध्यायको लैके पंद्रहेपर्यंत क्षेत्र औ क्षेत्रज्ञका विवेक

श्री गुणत्रयका विभाग औ बद्धमुक्त क्षराक्षरका स्वरूप औ पर-
मात्माका पुरुषोत्तमत्व तथा सामर्थ्य वर्णन किया, अब तोरहवे
अध्यायमे जीवकीशास्त्रवश्यता श्री देवासुरसंपत्विभाग कहा
तेहैं, अभय इहांसे लैके श्रीकृष्णभगवान कहते भये कि, हेभरतवं
शोत्पन्न हेअर्जुन! अभय औ अंतःकरणकी शुद्धि ज्ञानयोगव्यव-
स्थिति याने प्रकृतिवियुक्त आत्मस्वरूपमे निष्ठा दान जो न्याय
करिके संग्रह किये द्रव्यको सुपात्रके अर्पण करना, दम मनको
विषयोंसे निवृत्त करना. यज्ञ फलानुसंधानरहित भगवदाराध-
नरूपपंचमहायज्ञोंका अनुष्ठान. स्वाध्याय वेदाभ्यासमंत्रजपादि
कतप क्लृवांद्रायणरूप भगवदाराधन आर्जव सरलता याने स-
बसेसीधेरहना ॥ १ ॥ अहिंसा परपीडाको नकरना. सत्य यथार्थ
श्रीहितवाक्य अक्रोध. चित्तमे पर पीडाका निमित्त लाइके क्रोध
न करना त्याग उदारता शान्तिः इंद्रियोंको विषयमे निवृत्त कर
ना अपैशुनं किसीके पिछाडी उसके दोष न कहना याने चुगली
न करना. भूतेषु दया दीनजनौपर अनुकंपा अलोलुब्धं अलोभ
तः वापियोंमे अस्पृहा मार्दवं अक्रूरताह्रीः लज्जा चापलं
व्यर्थक्रियाका न करना ॥ २ ॥ तेजःदुर्जनौसे न हारना क्षमा
सामर्थ्यहोनेसेभी आपने अपकारीपर दया करना. धृति धीरज
शौच बाह्याभ्यांतरशुद्धि अद्रोह द्रोह न करना अमानिता आप-
कोअतिपूज्य मानिके मनन करना ये छब्बीस गुण जिसको दे
वीसंपदा प्राप्त होती है उसके होते हैं. ॥ ३ ॥

मूलम्.

दंभोदर्योऽभिमानश्चक्रोधःपारुष्यमेवच ॥

अज्ञानंचाभिजातस्यपार्थसंपदमासुरीम् ॥ ४ ॥

अन्वयः-

हे पार्थ! दंभः दर्पः अभिमानः क्रोधः च पारुष्यं च अज्ञानं
एवं एते गुणाः आसुरीं संपदं अभिजातस्य भवन्ति ॥ ४ ॥

टीका.

हे पृथापुत्र! दंभ याने मनमे कपट राखिके लोकौके देखानेको
धर्म आचरण करना, दर्प याने धन विद्यादिकका गर्व, अभिमान
याने अहंकार, क्रोध याने गुस्सा, पारुष्य याने कठिन भाषण, औ
अज्ञान याने अविवेक, ये यतने अवगुण जो आसुरी संपदा-
को प्राप्त भया है उसके होते हैं ॥ ४ ॥

मूलम्.

दैवीसंपद्विमोक्षायनिबंधायासुरीमता ॥ माशुचः
संपदंदैवीमभिजातोऽसिपांडव ॥ ५ ॥

अन्वयः

हे पांडव दैवीसंपत् विमोक्षाय आसुरी संपत् निबंधस्य
मता त्वं दैवीं संपदं अभिजातोऽसि अतः माशुचः ॥ ५ ॥

टीका.

हे पंडुपुत्र! जो दैवी संपदा है सो मोक्षके वास्ते है औ आ-
सुरी संपदा बंधनके वास्ते है. तुम दैवीसंपदाको प्राप्तभये हौ,
इसवास्ते शोच न करौ. ॥ ५ ॥

मूलम्.

द्वौभूतसर्गौलोकेऽस्मिन्दैवअसुरएवच ॥ दैवोवि
स्तरशःप्रोक्तअसुरंपार्थमेशृणु ॥ ६ ॥

अन्वयः

हे पार्थ अस्मिन् लोके भूतसर्गौ द्वौ स्तः दैवः च आ
सुरः एव तत्र दैवः प्रोक्तः आसुरं मे शृणु ॥ ६ ॥

टीका.

हे अर्जुन! लोकमे भूतोंकी उत्पत्ति दोप्रकारकी है, दैव औ असुर तिनमे दैव तौ विस्तारपूर्वक कहा अब आसुर कहता हौं सो सुनौ ॥ ६ ॥

मूलम्.

प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंचजनानविदुरासुराः ॥ नशौचं
नापिचाचारोनसत्यंतेषुविद्यते ॥ ७ ॥

अन्वयः

आसुराः जनाः प्रवृत्तिं च निवृत्तिं अपि न विदुः च तेषु
शौचं नविद्यतेच आचारः नविद्यते चसत्यं अपि नविद्यते ॥ ७ ॥

टीका.

आसुराः याने आसुरीसंपदाको प्राप्तभये मनुष्य वै प्रवृत्ति
जो संसारसाधन औ निवृत्ति जो मोक्षसाधन इन दोनौको
नहीं जानते हैं औ उनसे शौचभी नहीं औ आचारभी नहीं
आ सत्यभी नहीं रहता है याने वै बाहेर औ अंतःकरणमे प-
वित्रभी नहीं रहते हैं औ सदाचार जो संध्यावंदनादिक जिस
ते पवित्र होते हैं वह पवित्र होनेका साधन आचारभी नहीं
करते हैं कहा है कि ॥ संध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हःसर्वकर्मसु ॥
इति. तथा वै सत्य भाषणभी नहीं करते हैं. ॥ ७ ॥

मूलम्.

असत्यमप्रतिष्ठंतेजगदाहुरनीश्वरम् ॥ अपररूप
रसंभूतंकिमन्यत्कामहेतुकम् ॥ ८ ॥

अन्वयः

ते जगत् असत्यं अप्रतिष्ठं अनीश्वरं आहुः अपरस्परसंभू-
तं अन्यत् किं न किमपि अतः इदं कामहेतुकं एव ॥ ८ ॥

टीका.

वै आसुरप्रकृतिवाले पुरुष जगतको असत्य कहते हैं याने यह जगत् मिथ्या है ऐसे कहते हैं औ अप्रतिष्ठित कहते हैं तथा अनीश्वर कहते हैं औ कहते हैं कि, इस जगतमे स्त्रीपुरुषके संयोगविना क्याहै? अर्थात् कुछभी नहीं. सर्व मनुष्य पशु इत्यादिक स्त्रीपुरुषके संयोगहीसे होता है इसवास्ते उत्पत्तिकारण कामही है ऐसा कहते हैं. इहां यह निश्चय होता है कि, इन आसुरीप्रकृति वालोंमेंभी मतभेद है, क्यों कि जो असत्य कहि चुका सो अप्रतिष्ठित औ अनीश्वर कामहेतुसे परस्पर उत्पन्न है ऐसा क्यों कहेंगा. जो मिथ्या है उसकी प्रतिष्ठा वगैरे कहां हैं इसवास्ते यह निश्चय होता है कि, कोई आसुरीप्रकृतिवाले जगत्को मिथ्या कहते हैं औ कोई अप्रतिष्ठित कहते हैं औ कोई अनीश्वर कहते हैं तथा कोई कहते हैं कि कामचेष्टासे परस्पर स्त्रीपुरुषसे उत्पन्न है. ॥ ८ ॥

मूलम्.

एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोल्पबुद्धयः ॥ प्रभव
त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोहिताः ॥ ९ ॥

अन्वयः

ते नष्टात्मानः अल्पबुद्धयः एतां दृष्टिं अवष्टभ्य सर्वेषां अ-
हिताः जगतः क्षयाय उग्रकर्माणः प्रभवन्ति ॥ ९ ॥

टीका.

वै आसुरप्रकृतिवाले नष्टात्मानः याने देहसे भिन्न आत्माको न देखते भये अथवा नष्टात्मानः याने अदृश्य भई है ईश्वरविषयिक बुद्धि जिनकि इसीसे उनकी बुद्धिभी अल्पपदार्थोंमें रहती है याने खानपानादिकहिमें रहती है संध्यादिक कर्मोंमें नहीं.

जैसे कि कहा है ॥ संध्यावंदनवेलायांब्रह्माहमितिमन्यसे ॥ खंड मोदकवेलायांदंडमुद्यम्यधावसि ॥ अर्थ संध्याकरनेके वखत कहते है कि, हम ब्रह्म हैं हमको कर्म करनेसे क्या प्रयोजन है श्री स्वांडके लडुन्को सुनिके हाथमे दंडलैके भोजनको दौडते हैं, ऐसे तुच्छ विषयादिकोंमेभी बुद्धिवाले इसी दृष्टिका आश्रय करिके सबके अहित याने किसीका द्रव्य किसीकी स्त्री औ किसीके पुत्रको भ्रमायके हरनेवाले इसीसे वै जगतके नाश करनेको उग्रकर्म करनेवाले होते हैं; याने कोई स्त्रीको भ्रमायके आप भोगते है औ उसके पतीसे विरोध कराते है श्री कोई दूसरेका द्रव्य अनेक पापंडकरिके हरते है श्री कोई किसीके पुत्रको भ्रमायके उनका विधोग कराते है. ऐसे कृष्णभगवानने जो कहेथे सो इसकालमे बहुत देखनेभी आते हैं. ॥ ९ ॥

मूलम.

काममाश्रित्यदुष्पूरंदंभमानमदान्विताः ॥ मो
हादृहीत्वाऽसद्रूहान्प्रवर्ततेऽशुचिव्रताः ॥१० ॥

अन्वयः

ते दुष्पूरं कामं आश्रित्य दंभमानमदान्विताः संतः मोहात् असद्रूहान् गृहीत्वा अशुचिव्रताः अशुचौ कर्मणि प्रवर्तते ॥ १० ॥

टीका.

वै आसुरीप्रकृतिवाले दुष्पूर याने दुःखकरिके पुरनेमे आवै अर्थात् परस्त्रियोंको अनेक प्रकारसे बडे दुःखसे जब अपने बश करै तब 'कुछ कामभोगकी प्राप्ति होय तौभी अनेक स्त्रियोंसे भी तृप्ति न होय ऐसे कामको आश्रय करिके दंभ करै याने अनेक कपट करै. जैसे कि, मै तेरे पतीको तेरे बशकरि देउंगा. तेरे

पुत्र नहीं होता है सोभी मैं देउंगा तू मेरेपास आइके मेरी आज्ञा प्रमाण रहाकर ऐसे अनेक कपट करै औ मान तथा गर्व याने हम सिद्ध हैं, ऐसे व्हैके मोहसे असद्राहोंको गृहण करिके अपवित्र व्रत भये हुये अपवित्रकर्मोंमे प्रवर्त्त हांते हैं याने मोहको प्राप्त व्हैके असद्राह याने मारण, मोहन, वशीकरणादिक सिद्ध करनेके वास्ते भूत प्रेत मसानोंकी सिद्धि चाहते भये उनहीके व्रतादिककरतेभये हुये अपवित्र कर्म याने भूतादिक साधनको मद्य पशु, हिंसा इत्यादि कर्म करते हैं. ॥ १० ॥

मूलम्.

चिंतामपरिमेयांचप्रलयांतामुपाश्रिताः ॥ कामोपभोगपरमाएतावदितिनिश्चिताः ॥ ११ ॥ आशापाशशतैर्बद्धाःकामक्रोधपरायणाः ॥ ईहंते कामभोगार्थमन्यायेनार्थसंचयान् ॥ १२ ॥

अन्वयः

अपरिमेयां च प्रलयांतां चिंतां उपाश्रिताः संतः कामोपभोगपरमाः एतावत् इतिनिश्चिताः ॥ ११ ॥ आशापाशशतैः बद्धाः कामक्रोधपरायणाः कामभोगार्थं अन्यायेन अर्थसंचयान् ईहंते ॥ १२ ॥

टीका.

अपरिमेया याने बेपरमान औ भरनपर्यंत जो रहै ऐसी चिंताको धारणकरि रहेहुये कामभोगही श्रेष्ठ है ऐसा मानि रहे भये औ कामभोगके सेवाय दूसरा सब तुच्छ है ऐसा मानि रहे भये ॥ ११ ॥ आशा रूपी सैकड़ों पाशोंमे बंधे इधरउधर खिचि रहे भये काम औ क्रोधको घर किये भये ऐसे पुरुष कामभोगके वास्ते अन्यायसे याने धर्मविरुद्ध धनसंग्रहके वास्ते उपाय

करते हैं. ॥ १२ ॥

मूलम्.

इदमद्यमया लब्धमिमं प्राप्स्येमनोरथं ॥ इदम
स्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्द्धनं ॥ १३ ॥ असौ
मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ॥ ईश्वरोऽहम्
हं भोगी सिद्धो हं बलवान् सुखी ॥ १४ ॥ आढ्यो
भिजनवानस्मि कोऽन्योऽस्ति सदृशो मया ॥ य
क्ष्ये दास्यामि मोदिष्ये इत्यज्ञानविमोहिताः ॥
॥ १५ ॥ अनेकचित्तविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः ॥
प्रसक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥ १६ ॥

अन्वयः

मया अद्य इदं लब्धं अहं इमं मनोरथं प्राप्स्ये इदं धनं
मे अस्ति पुनः अपि मे इदं धनं भविष्यति ॥ १३ ॥ मया
असौ शत्रुः हतः च अहं अपरान् अपि शत्रून् हनिष्ये अ
हं ईश्वरः अहं भोगी अहं सिद्धः अहं बलवान् अहं सुखी
॥ १४ ॥ अहं आढ्यः अहं अभिजनवान् अस्मि मया
सदृशः अन्यः कः अस्ति अहं यक्ष्ये अहं दास्यामि अहं
मोदिष्ये इति अज्ञानविमोहिताः ॥ १५ ॥ अनेकचित्त
विभ्रान्ताः मोहजालसमावृताः कामभोगेषु प्रसक्ताः सं-
तः अशुचौ नरके पतन्ति ॥ १६ ॥

टीका.

मैने आज यह पाया औ मै इस मनोरथको फिरि पावौंगा-
यह धन मेरे है औ फिरिभी यह धन मेरे होयगा ॥ १३ ॥ युद्धौं मे
यह शत्रु मारा औ मै औरभी शत्रुनको मारौंगा. मै ईश्वर हौं मे
भोगी हौं मै सिद्ध हौं मै बलवान् हौं मै सुखी हौं ॥ १४ ॥ मे ध-

नाढ्य हौं मैं उत्तमकुलमे जन्मा हौं मेरे मानसा दुसरा है कौन
मै यज्ञ करौंगा मै दान देउंगा मै आनंदको प्राप्त होउगा जैसे ई-
श्वर वश्यताको न जानते भये अज्ञानसे मोहित ॥ १५ ॥ अनेक क
मैंमि चित्त लगा है निजका इसवास्ते यह करौं कि, यह करौं औ
से धर्मको प्राप्त भये हुये मोहरूप जामले फसे भये काम भोगमे
आसक्त जैसे पुरुष अपवित्र नरक याने घोरनरकमे पडते है १६

मूलम्

आत्मसंभाविताःस्तब्धाधनमानमदान्विताः ॥
यजंतेनामयज्ञैस्तेदंभेनाऽविधिपूर्वकं ॥ १७ ॥
अहंकारंबलंदर्पकामंक्रोधंचसंश्रिताः ॥ मामा
त्मपरदेहेषुप्रद्विषंतोभ्यसूयकाः ॥ १८ ॥ तानहं
द्विषतःक्रूरान्संसारेषुनराधमान् ॥ क्षिपाम्यज
स्रमशुभानासुरीष्वेवयोनिषु ॥ १९ ॥ आसुरीं
योनिमापन्नामूढाजन्मनिजन्मनि ॥ मामाप्रप्यौ
वकौंतेयततोयांत्यधमांगतिं ॥ २० ॥

अन्वयः

ये आत्मसंभाविताः स्तब्धाः धनमानमदान्विताः तेदं
भेन अविधिपूर्वकं नामयज्ञैः यजंते ॥ १७ ॥ च अहंका
रंबलं दर्पकामं क्रोधं संश्रिताः संतः मां आत्मापरदेहेषु
द्विषतः अभ्यसूयकाः संति ॥ १८ ॥ अहं तान् द्विषतः
क्रूरान् अशुभान् नराधमान् संसारेषु अज स्रं आसुरीं
योनिषु एव क्षिपामि ॥ १९ ॥ हे कौंतेय ते मुढाः ज
न्मनि जन्मनि आसुरीं योनिं आपन्नाः संतः मां अ-
प्राप्य ततः अधमां एव गतिं यांति ॥ २० ॥

टीका.

जो आत्मसंभावित हैं याने आपकी प्रसंसा आपही करि लेते हैं औ अनन्य इसीसे धन मान औ मद करिके युक्त भये हुये दंभकरिके अविधिपूर्वक नाममात्र यज्ञोंको करते हैं याने देखने भरको करते हैं १७ ॥ औ अहंकार बल दर्प काम क्रोध इनके आश्रित भये हुये मेरेको आपके औ दूसरेकेभी दे हैं मे रहे भयोका द्वेष करते भये मेरी निंदा करते हैं ॥ १८ ॥ ये उन द्वेषकरनेवाले क्रूर अशुभ नराधर्मोंको संसारमे वारंवार आसुरीयोनियोमेही डालता हैं ॥ १९ ॥ हे अर्जुन वै! मूर्ख जन्मोंजन्म आसुरीयोनिमे प्राप्त भये हुये मेरेको न प्राप्त व्हे के फिरी अधमही गतीको जाते हैं ॥ २० ॥

मूलम्.

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ॥ कामः
क्रोधस्तथालोभस्तस्मादेतन्नयं त्यजेत् ॥ २१ ॥
एतैर्विमुक्तः कौंतेय तमो द्वारैस्त्रिभिर्नरः ॥ आचर
त्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिं ॥ २२ ॥

अन्वयः

कामः क्रोधः तथा लोभः इति इदं त्रिविधं नरकस्य
द्वारं आत्मनः नाशनं तस्मात् एतत् त्रयं त्यजेत् ॥
॥ २२ ॥ हे कौंतेय एतैः त्रिभिः तमो द्वारैः विमुक्तः सन्
आत्मनः श्रेयः आचरति ततः परां गतिं याति ॥ २२ ॥

टीका.

अब आसुरस्वभावमे जो मूलकारण आत्मनाशक उन्हे देखाते हैं काम क्रोध औ लोभ एते यह तीन प्रकारका नरकका द्वार याने नरकका मार्ग आत्मनाशन याने आत्माको अधोगति

फोलै जानेवाला है इसवास्ते इनतीनों को त्यागना अर्थात्स्व-
वश करना नहींतौ जो सर्वथा त्याग कहेंगे तौ अर्जुन युद्ध किस-
वास्ते करैगे इसवास्ते इहांभी सात्विकरीतीप्रमाण त्याग कहते
हैं ॥ २१ ॥ हेकुंतीपुत्र! ये तीनों नरकप्राप्तिकारणोंसे छुटा भया
पुरुष याने इनको श्रेष्ठ न मानता भया जो रहता है सो आपके
कल्याणके वास्ते शुभ आशरण करता है. उस आचारसे परम-
गती जो मैं सो मेरेको प्राप्त होता है ॥ २२ ॥

मूलम्.

यःशास्त्रविधिमुत्सृज्यवर्ततेकाममारतः ॥ नस
सिद्धिमवाप्नोतिनसुखंनपरांगतिं ॥ २३ ॥ त
स्माच्छास्त्रंप्रमाणंतेकार्याकार्यव्यवस्थितौ ॥
ज्ञात्वाशास्त्रविधानोक्तंकर्मकर्तुमिहार्हसि ॥ २४

अन्वयः

यःशास्त्रविधिं उत्सृज्य कामकारतः वर्तते सः सिद्धिं न
अवाप्नोति न सुखं अवाप्नोति न परां गतिं अवाप्नोति ॥
॥ २३ ॥ तस्मात् ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ शास्त्रं प्रमाणं
स्यात् इह शास्त्रविधानोक्तं ज्ञात्वा कर्मकर्तुं अर्हसि ॥ २४ ॥

टीका.

प्रथम कहे त्यागका खुलासा करते हैं जो शास्त्रविधिको
चल छोड़िके आपकी इच्छासे वर्तता है सो सिद्धिको औ
सुखको औ परमगतिकोभी नहीं पावता है ॥ २३ ॥ इसीवास्ते
तुम्हारी कार्याकार्य व्यवस्थामे शास्त्रही प्रमाण होना चाहिये
याने क्या करना क्या न करना यह सब शास्त्रविधानसे
जानिके तुम कर्म करनेको योग्य हो अर्थात् शास्त्रविधिप्रमाण
तुमको कर्म करनाही चाहिये. ॥ २४ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासुपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां
 गशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे दैवासुरसंपद्धि
 भागयोगो नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतार्थां
 श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः

मूलम्.

॥ ॥ अर्जुन उवाच ॥ ॥ येशास्त्रविधिमुसृज्य
 यजंतेश्रद्धयान्विताः ॥ तेषां निष्ठा तु का कृष्णस
 त्वमाहोरजस्तमः ॥ १ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे कृष्ण ये शास्त्रविधिं उत्सृज्य श्रद्धया
 न्विताः संतः यजंतः तेषां तु का निष्ठा सत्त्वं अहोस्वित्
 रजः किं वा तमः ॥ १ ॥

टीका.

दैवासुर विभाग अध्वामे यह कहा कि, ईश्वरतत्त्वज्ञान औ
 उसकी प्राप्तिका उपाय इनका कारण मूल वेदही है औ अत
 मे कहा कि, जो शास्त्रविधिको छोडिके आपने मानकी इच्छा
 से कर्म करते हैं उनको सिद्धी औ सुख तथा परमगतीभी न
 ही मिलती है सो सुनिके अशास्त्रीय कर्म करनेवालोंकी निष्ठा
 जाननेकेवास्ते अर्जुन बोलते भये, हे श्रीकृष्ण! जे कोई शास्त्र
 विधि याने वेदमे नही कहा है औ लोकराति अंधपरंपरासरी-
 खा प्रवर्तें जो कोईसेभी देवादिकका आराधन उसमे श्रद्धा
 रखिके यजन करते हैं उनकी क्या निष्ठा है क्या स्थिति है

याने कौन आश्रय है, क्या उनका आश्रय सत्वगुण है अथवा रजोगुण है किंवा तमोगुण है सो कहौ ॥ १ ॥

मूलम्.

॥ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ त्रिविधाभवतिश्रद्धा
देहिनांसास्वभावजा ॥ सात्त्विकीराजसीचैव
तामसीचेतितांशृणु ॥ २ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच सात्त्विकी च राजसी च तामसी इ-
ति त्रिविधा एव श्रद्धा भवति सा देहिनां स्वभावजा
अस्ति तां शृणु ॥ २ ॥

टीका.

अर्जुनका प्रश्न सुनिके भगवान् उत्तर देते हैं कि, सात्त्विकीरा
जसी औ तामसी ऐसे तीनिही प्रकारकी श्रद्धा है सो श्रद्धा देह-
धारि यौकी स्वभावसे उत्पन्न है जैसे सात्त्विकीकी सात्त्विकी रा-
जसीकी राजसी औ तामसीकी तामसी उसको तुम क्रम-
से सुनौ ॥ २ ॥

मूलम्.

सत्त्वाऽनुरूपासर्वस्यश्रद्धाभवतिभारत ॥ श्रद्धा
मयोऽयंपुरुषोयोयच्छ्रद्धःसएवसः ॥ ३ ॥

अन्वयः

हेभारत सर्वस्य श्रद्धा सत्त्वानुरूपा भवति अयं पुरुषः
श्रद्धामयः यः यच्छ्रद्धः तः सएव भवति ॥ ३ ॥

टीका.

हेभारत सर्वमनुष्यमात्रकी श्रद्धासत्वयाने अंतःकरणके अ-
नुरूपही होती है जिसका जैसा प्राचीनवासनासे अंतःकरण है

३०० गीतावाक्यायैबोधिनी भाषाटीका.

उसकी श्रद्धाभी वै सिही होती है वह पुरुष श्रद्धामय है जो जिस श्रद्धायुक्त होय सो वही है याने सात्विकी श्रद्धायुक्त सात्विक राजसीयुक्त राजस तामसीयुक्त तामस होता है. ॥ ३ ॥

मूलम्.

यजंते सात्विका देवान् यक्षरक्षांसि राजसाः ॥ प्रे
तान् भूतगणांश्चान्ये यजंते तामसा जनाः ॥ ४ ॥

अन्वयः

सात्विकाः देवान् यजंते राजसाः यक्षरक्षांसि यजंते च
अन्ये तामसाः जनाः प्रेतान् भूतगणान् यजंते ॥ ४ ॥

टीका.

सात्विकी श्रद्धावाले सात्विकी देवतोंको पूजते हैं राजसी-
पुरुष यक्षराक्षसीको पूजते हैं औ इनसे विलक्षण औरता
मसीलोग भूतप्रेतोंको पूजते हैं. ॥ ४ ॥

मूलम्.

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यंते ये तपोजनाः ॥ दंभाहं
कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ ५ ॥ कर्षयं
ति शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ॥ मां चैवांतः शरी
रस्थं तान् विद्विद्यासुरनिश्चयान् ॥ ६ ॥

अन्वयः

दंभाहंकारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ये जनाः अशा-
स्त्र विहितं घोरं तपः तप्यंते ॥ ५ ॥ तेश्चचेतसः शरी-
रस्थं भूतग्रामं च अंतः शरीरस्थं मां एव कर्षयंति ता-
न आसुरनिश्चयान् विद्वि ॥ ६ ॥

टीका.

दंभ औ अहंकारकरिके युक्त कामना औ विषयानुरागके य-

लकरिके संयुक्त ऐसे जे मनुष्य अशास्त्रविहित याने शास्त्रमे जो
 व्रतादिक नहीं कहा है ऐसा उपवासादिक घोरतप याने शरीर-
 पीडाकारक तप करते हैं ॥ ५ ॥ वै अचेत पुरुष शरीरमे स्थित जो
 आकाशादि भूतसमूह औ मैभी उनका अंतर्यामी ठहैके उनके
 शरीरहीमे रहता हौ सो वे भूतसमूह औ मेरेकोभी सुखा-
 वते याने दुःख देते हैं उनमनुष्योंको ऐसा जानना कि येई
 आसुरि संपत वाले हैं. ॥ ६ ॥

मूलम्.

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ॥ यज्ञ
 स्तपस्तथादानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ ७ ॥

अन्वयः

आहार अपि सर्वस्य त्रिविधः प्रियः भवति तु यज्ञः
 तपः तथादानं अपि तेषां इमं भेदं शृणु ॥ ७ ॥

टीका.

आहारभी सर्वप्राणिमात्रके तीनप्रकारका प्रिय होता है
 औ यज्ञ, तप तथा दानभी तीनतीन प्रकारके हैं इनका भेद-
 कहौंगा सो सुनौ. ॥ ७ ॥

मूलम्.

आयुःसत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः ॥ रस्या
 स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः ॥ ८ ॥

अन्वयः

आयुःसत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्द्धनाः रस्याः स्निग्धाः
 स्थिराः हृद्याः एवं भूताः आहाराः सात्विकप्रियाः संति ॥ ८ ॥

टीका.

जो आहार आयुष्य औ सत्व याने अंतःकरण अर्थात् अं

तःकरणकार्यं ज्ञान औ बल आरोग्य सुख औ प्रीति इनके बढानेवाले औ मधुरादि स्वादुरसयुक्त स्निग्ध स्थिर याने स्थिरतासे गुणकारक न्हय याने अभीष्ट ऐसे आहार सात्विक सनोंको प्रिय हैं ॥ ८ ॥

मूलम्.

कटुम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ॥ आहाराराजसस्येष्टादुःखशोकामयप्रदाः ॥ ९ ॥

अन्वयः

कटुम्ललवणाऽत्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः अहाराः राजसस्य इष्टाः ते दुःखशोकामयप्रदाः भवन्ति ॥ ९ ॥

टीका.

अतिकडुए अतिखट्टे अतिखारे अतिगरम अतितीक्ष्ण अति रुक्ष औ दाहकारक ऐसे आहार राजसीलोगोंको प्रिय हैं औ वै आहार दुःख शोक औ रोगके देनेवाले हैं जैसे कि, दुःख तौ तात्कालही कडुये इत्यादिकोंसे प्रसिद्ध है औ शोक पीछेते शोच करना अहो हमने आज अमुक पदार्थ बहुत खायलिया जिसते आज हमारे शरीरमे चैन नहीं है औ राग जैसे कटुकसे वायु अम्लसे पित्त इत्यादिक. ॥ ९ ॥

मूलम्.

यातयामंगतरसंपूतिपर्द्युपितंचयत् ॥ उच्छिष्टमपिचामेध्यंभोजनंतामसप्रियं ॥ १० ॥

अन्वयः

यत् यातयामं गतरसं पूति च पर्द्युपितं च उच्छिष्टं च अमेध्यं अपि भोजनं तामसप्रियं भवति ॥ १० ॥

टीका.

जो पदार्थ भात इत्यादिक प्रहरका कियाभया याने दिसको करिके एकप्रहर भया हो औ वह ठंढा होगया होय औ जिस-कारस गया हो जैसे पीना इत्यादिक औ पूति यानेदुर्गंधयुक्त पर्युपित याने वासी औ गुह्यमाता पिता बडाभ्राता पीता इत्यादिकोंके सेवाय दुसरों जूठा ऐसा अमेध्य याने मेधा जो बुद्धि तिसबुद्धिका नाशक भोजनतामसीजनौको प्यारा है इस-ते फिरिभी तमोगुण बढ़ता है इसवास्ते ऐसा भोजन श्रेष्ठ सात्विकीजनौको नकरना चाहिये सात्विकीही आहार करना जिसते सत्वगुण बढ़ता है. ॥ १० ॥

मूलम्

अफलाकांक्षिभिर्यज्ञोविधिदृष्टोयइज्यते ॥ य
ष्टव्यमेवेतिमनःसमाधायससात्विकः ॥ ११ ॥

अन्वयः

यष्टव्यं एव इति मनः समाधाय अफलाकांक्षिभिः वि-
धिदृष्टः यः यज्ञः इज्यते सः सात्विकः ॥ ११ ॥

टीका.

यज्ञ करना अपनेको उचित है याने हमारा स्वधर्म है ऐ-
से मनको लगायके औ फलकांक्षारहित व्हेके शास्त्रविधिपूर्वक
मंत्रद्रव्यक्रियादियुक्त जो यज्ञ करनेमे आता सोसात्विक है ११

मूलम्.

अभिसंधायतुफलदंभार्थमपिचैवयत् ॥ इज्यते
भरतश्रेष्ठतंयज्ञंविद्धिराजसं ॥ १२ ॥

अन्वयः

हेभरत श्रेष्ठ यत् फलं अभिसंधाय तुदंभार्थं अपि च एव
इज्यते तं यज्ञं राजसं विद्धि ॥ १२ ॥

टीका.

हे अर्जुन ! जो फलकी इच्छा करिके अथवा दंभके वास्ते ही यज्ञ करते हैं उसको राजस यज्ञ जानौ ॥ १२ ॥

मूलम्.

विधिहीनससृष्टान्नमंत्रहीनमदक्षिणं ॥ श्रद्धाविरहितं यज्ञतामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

अन्वयः

विधिहीनं असृष्टान्नं मंत्रहीनं अदक्षिणं श्रद्धाविरहितं एवं भूतं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १३ ॥

टीका.

जो यज्ञविधि हीन औ असृष्टान्न याने जो अनादिक चाहिये तिनकरिके हीन मंत्रहीन दक्षिणारहित श्रद्धारहित ऐसे यज्ञको तामस कहते हैं ॥ १३ ॥

मूलम्.

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवं ॥ ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १४ ॥

अन्वयः

देवद्विजगुरुप्राज्ञ पूजनं शौचं आर्जवं ब्रह्मचर्यं च अहिंसा इव तपः शारीरं उच्यते ॥ १४ ॥

टीका.

अब तपको भी सात्विकादि भेद करिके तीन प्रकार का कहते हैं जैसे कि, देव ब्राह्मण गुरु विद्वान इनका पूजन शौच सरल स्वभाव ब्रह्मचर्य अहिंसा यह शरीर संबंधी तप है ॥ १४ ॥

मूलम्.

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यप्रियहितं च यत् ॥

स्वाध्यायाभ्यसनंचैववाङ्मयंतपउच्यते ॥ १५ ॥

अन्वयः

यत् वाक्यं अनुद्वेगकरं च सत्यप्रियहितं च स्वाध्यायाभ्यसनं एव हृदं तपः वाङ्मयं उच्यते ॥ १५ ॥

टीका.

जो वाक्य किसीके मनको उद्वेग न करे औ सत्यप्रिय तथा हितकारक होय औ स्वाध्यायका अभ्यास याने वेदपाठ मंत्रजपादिक यह तप है. ॥ १५ ॥

मूलम्.

मनःप्रसादःसौम्यत्वंमौनमात्मविनिग्रहः ॥ भावसंशुद्धिरित्येतत्तपोमानसमुच्यते ॥ १६ ॥

अन्वयः

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनं आत्मविनिग्रहः भावसंशुद्धिः इति एतत् तपः मानसं उच्यते ॥ १६ ॥

टीका.

मनकी प्रसन्नता सौम्यत्व याने सबसे अच्छे रहना, मौन मिथ्याभाषण न करना, आत्मविनिग्रह याने मनको बिपर्योसे रोकना, भावसंशुद्धि याने स्वभावकी शुद्धता, यह तप मानस याने मनसंबंधी है. ॥ १६ ॥

मूलम्.

श्रद्धयापरयातप्तंतपस्तत्रिविधंनरैः ॥ अफलाकांक्षिभिर्युक्तैःसात्त्विकंपरिचक्षते ॥ १७ ॥

अन्वयः

यत् त्रिविधं तपः अफलाकांक्षिभिः युक्तैः नरैः परया श्रद्धया तप्तं तत् सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७ ॥

टीका.

जो कहा है तीनप्रकारका जैसे शरीर, वाणी और मनका-
तप वह तप फलानुसंधानरहित श्रेष्ठमनुष्योंने परमश्रद्धाक-
रिके किया. तब उसको सात्विक कहते हैं. ॥ १७ ॥

मूलम्.

सत्कारमानपूजार्थं तपोदंभेन चैव यत् ॥ क्रियते त
दिह प्रोक्तराजसंचलमध्रुवम् ॥ १८ ॥

अन्वयः

यत् तपः सत्कारमानपूजार्थं च दंभेन एव क्रियते तत्
इह राजसं चलं अध्रुवं प्रोक्तं ॥ १८ ॥

टीका.

जो तप सत्कार, मान और पुजावनेकेवास्ते अथवा लोक
देखावनेकेवास्ते करते हैं वह तप इस शास्त्रमें राजस चला-
यमान और नाशमान कहा है. ॥ १८ ॥

मूलम्.

मूढग्रहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ॥ परस्यो
त्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १९ ॥

अन्वयः

यत् तपः मूढग्रहेण आत्मनः पीडया वा परस्य उ-
त्सादनार्थं क्रियते तत् तामसं उदाहृतं ॥ १९ ॥

टीका.

जो तप दुराग्रहकरिके शरीरपीडाकारक अथवा दूसरेके
मारनेकेवास्ते करते हैं, उसको तामस कहते हैं. ॥ १९ ॥

मूलम्

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ॥

देशकालेषपात्रेचतदानंसात्त्विकंस्मृतम् ॥ २० ॥

अन्वयः

यत् दानं वातव्यं इति बुद्ध्या देशे च कालेष अनुपकारि
षे च पात्रे रक्षकाय दीयते तत् दानं सात्त्विकं स्मृतं ॥ २० ॥

टीका.

अब दानकोभी तीनप्रकारका कहते हैं, जो दान दातव्यबु-
द्धि करिके याने दान देना सौभाविकधर्म है कुछ फलका प्रयो-
जन नहीं, ऐसा निश्चय करिके देशकुरुक्षेत्रादिक, काल ग्रहणा-
दिक, इनमे जिसते फिरि आपना कुछ प्रत्युपकार न होय औ
वह दातायाने पालनहार अर्थात् तप, स्वाध्याय इत्यादिक क-
रिके रक्षक होय उसकी देह वह दान सात्त्विक कहा है. ॥ २० ॥

मूलम्.

यत्तुप्रत्युपकारार्थंफलमुद्दिश्यवापुनः ॥ दीयते
चपरिच्छिष्टंराजसमुदाहृतं ॥ २१ ॥

अन्वयः

यत् तु दानं प्रत्युपकारार्थं वा पुनः फलं उद्दिश्य परि-
च्छिष्टं दीयते तत् राजसं उदाहृतं ॥ २१ ॥

टीका,

जो दान प्रत्युपकारके वास्ते अथवा फलप्राप्तिके निमित्त
करिके परिच्छिष्ट याने क्लेशयुक्तमनसे अथवा राहु इत्यादिनि-
मित्त लोहादि छिष्टदान देते हैं, उसको राजसदान कहते हैं. २१

मूलम्.

अदेशकालेषदानमपात्रेभ्यश्चदीयते ॥ अस-
कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतं ॥ २२ ॥

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ॥ कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ २७ ॥

अन्वयः

सद्भावे च साधुभावे सत् इति एतत् पदं प्रयुज्यते हेमार्थं तथा प्रशस्ते कर्मणि सच्छब्दः युज्यते ॥ २६ ॥ यज्ञे च तपसि च दाने स्थितिः सत् इति उच्यते च तदर्थीयं कर्म एव सत् इति एव अभिधीयते ॥ २७ ॥

टीका.

अब सत्शब्दकी योजना कहते हैं, सद्भाव याने विद्यमान भावमे साधुभाव याने कल्याणार्थकभावमे सत् ऐसा यह पद युक्त करते हैं, हेष्ठथापुत्र! तैसेही श्रेष्ठकर्ममे सत्शब्दको युक्त करते हैं. जैसे कि, सज्जन सत्कर्म इत्यादि ॥ २६ ॥ यज्ञ औ तप औ दान इनमेभी सत्शब्द युक्त करते हैं, औ जो कर्म ईश्वरार्थ है उसकोभी सत् कहते हैं. ॥ २७ ॥

मूलम्.

अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ॥

असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ २८ ॥

अन्वयः

हे पार्थ यत् अश्रद्धया हुतं च दत्तं च तप्तं तपः च कृतं तत् असत् इति उच्यते तत् न प्रेत्य नो इह सुखायेत्यर्थः ॥ २८ ॥

टीका.

हे अर्जुन! जो अश्रद्धासे याने श्रद्धाविना होम करे, दान देइ, तप करे; तथा कुच्छभी करे उसको असत् कहते हैं. वह न इसलोकमे कहीभी सुखदायक नही है. ॥ २८ ॥

इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां श्री

गशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे श्रद्धात्रयविभागयो
योनामसप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ ॥ ॥

इति श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृतायां
श्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभाषाटीकायांसप्तदशोऽध्या
यः ॥ १७ ॥

मूलम्.

अर्जुन उवाच ॥ ॥ संन्यासस्य महाबाहो तत्त्व
मिच्छामि वेदितुम् ॥ त्यागस्य च हृषीकेश पृथक्के
शिनिपूदन ॥ १ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हे महाबाहो हे हृषीकेश हे केशिनिपूदन सं-
न्यासस्य च त्यागस्य तत्त्वं पृथक् वेदितुं इच्छामि. ॥ १ ॥

टीका.

इस अठारहें अध्यायमे सर्वगीताका सारांश कहेंगे तहां
अर्जुन पूछते भये कि, हे महाबाहो हे इंद्रियोंके प्रेरक हे केशि-
दैत्यके मारनेवाले भगवन्! संन्यास औ त्यागका तत्त्व न्यारा
न्यारा कहौ; मै जानना चाहता हौं. ॥ १ ॥

मूलम्.

श्रीभगवानुवाच ॥ ॥ काम्यानां कर्मणां न्यासं
संन्यासं कवयो विदुः ॥ सर्वकर्मफलत्यागं प्राहु
स्त्यागं विचक्षणाः ॥ २ ॥

अन्वयः

श्रीभगवान् उवाच काम्यानां कर्मणां न्यासं तं कवयः सं-
न्यासं विदुः सर्वकर्मफलत्यागं विचक्षणाः त्यागं प्राहुः ॥ २ ॥

टीका.

अर्जुनके वाक्य सुनिके श्रीकृष्णभगवान् कहते हैं कि, काम्य कर्मोंका जो न्यास है याने त्याग, उसको कवी जो विवेकी हैं वे संन्यास कहते हैं, औ सर्वकर्मोंके फलत्यागको विद्वानलोग त्याग कहते हैं. ॥ २ ॥

मूलम्.

त्याज्यंदोषवदित्येकेकर्मप्राहुर्मनीपिणः ॥ यज्ञ
दानतपःकर्मनत्याज्यमितिचापरे ॥ ३ ॥

अन्वयः

येके मनीपिणः दोषवत् कर्म त्याज्यं इति प्राहुः च अपरे
मनीपिणः यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं इतिप्राहुः ॥ ३

टीका.

कोई एक ज्ञानी कपिलइत्यादिक कहते हैं कि, हिंसादि दोषयुक्त जो यज्ञादिक कर्म है उसको त्याग करना योग्य है, और दूसरे ज्ञानी कहते हैं कि, यज्ञ, दान, तप, इनको न त्यागना चाहिये. ॥ ३ ॥

मूलम्.

निश्चयंशृणुमेतन्नत्यागेभरतसत्तम ॥ त्यागोहिपु
रुपव्याघ्रत्रिविधःसंप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥ यज्ञदान
तपःकर्मनत्याज्यंकार्यमेवतत् ॥ यज्ञोदानंतपश्चै
वपावनानिमनीपिणां ॥ ५ ॥ एतान्यपित्तुकर्मा
णिसंगंत्यत्काफलानिच ॥ कर्त्तव्यानीतिमैपार्थ
निश्चितंमतमुत्तमं ॥ ६ ॥

अन्वयः

हेभरतसत्तम तत्र त्यागे मं निश्चयं शृणु हेपुरुषव्याघ्र
हियस्मात् त्यागः त्रिविधः संप्रकीर्तितः ॥ ४ ॥ तत्र
स्मात् यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं किंतु कार्यमेव किं
चयज्ञः दानं चतपः मनीषिणां एव पावनानि ॥ ५ ॥ तु
किंतु हेपार्थ एतानि अपि कर्माणि संगं त्यक्त्वा च
फलानि त्यक्त्वा कर्तव्यानि इति मे निश्चितं उत्तमं
मतं अस्ति ॥ ६ ॥

टीका.

हे अर्जुन! तहां उस त्यागविषयमे मेरा निश्चयसुनौ. हेपुरु-
षौमंश्रुष्ठ जितवास्ते कि त्याग तीनप्रकारका है यानेफलत्याग
कर्तृत्वत्याग औ ममतत्वत्याग ऐसे तीनप्रकारके है ॥ ४ ॥ इसी
वास्ते यज्ञ, दान औ तप इनकर्मोंका त्यागना न चाहिये
क्योंकियै करनेयोग्य ही हैं रुषव यज्ञ दान औ तपयै ज्ञानो
जनौकेही पवित्र करनेवाले हैं ॥ ५ ॥ औरभी कहता हौ कि, हे
पार्थ! इन कर्मोंकाभी संग याने कर्मोंमे ममता औ फलोंकात्या-
गकरिके कर्म करना यहमेरा निश्चय उत्तम मत है. ॥ ६ ॥

मूलम.

नियतस्यतुसंन्यासःकर्मणानोपपद्यते ॥ मोहा
त्तस्यपरित्यागस्तामसःपरिकीर्तितः ॥ ७ ॥

अन्वयः

तु किंतु नियतस्य कर्मणः संन्यासः न उपपद्यते किंच
माहात् तस्य परित्यागः तामसः परिकीर्तितः ॥ ७ ॥

टीका.

औरभी कहने हैं, नियत जो करनाही चाहिये नित्य नै-
मित्तिक पंचमहायज्ञ देवाराधनरूप कर्म इसका संन्यास याने

त्याग नहीं हो सकता है क्योंकि, भगवानने प्रथमही कहा है कि ॥ शरीरयात्रापिचतेनप्रसिध्देदकर्मणः ॥ अर्थ जो सर्वथा कर्म न करौंगे तो शरीरकाभी रहना न होयगा जो कहौंगे कि यज्ञादिक हिंसात्मकहै इनको कियेविना भोजनादिक करते रहै तौभी शरीर रहहीगा तहांभी कहा है कि ॥ यज्ञशिष्टाऽमृतभुजोयातिब्रह्मसनातनं ॥ यज्ञशिष्टाशिनःसंतोमुच्यन्तेसर्वकिल्बिषैः ॥ भुंजतेतेत्वधंपापायेपचंत्यात्मकारणात् ॥ इत्यादिवाक्यैकरिकं यह सिद्ध भया कि, यज्ञादिकर्मका त्याग कोई कालमेंभी न करना जो मोहसे त्याग करै तौ वह त्यागतामस है, तामसी त्यागसे अधोगति होती है. ॥ ७ ॥

मूलम्.

दुःखमित्येवयत्कर्मकायक्लेशभयात्यजेत् ॥ सकृत्वारजसंत्यगंनैवत्यागफलंलभेत् ॥ ८ ॥

अन्वयः

यः दुःखं इति यत् यत् कायक्लेशभयात् एव कर्म त्यजेत् सः राजसं त्यागं कृत्वा त्यागफलं न एव लभेत् ॥ ८ ॥

टीका.

जो ऐसा विचारे कि कर्मकरनेमें अनेक पदार्थ चाहिये ऐसे दुःख होयगा इसवास्ते ज्ञानसाधनही करना. यद्यपि मोक्षसाधन है तथापि वर्णाश्रमोचितकर्ममें शरीर दुःखहै ऐसी बुद्धिसे जो कर्मत्यागता है वह राजसीत्याग है; उसराजसी-त्यागको करिके त्यागका फलजो मोक्ष सोनही पावताहै. ॥८॥

मूलम्

कार्यमित्येवयत्कर्मनियतंक्रियतेर्जुन ॥ संगंत्यत्काफलंचैवसत्यागःसात्त्विकोमतः ॥ ९ ॥

अन्वयः

हे अर्जुन संगं च फलं त्यक्त्वा यत् कर्म कार्यं एव इति बु-
द्ध्या क्रियते सः त्यागः सात्त्विकः मतः ॥ ९ ॥

टीका.

हे अर्जुन! कर्ममे ममता त्यागिके औ फलकोभी त्यागिके जो
कर्म करने योग्यही है ऐसा जानिके करै ता त्याग सात्त्विकहै ॥ ९ ॥

मूलम्.

न द्वेष्ट्यकुशलं कर्म कुशलेन अनुसज्जते ॥ त्यागी स
त्वसमाविष्टो मेधावी छिन्नसंशयः ॥ १० ॥

अन्वयः

यः स त्वसमाविष्टः मेधावी छिन्नसंशयः सः कर्मफलासंग
त्यागी सः अकुशलं कर्म न द्वेष्टि कुशले न अनुसज्जते ॥ १० ॥

टीका.

अब सात्त्विक त्याग करनेवालेके लक्षण कहते हैं जो सत्वगु-
णकरिके व्याप्त है औ बुद्धिमान है औ जिसके संशय नष्ट भये
हैं तथा कर्मके फल औ ममताकोभी त्याग किया है जिसने ऐ-
सा पुरुष अकुशल कर्म याने संसारकी प्राप्ति करनेवाले विषया-
दिक इनसे द्वेषभी नहीं करता है औ कुशलजो मोक्षदायक यज्ञ-
तप दानादिक इनमे प्राप्तभी नहीं होता है. ॥ १० ॥

मूलम्.

न हि देहभृता शक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः ॥ यस्तु
कर्मफलत्यागी सत्यागीत्यभिधीयते ॥ ११ ॥

अन्वयः

हियतः देहभृता अशेषतः कर्माणि त्यक्तुं न शक्यं अतः तु
यः कर्मफलत्यागी सः त्यागी इति अभिधीयते ॥ ११ ॥

टीका.

जिसतेकिदेहधारीमात्र सर्व कर्म त्याग किया है वही त्यागी
इसी वास्ते जिसने कर्मफलका त्याग किया है वही त्यागी
हैं। ॥ ११ ॥ मूलम्.

अनिष्टमिष्टमिश्रं च त्रिविधं कर्मणः फलं ॥ भवत्य

त्यागिनां प्रेत्य न च संन्यासिनां क्वचित् ॥ १२ ॥

अन्वयः

अनिष्टं इष्टं च मिश्रं एवं कर्मणः फलं त्रिविधं भवति तत्
अत्यागिनां प्रेत्य भवति च संन्यासिनां क्वचित् न भवति १२

टीका.

अनिष्ट अधोगतिदायक, इष्ट स्वर्गदायक, मिश्रपुत्रादिदायक
ऐसे कर्मका फल तीन प्रकारका है सो अत्यागी जो कर्मफल-
नुसंगी है उनको देहत्यागे पीछे होता है औ फलत्यागिनको न
इसलोकमे न परलोकमे कांहीं भी बंधनकारक नहीं है. ॥ १२ ॥

मूलम्.

पंचैतानि महावाहो कारणानि निबोध मे ॥ सांख्ये

कृतांते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणां ॥ १३ ॥

अन्वयः

हे महावाहो सर्वकर्मणां सिद्धये एतानि पंच कारणानि तां
ख्ये कृतांते प्रोक्तानि तानि मे निबोध ॥ १३ ॥

टीका.

हे महावाहो! सर्वकर्मोंकी सिद्धिके वास्ते ये पांच कारण सां
ख्यशास्त्रमे कहे हैं वे मेरेसे तुम जानौ याने मैं कहता हौं तुम
सुनौ. ॥ १३ ॥ मूलम्.

अधिष्ठानं तथा कर्ता कारणं च पृथग्विधं ॥ विवि

धाचष्टयक्चेष्टादैवंचैवात्रपंचमं ॥ १४ ॥ शरीर
वाङ्मनोभर्यत्कर्मप्रारभतेनरः ॥ न्याय्यं वा
विपरीतं वापंचैते तस्य हेतवः ॥ १५ ॥

अन्वयः

तान्येव कारणान्याह अधिष्ठानं तथा कर्त्ता च ष्टयक्विधं
कारणं च विविधा ष्टयक्चेष्टा च अत्र पंचमं दैवं एव
॥ १४ ॥ यत् नरः शरीरवाङ्मनोभिः न्याय्यं वा विपरीतं
वा कर्म प्रारभते तस्य कर्मणः एते पंचहेतवः संति ॥ १५ ॥

टीका.

अब वै पांचौ कारण कहते हैं अधिष्ठान याने शरीर क-
र्त्ता जीव औ कोई एक कर्त्ता अंतःकाणकोभी कहते हैं तहां
भी अंतःकरणाभिमानी जीवही भया इस जीवका कर्त्तापना
सूत्रसिद्ध है सो ब्रह्मसूत्रभी लिखता हौं ॥ ज्ञोतएवचकर्त्ताशा-
स्वार्थत्वात् ॥ इति औ न्यारान्यारा कारण याने मनसहितपंचक-
र्म इंद्रियोंकाव्यापार औ अनेकप्रकारकी न्यारीन्दारी चेष्टा या-
ने पंचप्राणशायुकी चेष्टा औ इहां पांचवां दैव याने अंतर्यामी
परमात्मा सो इसीगीताश'स्त्रहीमे कहा है. सर्वस्यचाहं हृदिसंनि-
विष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च ॥ औ कहेंगेभी ॥ ईश्वरः सर्वभूता-
नांहृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥ भ्रामयन् सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया
॥ इसकरिके जीवका कर्त्तापना परमात्माके स्वाधीन भया ब्रह्म
सूत्रभी कहता है, परानुत्तच्छ्रुतेः इहां शंका करते हैं कि, जो जीवा-
त्माका कर्त्तृत्व परमात्माके आधीन है तो जीवात्मा शुभाशुभ
कर्म क्यों भोगता है तहां सूत्रहीमे कहा है कि ॥ कृतप्रयत्नापे-
क्षस्तु विहितनिषिद्धावैयर्थ्यादिभ्यः इति ॥ अर्थ परमात्माने
दिये औ परमात्माही है आधार जिनका ऐसे इंद्रिय शरीरादिक

औ उनमे परमात्माहीकी शक्तिहै औ वह जीवात्माभी उसी परमात्माके आधार है औ परमात्माहीकी उसमे शक्ति है ऐसा जीवात्मा अपनी इच्छा करिके कर्म उत्पत्तिके वास्ते उन शरीरइं द्विर्वाकिके प्रयत्न करता है औ आप परमात्मा उस जीवात्मा के अंतःकरणमे प्रवेश भयाहुवा अनुमति देता है उसवास्ते जीवात्माभी स्वबुद्धिसे कर्तृत्व सिद्ध भया ॥ १४ ॥ जो मनुष्य शरीर, वाणी औ मन करिके न्याय अथवा अन्यायरूप कर्म करता है उसकर्मकेसे पांच कारण है. ॥ १५ ॥

मूलम्.

तत्रैवं सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः ॥ पश्य
त्यकृतबुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः ॥ १६ ॥

अन्वयः

एवं सति तत्र यः केवलं आत्मानं कर्तारं पश्यति सः दुर्मतिः अकृतबुद्धित्वात् न पश्यति ॥ १६ ॥

टीका.

जहां ऐसे पांच कारण कहे हैं तहां जो केवल आत्माको कर्ता करिके देखता है वह दुर्मती पुरुष अकृतबुद्धि याने यथार्थ वस्तुको उसकी बुद्धि निश्चय नहीं करि सकती है ऐना वस्तु तुष्य नहीं देखता है याने उसको सूझता नहीं अर्थात् अज्ञानांध है. ॥ १६ ॥

मूलम्.

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य नालिप्यते ॥ ह
त्वापि स इमालोकान्न हंति न निबद्धयते ॥ १७ ॥

अन्वयः

यस्य अहंकृतः भावः न यस्य बुद्धिः न लिप्यते सः इमा

न लोकान् अपि हत्वा न हन्ति न निवध्यते ॥ १७ ॥

टीका.

जिसके अहंरुतभाव याने मैं कर्त्ता हूँ ऐसाभाव नहीं है और जिसकी बुद्धि कर्ममें लिप्त न होय याने कर्ममें ममत्वबुद्धि न होय सो जो इन सबलोकोंको मारे तौभी न वह किसीको मारता है और न वह युद्धरूप कर्मसे बंधनको प्राप्त होता है. तात्पर्य कि तुम भीष्मादिकोंके मारनेहीमें पापसे डरते हौ परंतु अहंता नगतरहित पुरुषको लोक हिंसाकाभी भय नहीं है. ॥ १७ ॥

मूलम्.

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ॥ करणं

कर्मकर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ॥ १८ ॥

अन्वयः

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता इति त्रिविधा कर्मचोदना अस्ति क

रणं कर्मकर्त्ता इति त्रिविधः कर्मसंग्रहः अस्ति ॥ १८ ॥

टीका.

यह सर्व अकर्त्तृत्व इत्यादिक अनुसंधान सत्वगुण वृद्धिसे होता है ऐसे सत्वगुणकी गृहणता जनावनेके वास्ते कर्ममें सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण इनकी करीभई विषमताको विस्तार कहते कहते प्रथम कर्मप्रवृत्ति कहते है ज्ञान याने करने योग्य कर्मकी विधि जानना, ज्ञेय याने करनेयोग्य कर्मपरिज्ञाता उसकर्मका जाननेवाला ऐसे तीन प्रकारका कर्मकी प्रवृत्ति है तहां जाननेयोग्य जो कर्म सो तीनप्रकारका कहते है. कारण याने यज्ञसाधन द्रव्यादिक कर्म योगादिक करता उसके अनुष्ठान करनेवाला तीन प्रकार कर्मका संग्रह याने कर्मका आश्रय है. ॥ १८ ॥

मूलम्.

ज्ञानं कर्म च कर्तेति त्रिधैव गुणभेदतः ॥ प्रोच्यते गु
णसंख्याने यथावच्छृणुतान्यपि ॥ १९ ॥

अन्वयः

ज्ञानं कर्म औ कर्ता इति गुणसंख्याने गुणभेदतः त्रिधा
एव प्रोच्यते तानि अपि यथावत् शृणु ॥ १९ ॥

टीका.

ज्ञान कर्म औ कर्ता हे साख्यशास्त्रमे तीन प्रकारके कहे
हे तिनकोभी तुम यथाशास्त्र सुनौ, याने उसशास्त्रमे जैसे
कहे हैं तैमे सुनौ. ॥ १९ ॥ मूलम्.

सर्वभूतेषु येनैकं भावमव्ययमीक्षते ॥ अविभक्तं वि
भक्तेषु तज्ज्ञानं विद्विसात्त्विकं ॥ २० ॥

अन्वयः

येन ज्ञानेन विभक्तेषु सर्वभूतेषु एकं अविभक्तं अव्ययं
भावं ईक्षते तद् ज्ञानं सात्त्विकं विद्वि ॥ २० ॥

टीका.

जिसज्ञानकरिके ब्राह्मण, क्षत्रिय, गृहस्थ, ब्रह्मचारी इत्यादि
विभागयुक्त भूतप्राणी मात्र कर्मके अधिकारियौंम एक आत्मा
नामक भाव है तहांभी विभागरहित याने ब्राह्मणादिक शरी
र न्यारे न्यारे हैं तौंभी आत्मा सर्वत्र एकरूप है औ अविनाशी
है. ऐसा जो भाव देखता है सो ज्ञान सात्त्विक है. ॥ २० ॥

मूलम्.

पृथक्त्वेन तु यज्ज्ञानं नानाभावान्पृथग्विधान् ॥ वे
त्तिसर्वेषु भूतेषु तज्ज्ञानं विद्विराजसं ॥ २१ ॥

अन्वयः

यत् तु पृथक्त्वेन ज्ञानं येन ज्ञानेन सर्वेषु भूतेषु पृथग्विधान् नानाभावान् वेत्ति तत् ज्ञानं राजसं विद्धि ॥ २१ ॥

टीका.

यत् पृथक्त्वेन ज्ञानं जो जुदापनकरिके ज्ञान है जिस ज्ञानकरिके ब्राह्मणादिक सर्वभूतोंमें न्यारेन्यारे नानाप्रकारके भाव जानता है याने यह आत्मा ब्राह्मण है, क्षत्रिय है, वडा है, छोटा है, ऐसे शरीरसंबंधसे आत्माकोभी अनेकप्रकारका जानता है औ कर्माधिकारसमयमेंभी अनेकप्रकारके न्यारेन्यारे फल देखता है सो ज्ञान राजस है. ॥ २१ ॥

मूलम्.

यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहैतुकं ॥ अत त्वार्थवदल्पंचततामसमुदाहृतं ॥ २२ ॥

अन्वयः

यत् तु एकस्मिन् कार्ये कृत्स्नवत् सक्तं अहैतुकं अत त्वार्थवत् च अल्पं तत् तामसं उदाहृतं ॥ २२ ॥

टीका.

जो ज्ञान एकही कार्यमें याने भूतादिक आराधनरूपकार्यमें सर्वफलवानकी तरह आसक्त औ हेतुरहित औ तत्वज्ञानरहित अल्पफलदायक सो तामस है याने एक कोर्दे तुच्छदेवताका आराधनकरिके उसीमें सर्व मोक्ष स्वर्ग औ धनादिकभी चाहते हैं वह तामस है. ॥ २२ ॥

मूलम्.

नियतंसंगरहितमरागद्वेषतःकृतं ॥ अफलप्रेप्सुनाकर्मयत्तत्सात्विकमुच्यते ॥ २३ ॥

अन्वयः

यत् कर्म अफलप्रेप्सुना नियतं संगरहितं अरागद्वेषतः
कृतं तत् सात्त्विकं उच्यते ॥ २३ ॥

टीका.

जो कर्म फलइच्छा न करनेवाले पुरुषने नियत याने वि-
हित औ ममतारहित औ रागद्वेषविना किया है उसको सा-
त्त्विक कहते हैं याने जो कर्म अपनेको करनाहि उचित है
उसमें ममता औ उसका फल त्यागिके रागद्वेषविना याने
आसक्ती औ तिरस्कारविना स्वधर्म जानिके करता है सो
कर्म सात्त्विक है ऐसे कहा है. ॥ २३ ॥

मूलम्.

यत्तुकामेप्सुनाकर्मसाहंकारेणवापुनः ॥ क्रिय
तेबहुलायासंतद्राजसमुदाहृतं ॥ २४ ॥

अन्वयः

यत् तु बहुलायासं कर्म कामेप्सुना वा पुनः साहंका-
रेण क्रियते तत् राजसं उदाहृतं ॥ २४ ॥

टीका.

जो बहुत परिश्रम साध्यकर्ममे कामनाकी इच्छाकरिके औ
अहंकारकरिके कि, मेरेविना ऐसा कर्म कौन करिसकता है
ऐसी बुद्धिसे करते हैं वह राजस कर्म कहता है. ॥ २४ ॥

मूलम्

अनुबंधक्षयंहिसामनवेक्ष्यचपौरुषं ॥ मोहादार
भतेकर्मयत्तत्तामसमुच्यते ॥ २५ ॥

अन्वयः

अनुबंधं क्षयं हिंसा च पौरुषं अनवेक्ष्य मोहात् यत् कर्म

आरभते तत् तामसं उच्यते ॥ २५ ॥

टीका.

जो अनुबंध याने कर्म कियेपीछे दुःख क्षय आंपके द्रव्य-
का खर्च हिंसा उसकर्ममे प्राणीमात्रको पीडा पौरुष कर्म
समाप्त करनेकी समर्थता इनको देखेविना मोहसे जो कर्म
का आरंभ करते हैं सो तामसकर्म है ॥ २५ ॥

मूलम्.

मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ॥ सि
द्धयसिद्धयोर्निर्विकारः कर्त्ता सात्विक उच्यते ॥ २६ ॥

अन्वयः

यः मुक्तसंगः अनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः सिद्धय-
सिद्धयोः निर्विकारः सः कर्त्ता सात्विकः उच्यते ॥ २६ ॥

टीका.

जो कर्त्ता याने करनेवाला पुरुष फलसंगरहित औ कर्त्ता
पनके अहंकारकरिके रहित धीरज औ उत्साहकरिके युक्त
तथा सिद्धि औ असिद्धिमे विकाररहित होय सो कर्त्ता सा-
त्विक कहता है ॥ २६ ॥

मूलम्.

रागीकर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ॥
हर्षशोकान्वितः कर्त्ताराजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

अन्वयः

यः कर्त्ता रागी कर्मफलप्रेप्सुः लुब्धः हिंसात्मकः अशु-
चिः हर्षशोकान्वितः सः राजसः परिकीर्तितः ॥ २७ ॥

टीका.

जो कर्त्ता रागी याने यश ही इच्छा करनेवाला औ कर्मफल

चाहनेवाला लोभी याने जेतना द्रव्य खर्च करमा चाहिये व-
तना उसकर्ममे न खर्चकरनेवाला, हिंसात्मक याने दूसरोंको
पीडित करिके कर्मकरनेवाला, अशुचि कर्ममे कहे प्रमाण प-
वित्रताको न करनेवाला औ सिद्धि तथा असिद्धिके निमित्त
हर्षशोकयुक्त होय सो राजस है ऐसा कहा है. ॥ २७ ॥

मूलम्.

अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः

॥ विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ॥ २८ ॥

अन्वयः

यः कर्ता अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठः नैष्कृतिकः अल-
सः विषादी च दीर्घसूत्री सः तामसः उच्यते ॥ २८ ॥

टीका.

जो कर्ता शास्त्रोक्तकर्मके अयोग्य औ विद्या न पढाभया
अनम्र अभिचारादिक कर्मोंमे रुचिकरनेवाला ठग आलसी
विषाद करनेवाला औ एकदिनके कामको महीनेमे करनेवाला
होय उसको तामस कहते हैं. ॥ २८ ॥

मूलम्.

बुद्धेर्भेदं धृतेश्चैव गुणतस्त्रिविधं शृणु ॥ प्रोच्यमा-
नमशेषेण पृथक्केन धनं जय ॥ २९ ॥

अन्वयः

हे धनं जय अशेषेण मया प्रोच्यमानं पृथक्केन गुणतः त्रि-
विधं बुद्धेः च धृतेः एव भेदं शृणु ॥ २९ ॥

टीका.

हे धनं जय याने हे अर्जुन! अशेष याने आदिअंतसे मेरा क-
हाभया न्यारान्यारा गुणों करिके तीनप्रकारका ऐसा जो बुद्धि-

का औ धारणाका भेद है सो सुनौ. ॥ २९ ॥

मूलम्.

प्रवृत्तिंचनिवृत्तिंचकार्याकार्येभयाऽभये ॥ वंधं
मोक्षंचयावेत्तिबुद्धिःसापार्थसात्विकी ॥ ३० ॥

अन्वयः

हे पार्थ या बुद्धिः प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भया
ऽभये वंधं च मोक्षं वेत्ति सा सात्विकीबुद्धिः ॥ ३० ॥

टीका.

हेअर्जुन! जो बुद्धि प्रवृत्ति औ निवृत्ति तथा कार्य औ अ-
कार्य भय औ अभय वंध औ मोक्ष इनको जानै सो सात्विकी-
कीबुद्धि है. ॥ ३० ॥

मूलम्.

ययाधर्ममधर्मंचकार्यंचाकार्यमेवच ॥ अय
थावत्प्रजानातिबुद्धिःसापार्थराजसी ॥ ३१ ॥

अन्वयः

हे पार्थ यया बुद्ध्या नरः धर्मं च अधर्मं कार्यं च अकार्यं
एव अथवावत् प्रजानाति सा बुद्धिः राजसी ॥ ३१ ॥

टीका.

हे अर्जुन! जिसबुद्धिकरि के मनुष्य धर्म औ अधर्म, कार्य औ
अकार्य, इनको निश्चय न जानिसके सो बुद्धि राजसी है. ॥ ३१ ॥

मूलम्.

अधर्मधर्मभितियामन्यतेतमसावृता ॥ सर्वा
थान्विपरीतांश्रुबुद्धिःसापार्थतामसी ॥ ३२ ॥

अन्वयः

हे पार्थ या बुद्धिः तमसा वृता अधर्म धर्म इति मन्यते च

३२६ गीतावाक्याथबोधिनी भाषाटीका.

सर्वार्थान् विपरीतान् मन्यते सा बुद्धिः तामसी ॥ ३२ ॥

टीका.

हे अर्जुन! जो बुद्धि अज्ञानसे लपटी भईहुई अधर्मको धर्म
औ धर्मको अधर्म मानौ औ इसीतरह सर्व पदार्थोंको उलटे
ही जानै सो बुद्धि तामसी है. ॥ ३२ ॥

मूलम्.

धृत्यायथाधारयतेमनःप्राणेंद्रियक्रियाः ॥ यो
गेनाऽव्यभिचारिण्याधृतिःसापार्थसात्विकी ॥ ३३ ॥

अन्वयः

हे पार्थ नरः यथा अभिचारिण्या धृत्या योगेन मनः प्रा-
णेंद्रियक्रियाः धारयते सा धृतिः सात्विकी ॥ ३३ ॥

टीका.

हे पृथातनय! मनुष्य जिस अखंड मोक्षसाधनभूत धारणा
करिके योगबलसे मन, प्राण औ इंद्रिय इनकी क्रियाओंको धार-
ण करै सो धारणा सात्विकी ॥ ३३ ॥

मूलम्.

यथातुधर्मकामार्थान्धृत्याधारयतेनरः ॥ प्रसं
गेनफलाकांक्षीधृतिःसापार्थराजसी ॥ ३४ ॥

अन्वयः

हे पार्थ फलाकांक्षी नरः फलाकांक्षाप्रसंगेन यथा धृत्या
धर्मकामार्थान् धारयते सा धृतिः राजसी ॥ ३४ ॥

टीका.

हे अर्जुन! फलकी इच्छा करनेवाला उस फलइच्छाके प्रसं-
गकरिके जिस धारणाकरिके धर्म काम, औ अर्थ इनको धार-
ण करता है सो धारणा राजसी है. ॥ ३४ ॥

मूलम्.

ययास्वप्नं भयं शोकं विपादं मदमेव च ॥ न विमुंचति
दुर्मेधा धृतिः सातामसीमता ॥ ३५ ॥

अन्वयः

दुर्मेधाः पुरुषः यया धृत्या स्वप्नं भयं शोकं विपादं च
मदं एव न विमुंचति सा धृतिः तामसीमता ॥ ३५ ॥

टीका.

दुष्ट है मेधा याने बुद्धि जिकसी ऐसा पुरुष जिस धारणा
करिके स्वप्न, भय, शोक विपाद, श्रौ मद, याने गर्व नहीं छोडता
है अर्थात् इन स्वप्नादिकोंके साधनरूप कर्म वारंवार करता है
सो धारणा तामसी है. ॥ ३५ ॥

मूलम्.

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ ॥ अ
भ्यासाद् रमते यत्र दुःखांतं च निगच्छति ॥ ३६ ॥
यत्तदग्रे विपमिव परिणामेऽमृतोपमं ॥ तत्सुखं
सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजं ॥ ३७ ॥

अन्वयः

हे भरतर्षभ! इदानीं सुखं-अपि त्रिविधं मे मत्तः शृणु .
यत्र सुखे अभ्यासात् रमते च दुःखांतं निगच्छति ॥ ३६ ॥
यत् तदग्रे विपं इव परिणामेऽमृतं इव तत् आत्मबु-
द्धि प्रसादजं सुखं सात्त्विकं प्रोक्तं ॥ ३७ ॥

टीका.

हे भरतवंशमे श्रेष्ठ! अद्य सुखभी तीनप्रकारका मेरेसे सुनौ.
जिससुखमे अभ्यास करनेसे बहुतकालमे मन रमता है श्रौ

३२८ गीतावाक्यार्थबोधिनी भाषाटीका.

दुःखकेभी अंतको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥ औ जो सुख प्रथम उसके साधनकालमें विषसदृश्य कारण कि मनका संयमादिक करनेमें दुःख होता है इसवास्ते प्रथम विषतुल्य प्राप्ति औ परिणाममें अमृततुल्य अर्थात् जब अत्मस्वरूपकी प्राप्ति भई तब अमृतवत् भया सो आत्मा संबंधी बुद्धिकी प्रसन्नतासे प्राप्त भया जो सुख सो सात्विक है.

मूलम्.

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमं ॥ परिणामे
विषमिव तत्सुखं राजसंस्मृतं ॥ ३८ ॥

अन्वयः

यत् सुखं विषयेन्द्रियसंयोगात् तदग्रे अमृतोपमं परिणामे विषमिव तत् सुखं राजसं स्मृतं ॥ ३८ ॥

टीका.

जो सुख विषय इंद्रियोंके संयोगसे प्रथम अमृततुल्य औ परिणाममें उसका फल संसारदुःख इसवास्ते विषतुल्य होता है सो सुख राजस है. ॥ ३८ ॥

मूलम्.

यदग्रे चानुबंधे च सुखं माहनमात्मनः ॥ निद्राल
स्य प्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतं ॥ ३९ ॥

अन्वयः

यत्सुखं अग्रे च अनुबंधे अपि आत्मनः मोहनं तत् निद्रालस्य प्रमादोत्थं सुखं तामसं उदाहृतं ॥ ३९ ॥

टीका.

जो सुख प्रारंभमें औ अंत परिणाममेंभी मनका मोहनेवाला याने अचेत करने वाला सो निद्रा, आलस औ प्रसाद जिसमें

कृत्याकृत्यका विवेक न रहै इसको प्रमाद कहते हैं, सो इन निद्रा, आलस औ प्रमादसे उत्पन्न भया जो सुख उसको तामस कहते हैं. ॥ ३९ ॥

मूलम्.

नतदस्ति पृथिव्यां वा दिवि देवेषु वा पुनः ॥ सत्त्वं प्रकृतिजैर्मुक्तं यदेभिः स्याच्चिभिर्गुणैः ॥ ४० ॥

अन्वयः

यत् सत्त्वं एभिः प्रकृतिजैः त्रिभिः गुणैः मुक्तं तत् पृथिव्यां वा दिवि वा पुनः देवेषु न अस्ति ॥ ४० ॥

टीका.

जो प्राणीमात्र इन प्रकृतिजन्य तीनौ गुणोंकरिके लुटा है सो पृथ्वीमे अथवा स्वर्गमे अथवा ब्रह्मलोकपर्यंत देवतोंभी नहीं है. ॥ ४० ॥

मूलम्

ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणांच परंतप ॥ कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥ ४१ ॥

अन्वयः

हे परंतप अर्जुन ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणां स्वभावप्रभवैः गुणैः कर्माणि प्रविभक्तानि ॥ ४१ ॥

टीका.

हे परंतप अर्जुन! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य औ शूद्र इनके स्वभावसे याने ब्राह्मणादिक जन्महेतुकस्वभावसे उत्पन्न भये जो गुण तिनकरिके कर्मोंका भी विभाग किया है. ॥ ४१ ॥

मूलम्.

शमोद्गमस्तपःशौचं क्षांतिरार्जवमेव च ॥ ज्ञानं वि

ज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्मस्वभावजं ॥ ४२ ॥

अन्वयः

शमः दमः तपः शौचं क्षांतिः च आर्जुवं ज्ञानं विज्ञानं
आस्तिक्यं इति ब्रह्मकर्म स्वभावजं एव ॥ ४२ ॥

टीका.

शम वाहेरकी इंद्रियोंको नेममे रखना, दम अंतःकरणको नियममे रखना, तप भोगोंका नेम शास्त्रप्रमाण कायकृश शौच शास्त्रोक्तकर्म करनेकी योग्यताकेवास्ते वाहेर श्री अंतःकरणकी शुद्धिं क्षांति, क्षमा, आर्जव सर्वसे सीधे रहना, ज्ञान परावरतत्त्व-निश्चयरूप विज्ञान परतत्त्वकेविषे विशेषताजानिके उसकी भक्ति करना, आस्तिक्य याने वैदिकवाक्योंमे सत्यता यह ब्राह्मणका स्वाभाविक धर्म है. ॥ ४२ ॥

मूलम्

शौर्यतेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनं ॥

दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजं ॥ ४३ ॥

अन्वयः

शौर्यं तेजः धृतिः दाक्ष्यं च युद्धे अपि अपलायनं दानं च
ईश्वरभावः इति क्षात्रं कर्म स्वभावजं अस्ति ॥ ४३ ॥

टीका.

शूरवीरपना याने युद्धमे निर्भय वृहके प्रवेश करना, तेज याने जिसके सामने दूसरे डरते डरते खड़े रहें, धृति धीरज याने युद्धादिकमे कुछ विघ्न देखिके घबडानानही, दाक्ष्यसमस्तकार्यकरने-मे चातुर्य, युद्धे अपि अपलायनं याने युद्धमे आपके मृत्युपर्यंतभी भागना नही, दानं उदारता ईश्वरभाव सबको आपके स्वाधीन रखनेकी समर्थता, यह क्षात्रियका सौभाविक कर्म है याने जिसपूर्व

कर्मसे क्षत्रियजन्म भया उसी कर्मसे यह स्वभाव पैदा है ॥४२॥

मूलम्.

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यवैश्यकर्मस्वभावजं ॥

परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजं ॥ ४४ ॥

अन्वयः

कृषिगोरक्ष्यवाणिज्यं इति वैश्यकर्म स्वभावजं अस्ति प-
रिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्य अपि स्वभावजं अस्ति ॥ ४४ ॥

टीका.

कृषि खेतीकरना, गोरक्ष्य गौवें पालना उनके दूध दहीं वगैरे-
से जीविका करना, वाणिज्य याने सौदा लेना बेचना इत्या-
दिक वैश्यका कर्म स्वभावहीसे औ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इ-
न तीनों वर्णकी परिचर्या याने चाकरी करना, यह शूद्रका
कर्म स्वभावहीसे है. ॥ ४४ ॥ मूलम्.

स्वेस्वेकर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥ स्वकर्म

निरतः सिद्धिं यथा विंदति तच्छृणु ॥ ४५ ॥ यतः

प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वं भिदंततं ॥ स्वकर्मणात्

मभ्यर्च्य सिद्धिं विंदति मानवः ॥ ४६ ॥

अन्वयः

स्वे स्वे कर्मणि अभिरतः नरः संसिद्धिं लभते स्वकर्म-
निरतः यथा सिद्धिं विंदति तत् शृणु ॥ ४५ ॥ यतः
सकाशात् भूतानां प्रवृत्तिः येन इदं सर्वं ततं तं स्वक-
र्मणा अभ्यर्च्य मानवः सिद्धिं विंदति ॥ ४६ ॥

टीका.

आपआपके कर्मोंमे लगे रहनेसे मनुष्यसिद्धिदाने परमपद

मोक्षको प्राप्त होता है सो जैसे आपके कर्ममें निरत भयाहुवा सिद्धिको प्राप्त होता है सो सुनौ ॥ ४५ ॥ जिसपरमात्मासे इन भूतप्राणीमात्रोंकी प्रवृत्ति घाने उत्पत्ति रक्षा प्रलय है औ जिसकरिके यह सर्व जगत् व्याप्त है उसका आपके स्वकर्मस आराधन करिके पनुष्य परमपद पावता है अर्थात् यह परमात्मा मैं हौं मेरेको पूजिके सिद्धि पावौगे, मेरी आज्ञामे रहौ सो प्रथमही कहा है ॥ अहंसर्वस्यजगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ॥ मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनं जय ॥ मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ॥ मयाऽध्यक्षेण प्रकृतिः सूयते सचराचरं ॥ अहंसर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते इत्यादि ॥ ४६ ॥

मूलम.

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥ स्वभावनियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषं ॥ ४७ ॥

अन्वयः

स्वनुष्ठितात् परधर्मात् स्वधर्मः विगुणः अपि श्रेयान् स्वभावनियतं कर्म कुर्वन् सन् किल्बिषं न अप्नोति ॥ ४७ ॥

टीका.

अतिरमणीय अनुष्ठानयुक्त पराये धर्मते अपना धर्म विगुणभी श्रेष्ठ है जैसे कि, तुमने कहा कि, यह गुरुहिंसादिकयुक्त युद्ध मैं न करौंगा भिक्षा अहिंसा धर्म है सो करौंगा सो उस भिक्षासे तुमको यह युद्धही कल्याणकारक है क्योंकि, जो कर्म जिसका जन्मस्वभावहीसे वर्णाश्रमके उचित है उसको करताकरता पापको नहीं प्राप्त होता है. ॥ ४७ ॥

मूलम.

सहजं कर्म कौंतेय सदोपमपिन त्यजेत् ॥ सर्वा

रमाहिदोषेणधूमेनाग्निरिवावृताः ॥ ४८ ॥

अन्वयः

हेकौंतेय सर्वोपं अग्नि सहजं कर्म न त्यजेत् हि यस्मात्
अग्निः धूमेन इव सर्वारंभाः दोषेण आवृताः ॥ ४८ ॥

टीका.

हेकुंतीपुत्र! दोषकरिकेभी युक्त सहजकर्म याने ब्राह्मणादि-
कौंका स्वभावजनित कर्म न त्यागना क्योंकि, जैसे धुआँसे
अग्नि आच्छादित रहता है याने धुवाँ जहाँ अग्नि वहाँ रहईगा
ऐसेही ज्ञानकर्मादिक सर्व आरंभ दोषोंकरिके युक्त हैं इहाँ त-
ह सिद्ध भया कि, केवल ज्ञानाभ्याससे कर्म करनाही याने
निष्कामकर्म करनाही कल्याणकारक है. ॥ ४८ ॥

मूलम्.

असक्तबुद्धिःसर्वत्रजितात्माविगतस्पृहः ॥ नैष्क
र्म्यसिद्धिंपरमांसंन्यासेनाधिगच्छति ॥ ४९ ॥

अन्वयः

यः सर्वत्र असक्तबुद्धिः जितात्मा विगतस्पृहः सः परमां
नैष्कर्म्यसिद्धिं संन्यासेन अधिगच्छति ॥ ४९ ॥

टीका.

जो सर्वत्र फलादिकौंमे असक्तबुद्धि याने फलइच्छारहित
श्रौ जीता है मन जिसने ऐसा औ कर्तृत्वाविक परमात्माने
युक्तकिये हैं इससे स्पृहारहित है ऐसा पुरुष परमां निष्कामक
र्मसिद्धिं याने परमपद उसपदको संन्यास करिके याने कर्मफल
त्याग करिके औ करनेके योग्य कर्मकरताभया, परमपदको
प्राप्तिगा. ॥ ४९ ॥

मूलम्.

सिद्धिंप्राप्त्यायथाब्रह्मतथाभोतिनिबोधमे ॥

समासेनैव कौंतेय निष्ठाज्ञानस्य यापरा ॥ ५० ॥

अन्वयः

हे कौंतेय सिद्धिप्राप्तः नरः यथा ब्रह्म आप्नोति तथा मे म-
त्तः समासेन निबोध या ज्ञानस्य परा निष्ठा अस्ति ॥ ५० ॥

टीका.

हे कौंतेय अर्जुन! उस सिद्धिको प्राप्त हुआ जैसे ब्रह्मको प्राप्त
होता है तैसे मेरेसे संक्षेपकरिके सुनौ, जो ध्यानात्मक ज्ञानकी
परनिष्ठा याने श्रेष्ठप्राप्तियोग्य है अर्थात् ज्ञानकी समाप्ति है. ५०

मूलम्.

बुद्ध्या विशुद्धया युक्तो धृत्यात्मानं नियम्य च ॥

शब्दादीन् विषयांस्त्यक्त्वा रागद्वेषौ व्युदस्य च

॥ ५१ ॥ विविक्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमा

नसः ॥ ध्यानयोगपरो नित्यं वैराग्यं समुपाश्रि

तः ॥ ५२ ॥ अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं परिग्रहं ॥

विमुच्य निर्ममः शान्तो ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥

अन्वयः

विशुद्धया बुद्ध्या युक्तः च धृत्या आत्मानं नियम्य शब्दा-

दीन् विषयान् त्यक्त्वा च रागद्वेषौ व्युदस्य ॥ ५१ ॥ विवि

क्तसेवी लघ्वाशी यतवाक्कायमानसः नित्यं ध्यानयोगप-

रः वैराग्यं समुपाश्रितः ॥ ५२ ॥ अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रो

धं परिग्रहं विमुच्य निर्ममः शान्तः ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥ ५३ ॥

टीका.

विशेषकरिके जो शुद्ध ऐसी बुद्धिकरिके युक्त याने सात्त्विकी
बुद्धियुक्त औ सात्त्विकी धारणकरिके मनको विषय विमुखक-

रिक्के परमात्मामे नियमित करै, शब्दादिकविषयोंको त्यागिके याने शब्दादि विषय प्रीतिरहित ठहैकेउन शब्दादिकोंके निमित्त जो रागद्वेष हैं उनको छोडिके विविक्तसेवी याने एकांतमे रहै याने वृथावादीपुरुषोंका संग न करै लघ्वाशी युक्तीका आहार करै औ वाणी,शरीर तथा मनको योगयत्नमे राखै नित्यही योगध्यानमे तत्पर रहै, आत्मव्यतिरिक्तविषयोंसे वैराग्यराखै औ अहंकार याने अनात्मादेहमे आत्माभिमान धल याने उस अहंकारवृद्धिका कारण अर्थात् वासना, बल, दर्प याने गर्व तथा काम क्रोध परिग्रह याने आत्मव्यतिरिक्त वस्तुका स्वीकार इन सबनको छोडिके निर्मम याने सर्व परमात्माका है यह सर्व मेरा करिके जो प्रतीत होत है सोमेरा नहीं इसीसे ज्ञात केवल आत्मानुभव सुखमे आनंद ऐसा पुरुष ब्रह्मभूयायकल्पते याने ब्रह्म भावको प्राप्त होता है अर्थात् सर्व बंधनसे छुटाभया यथास्थित आत्मस्वरूपहीका अनुभव करता है. ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

मूलम्.

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मानं शोचति न कांक्षति ॥ स
मः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते परां ॥ ५४ ॥

अन्वयः

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति सर्वेषु भू-
तेषु समः सन् परां मद्भक्तिं लभते ॥ ५४ ॥

टीका.

ब्रह्मभूतः याने स्वरूपको प्राप्त भयाहुवा इसी स्वरूप प्राप्तिसे प्रसन्नमनवाला पुरुष न मेरेव्यतिरिक्त वस्तुको शोचता है न चाहै इसीसे सर्वभूतप्राणीमात्रमे सम याने नकिसीसे वैर न प्रीति ऐसा पुरुष मेरी पर याने उत्कृष्ट भक्तियाने मेरेमे अ-

ति प्रियतारूप भक्तिको प्राप्त होता है अर्थात् मेरेको सर्व जगत् कारण औ आपका प्रियस्वामी जानिके मेरेहीमे अतिप्रेम करता है यही पराभक्ति है. ॥ ५४ ॥

मूलम्.

भक्त्यामामभिजानातियावान्यश्चास्मितत्वतः

॥ततोमांतत्वतोज्ञात्वाविशतेतदनंतरं ॥ ५५ ॥

अन्वयः

अहं यावान् अस्मि च यः अस्मि तं मां भक्त्या तत्वतः
अभिजानाति ततः मां तत्वतः ज्ञात्वा तदनंतरं मां
विशते ॥ ५५ ॥

टीका.

मै विभूति औ गुणौकरिके जेतना हौं स्वरूप तथा स्वभा-
से जो हौं तिस मेरेको उस भक्तिरूप साधनसे तत्वकरिके
जानता है, तिसपीछे मेरेको तत्वसे जानिके फिर मेरेको
प्राप्त होताहै. ॥ ५५ ॥

मूलम्.

सर्वकर्माण्यपिसदाकुर्वाणोमह्यपाश्रयः ॥ म

त्प्रसादादवाप्नोतिशाश्वतंपदमव्ययं ॥ ५६ ॥

अन्वयः

मह्यपाश्रयः सर्वकर्माणि अपि सदा कुर्वाणः सन् म-
त्प्रसादानु शाश्वतं अव्ययंपदं अवाप्नोति. ॥ ५६ ॥

टीका.

मह्यपाश्रयः याने मेराही आश्रयः है जिसको सो सर्वकर्म
याने नित्यनैमित्तिक लौकिक वैदिकभी सर्वकालमे करता क-
रता मेरी रूपासे सनातन औ अविनाशीपद याने मेरेको
प्राप्त होयगा अर्थात् यह मेरे शरणका प्रभाव है. ॥ ५६ ॥

मूलम्.

चेतसासर्वकर्माणिमयिसंन्यस्यमत्परः ॥ बुद्धि
योगमुपाश्रित्यमच्चित्तःसततंभव ॥ ५७ ॥

अन्वयः

मत्परः सन् चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य बुद्धियो-
गं उपाश्रित्य सततं मच्चित्तः भव ॥ ५७ ॥

टीका.

मत्परः याने महीं हौं पर परमेश्वर जिसका ऐसा ठहैके चित्त-
से सर्व लौकिक वैदिक, कर्म मेरे अर्पणकरिके बुद्धियोग याने
व्यवसायात्मिका बुद्धिका आश्रय करिके अर्थात् मेरेही प्राप्ति-
की चाहना करिके निरंतर मेरेहीमे चित्त लगावौ. ॥ ५७ ॥

मूलम्.

मच्चित्तःसर्वदुर्गाणिमत्प्रसादात्तरिष्यसि ॥ अथ
चेत्वमहंकारान्नश्रोष्यसिविनक्ष्यसि ॥ ५८ ॥

अन्वयः

मच्चित्तः सन् मत्प्रसादात् सर्व दुर्गाणि तरिष्यसि अथ
चेत्त्वं अहंकारात् मे वचः न श्रोष्यसि तर्हि नक्ष्यसि ॥ ५८ ॥

टीका.

मेरेमे चित्तको लगाये भये मेरी कृपासे सब संसारदुर्गको
तरौगे जो कदाचित् तुम अहंकारसे मेरे वाक्य न सुनौगे तो
नष्ट होऊगे. ॥ ५८ ॥

मूलम्

यदहंकारमाश्रित्यनयोत्स्यइतिमन्यसे ॥ मिथ्ये
वव्यवसायस्तेप्रकृतिस्त्वांनियोक्ष्यति ॥ ५९ ॥

अन्वयः

यत् अहंकारं आश्रित्य अहं न योत्स्ये इति मन्यसे तदा
ते व्यवसायः मिथ्या एव त्वां युद्धदौप्रकृतिः नियोक्ष्यति ५९
टीका.

जो अहंकारसे तुम यह कहोगे कि, मैं युद्ध न करूँगा तो
तुझारा यह निश्चय मिथ्या होयगा और प्रकृती जो तुझारा
क्षात्रस्वभाव सो तुमको युद्धमे आपहीयुक्त करौगा याने जब
दूसरोंके शस्त्र तुझारे अंगमे लगैंगे तब तुमसेभी न रहा जा-
यगा, युद्धही करने लगौंगे. ॥ ५९ ॥

मूलम्.

स्वभावजेन कौंतेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ॥ कर्तुं न
च्छसि यन्मोहात् करिष्यस्य वशोऽपि तत् ॥ ६० ॥

अन्वयः

हे कौंतेय यत् युद्धं मोहात् कर्तुं न इच्छसि तत् एव
युद्धं त्वं स्वभावजेन स्वेन कर्मणा निबद्धः सन् ततः
अवशः अपि करिष्यसि ॥ ६० ॥

टीका.

हे कौंतेय जिस युद्धको तुम मोहसे करनेको नहीं इच्छा
करते हो उसही युद्धको तुम आपके क्षत्रियस्वभावके कर्म क-
रिके बंधनमे प्राप्त भये हुये करौंगे, याने जब दूसरे मारने ल-
गैंगे तब आपही स्वभावपरवश व्हेके युद्ध करौंगे. ॥ ६० ॥

मूलम्.

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ॥ भ्रामय
न्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥ ६१ ॥ तमे
वशरणं गच्छ सर्वभवेन भारत ॥ तत्प्रसादात्परां

शांतिस्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतं ॥ ६२ ॥

अन्वयः

हेअर्जुन ईश्वरः मायया यंत्रारूढानि सर्वभूतानि भ्रामयन्सन् सर्वभूतानां हृद्देशे तिष्ठति ॥ ६१ ॥ हेभारत सर्वभावेन तं एव शरणं गच्छ तत्प्रसादात् परां शांतिं च शाश्वतं स्थानं प्राप्स्यसि ॥ ६२ ॥

टीका.

हेअर्जुन! ईश्वर जो परमात्मा सो आपकी मायाकारिके यंत्रारूढानि याने शरीरमे रहेभये सर्वभूतोंको भ्रमावताभया सर्वभूतोंके हृदयमे स्थित है ॥ ६१ ॥ हेभारत! सर्वभावेन याने सर्वे का अंतर्दामी जानिके अथवा सर्वे माता, पिता सुहृदंधु, द्रव्य, विद्या इत्यादिक सर्वे उसीपरमात्माको जानिके उसीकी अर्थात् वह परमात्मा मैं हौं सो तुम मेरी शरण आवौ औ उसी मेरी प्रसन्नतासे परांशांतिं याने सर्वबंधमुक्तिको पावौगे औ शाश्वत याने सनातन स्थान जो मैं उस मेरेको प्राप्त होउगे ॥ ६२ ॥

मूलम.

इतितेजानमारुघ्यातंगुह्याद्गुह्यतरंमया ॥ वि
श्लेषैतदशेषेणयथेच्छसितथाकुरु ॥ ६३ ॥

अन्वयः

मया इति गुह्यात् गुह्यतरं ज्ञानं ते आरुघ्यातं एतत् श्लेषेण विमृश्य यथा इच्छसि तथा कुरु ॥ ६३ ॥

टीका.

हेअर्जुन! मैंने यह गोप्यसेभी गोप्य ज्ञान तुझारेसे कहा इसको अच्छी तरहसे विचारिके फिरि नैसी इच्छा होय तैसा करौ ॥ ६३ ॥

मूलम्.

सर्वगुह्यतमं भूयः शृणु मे परमं वचः ॥ इष्टोऽसि मे दृ
ढमिति ततो वक्ष्यामि ते हितं ॥ ६४ ॥

अन्वयः

सर्वगुह्यतमं मे परमं वचः भूयः शृणु यतः त्वं मे दृढं
इष्टः असि ततः ते इति हितं वक्ष्यामि ॥ ६४ ॥

टीका.

अब श्रीकृष्णभगवान् लोकोंपर परम दयाकरिके इन तीन
श्लोकोंमें सर्वगीताका सार कहते हैं. सर्वमे गुह्यमे गुह्य भाक्ति
योगगर्भित मेरा वाक्य भूयः याने एकवार ॥ इदं तु ते गुह्यतमं प्र
वक्ष्याम्यनसूयवे ॥ ऐसे कहाथा इसवास्ते कहते हैं कि, फिरिभी
सुनौ क्योंकि, तुमभेरेदृढप्रिय याने अतिशय करिके प्रिय हौ
इसवास्ते यह तुम्हारा हित होनेकेवास्ते कहता हौं. ॥ ६४ ॥

मूलम्.

मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मानसकुरु ॥ मामे
वैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ॥ ६५ ॥

अन्वयः

मन्मनाः भव मद्भक्तः भव मद्याजी भव मां नमः कुरु
ततः मा एव एष्यति इति ते सत्यं प्रतिजाने यतः त्वं
मे प्रियः असि ॥ ६५ ॥

टीका.

हे अर्जुन, तुम मेरेहीमें मन लगावो औ मेरीही भक्ति करौ या-
ने मेराही अखंड स्मरण करौ, मद्याजी याने मेराही पूजन क-
रौ, मानसकुरु याने मेरेहीको नमस्कार करौ तिसते मेरेहीको
प्राप्त होउगे, यह मै तुम्हारेसे सत्य प्रतिज्ञाकरता हौं क्योंकि, तुम

मेरे प्रिय हौ इसवास्ते प्रतिज्ञाकरिके तुह्यारा हित करना हौ. ६५

मूलम्.

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥ अहं त्वां
सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥ ६६ ॥

अन्वयः

त्वं सर्वधर्मान्परित्यज्य एकं मां शरणं व्रज अहं: त्वां सर्व-
पापेभ्यः मोक्षयिष्यामि त्वं मा शुचः ॥ ६६ ॥

टीका.

हे अर्जुन! तुम सर्वधर्मोंको त्यागिके धाने कर्मयोग ज्ञानयोग
भक्तियोगरूप परमकल्याणके साधन मेरे आराधनरूप मेरी प्री-
तिकेवास्ते यथाधिकारसे सर्व कर्मकरिके उनका कर्तापन औ
उनमे ममत्व औ फलोंका त्यागरूप त्यागकरिके मेरीहीको क-
र्ता औ उन धर्मोंकरिके आराधनेयोग्य. प्राप्त होनेयोग्य औ
उपायभी जानिके मेरेही एकके शरण आवौ तौ मैं तुह्यारेको
सर्व भक्तिके विरोधी पापोंसे तुमको छोडावौंगा, तुमशुचनकरो
इहां श्रीकृष्णभगवानने सर्वधर्मोंका फलकर्तृत्व औ ममत्वहीका
त्याग कहा है. सर्वधर्मोंका स्वरूपहीका त्याग नहीं कहा है जैसे
कि, प्रथमही जनाया है ॥ निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरत सत्तम ॥
त्यागो हि पुरुषव्याघ्रत्रिविधः परिकीर्तितः ॥ इहांसे आरंभकरिके सं-
गत्यत्क्राफलं चैव सत्यागः सात्त्विको मतः ॥ नहि देहभृताश्चर्मस्य
कुं रुर्माण्यशेषतः ॥ यस्तु कर्मफलत्यागी सत्यागीत्यभिधीयते ॥ यह
अध्यायके आदिहीमे अतिदृढकरिके कहा है स्वरूपसे त्यागमे
औरभी विरोध आता है जैसेकि, धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि गु-
णैः ॥ श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात् ॥ इसवास्ते इहां
फलादिकत्यागहीको त्याग कहा है यही सिद्धांत है. जो कि, स्वरू-

पसे धर्म त्यागनेको अर्थ करते है वै भगवानकी माया करिके मोहित व्हेके वृथा अनर्थही करते हैं. ॥ ६६ ॥

मूलम्.

इदंतेनातपस्कायनाभक्तायकदाचन ॥ नचा
शुश्रूपवेवाच्यंनचमांयोऽभ्यसूयति ॥ ६७ ॥

अन्वयः

इदं शास्त्रं ते त्वया अतपस्काय न वाच्यं च अभक्ता-
य कदाचन न वाच्यं च अशुश्रूपवे न वाच्यं च यः
मां अभ्यसूयति तस्मै न वाच्यं ॥ ६७ ॥

टीका.

यह जो अतिगोप्य गीताशास्त्र है इसको मैने तुमसे कहा,
तुम इसशास्त्रको जिसने तप न किया होय उसकोनकहना औ
मेरा औ मेरे भक्तोंका जो भक्त न होय उसको कोईकालमेभी
न कहना औ जो तपस्वी औ भक्तभी दीखै तौभी जो गुरु याने
इसशास्त्रके उपदेशकरनेवालेका सेवा न करै उसकोभी नकहना
औ जो मेरे रूप गुण औ वैभव सुनिके निंदा करै उसकोभी न
कहना, अर्थात् इसको कोईतरहसेभी उपदेश न करना. ॥ ६७ ॥

मूलम्.

यइदंपरमंगुह्यंमद्भक्तेष्वभिधास्यति ॥ भक्तिंम
यिपरांकृत्वामामेवैष्यत्यसंशयः ॥ ६८ ॥ नच
तस्मान्मनुष्येषुकश्चिन्मेप्रियकृतमः ॥ भवि
तानचमेतस्मादन्यःप्रियतरोभुवि ॥ ६९ ॥

अन्वयः

यः इदं परमं गुह्यं मद्भक्तेषु अभिधास्यति सः मयि परां

भक्तिं कृत्वा मां एव एष्यति इति असंशयः ॥ ६८ ॥
मनुष्येषु तस्मात् अन्यः कश्चित् मे प्रियकृतमः न अभूः
त् न च अस्ति न भविता च भुवि तस्मात् अन्यः कश्चि
त् मे प्रियतरः न अभूत् अस्ति च न भवति ॥ ६९ ॥

टीका.

जो यह परम गोप्य गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमे वर्णन करै-
गा सो मेरेविषे परमभक्तिकरिफे मेरेहीको प्राप्त होयगा इसमे
संशय नहीं ॥ ६८ ॥ औ मनुष्योंमे उसते अधिक कोईभी मेरा
अतिप्रिय करनेवाला नहीं होता भया औ न है न होयगा औ
पृथ्वीमे मेरेभी उसते दूसरा प्यारेसे प्यारा न कोई भया न
है औ न होयगा. ॥ ६९ ॥

मूलम्.

अध्येष्यतेचयद्भ्रमं धर्म्यसंवादमावयोः ॥ ज्ञान
यज्ञेन तेनाहमिष्टः स्यामिति मे मतिः ॥ ७० ॥

अन्वयः

यः च इमं आवयोः धर्म्यं संवादं अध्येष्यते तेन ज्ञान
यज्ञेन अहं इष्टः स्यां इति मे मतिः ॥ ७० ॥

टीका.

गीताशास्त्रव्याख्या करनेवालेका माहात्म्य कहा. अब अ
ध्ययन करनेवालेका कहते हैं. हे अर्जुन! जो कोई इस हमारे
श्री तुम्हारे संवादको पढेगा तिसकरिफे ज्ञानयज्ञसे मै पूजित हो
उँगा याने उसने ज्ञानयज्ञकरिफे मेरा आराधन किया ऐसा
मै मानौगा ऐसा मेरा मत है. ॥ ७० ॥

मूलम्.

श्रद्धावाननसूयश्च गृणुयादपियोनरः ॥ सोपि मु

क्तःशुभाल्लोकान्प्राप्नुयात्पुण्यकर्मणां ॥ ७१ ॥

अन्वयः

यः नरः श्रद्धावान् च अनसूयः सन् शृणुयात् अपि सः
अपि मुक्तः सन् पुण्यकर्मणां शुभान् लोकान् प्राप्नुयात् ॥ ७१ ॥

टीका.

जो मनुष्य श्रद्धासंयुक्त और निंदारहित व्हेके केवल श्रवण-
ही करेगा सोभी संसारबंधसे मुक्त व्हेके जो पुण्यकर्म करनेवा-
ले याने मेरे भक्तोंकेलोकोंको प्राप्त होयगा. ॥ ७२ ॥

मूलम्.

कच्चिदेतच्छ्रुतंपार्थत्वयैकाग्रचेतसा ॥ क

च्चिदज्ञानसंमोहःप्रणष्टस्तेधनंजय ॥ ७२ ॥

अन्वयः

हेपार्थ कच्चित् एतत् एकाग्रचेतसा श्रुतं किं हेधनंजय
कच्चित् ते अज्ञानसंमोहः प्रणष्टः ॥ ७२ ॥

टीका.

भगवान् पूछते है कि, हे पार्थ! जो मैंने कहा सो क्या तुमने ए-
काग्रचित्तकरिके सुनाया, नहीं जो सुना तो हेधनंजय! क्या तुम्हा-
रा अज्ञानसे उत्पन्न भयामोह नष्टभया कि कैसासो कहौ. ॥ ७२ ॥

मूलम्.

अर्जुनउवाच ॥ नष्टोमोहःस्मृतिर्लब्धात्वत्प्रसा

दान्मयाऽच्युत ॥ स्थितोस्मिगतसंदेहःकरिष्ये

वचनंतत्र ॥ ७३ ॥

अन्वयः

अर्जुनः उवाच हेअच्युत त्वत्प्रसादात्. मोहः नष्टः मया

स्मृतिः लब्धा इदानीं गतसंदेहः स्थितः अस्मि अतः
तव वचनं करिष्ये ॥ ७३ ॥

टीका.

अर्जुन कहते हैं कि, हे अच्युत! तुझारी कृपासे मोह नष्ट
भया औ मै स्मृतिको प्राप्त भया, अब संदेहरहित स्थित हौं
इसवास्ते आपका वचन याने स्वधर्मरूप युद्ध करौंगा. ॥ ७३ ॥

मूलम्.

संजयउवाच ॥ इत्यहंवासुदेवस्यपार्थस्यचमहा
त्मनः ॥ संवादमिममश्रौषमद्भुतंरोमहर्षणं ॥ ७४ ॥

अन्वयः

संजयः उवाच अहं वासुदेवस्य च महात्मनः पार्थस्य
इति इमं अद्भुतं रोमहर्षणम् संवादं अश्रौषं ॥ ७४ ॥

टीका.

यह सब सुनिके संजय घृतराष्ट्रको कहते हैं कि, हेमहाराज!
मै वसुदेवके पुत्र कृष्णका औ महात्मा याने प्रसन्न है मन
जिसका ऐसा पृथाके पुत्र अर्जुनका यतना यह अद्भुत रो-
मांचकारक संवाद सुनता भया. ॥ ७४ ॥

मूलम्.

व्यासप्रसादाच्छ्रुतवानेतद्गुह्यमहपरं ॥ योगंधो
गेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतःस्वयं ॥ ७५ ॥

अन्वयः

स्वयं कथयतः साक्षात् योगेश्वरात् कृष्णात् एतत् परं
गुह्यं योगं व्यासप्रसादात् अहं श्रुतवान् अस्मि ॥ ७५ ॥

टीका.

आपही कहि रहे ऐसे साक्षात् योगेश्वर श्रीकृष्णभगवानसे

इसपरमगोप्ययोगको श्रीव्यासजीके अनुग्रहसे सुनता भया ॥ ७५

मूलम्.

राजन्संस्मृत्यसंस्मृत्यसंवादमिममद्भुतं ॥ केश
वार्जुनयोःपुण्यंहृष्यामिचमुहुर्मुहुः ॥ ७६ ॥ तच्च
संस्मृत्यसंस्मृत्यरूपमत्यद्भुतं हरेः ॥ विस्मयो मे
महान् राजन् हृष्यामिच पुनः पुनः ॥ ७७ ॥

अन्वयः

हेराजन् केशवार्जुनयोः इमं अद्भुतं पुण्यं संवादं संस्मृ-
त्य संस्मृत्य मुहुः मुहुः हृष्यामि ॥ ७६ ॥ च हेराजन्
तत् अत्यद्भुतं हरेः रूपं संस्मृत्य संस्मृत्य मे महान् वि-
स्मयः जायते च पुनः हृष्यामि ॥ ७७ ॥

टीका.

हेराजन्! श्रीकृष्ण औ अर्जुनके इस अद्भुत पुण्यदायक
संवादको स्मरण करिकरि के वारंवार हर्षको प्राप्त होता हौं.
॥ ७६ ॥ हेराजन्! वह भगवानका अतिअद्भुतरूप उसको
स्मरण करिकरि के मेरेको बड़ा विस्मय होता है औ वारंवार
हर्षित होता हौं ॥ ७७ ॥ मूलम्.

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ॥ तत्र श्री
विजयो भूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम ॥ ७८ ॥

अन्वयः

यत्र योगेश्वरः कृष्णः यत्र धनुर्धरः पार्थः तत्र श्रीः वि-
जयः भूतिः ध्रुवानीतिः इति मम भूतिः ॥ ७८ ॥

टीका.

जहां योगेश्वर कृष्ण औ जहां धनुषके धरनेवाले अर्जुन हैं त-
हांही अचलसंपत्ति औ अचलविजय अचलऐश्वर्य औ अचल

नीति है. ऐसा मेरेको निश्चय होता है. ॥ ७८ ॥

कान्यकुब्जद्विजोत्तंसोभरद्वाजान्वयाब्धिर्जः ॥ बभूवसुक
लोनाम्नावालाशर्मैतिविश्रुतः ॥ तद्वंशवर्द्धनःप्राज्ञोजातो
गोवर्द्धनाऽभिधः ॥ तापीरामःसुतस्तस्यतस्यासंस्तनुजा
स्त्रयः ॥ सीतारामश्चदत्तश्चमोतीरामइतिक्रमात् ॥ सीता
रामात्मजेनेयंगीतावाक्यार्थबोधिनी ॥ रघुनाप्रथसादेन
मयाव्याख्याकृताजनाः ॥ हरिभक्तिरसास्वादरसिकाश्च
नुमोदत ॥ वसुवन्ह्यं कभूसंख्येविक्रमार्कगताब्दके ॥ मार्ग
शीर्षेदलेकृष्णेह्यष्टम्यांगुरुवासरे ॥ इयंसंपूर्णतांयातागुरो
र्मैऽनुग्रहात्किल ॥ श्रीश्रीनिवासतातार्यमुनेःश्रीरंगवासि
नः ॥ यत्कृतेऽस्याःफलंभूयात्तन्मयापादपद्मयोः ॥ गीता
चार्यस्यकृष्णस्यसीतानाथस्यचार्षितं ॥ इतिश्रीमद्भगव
द्गीता सूपनिषत्सुब्रह्मविद्यायांयोगशास्त्रेश्रीकृष्णार्जुनसं
वादेमोक्षसंन्यासयोगोनामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ इति
श्रीमत्सुकलसीतारामात्मजपंडितरघुनाथप्रसादकृता
यांश्रीमद्भगवद्गीतावाक्यार्थबोधिनीभापाटीकायामष्टा
दशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ ७९ ॥ ॥ ७९ ॥

हरसेटसुतोवापूरख्यातोयंत्रालयाधिपः ॥ रघुनाथ
थश्चवावाख्यस्तत्सुतावितिविश्रुतौ ॥ १ ॥ व्या
ख्येयंरचिताताभ्यांप्रार्थितेनमयाकिल ॥ रघुना
थप्रसादेनताभ्यामेवविमुद्रिता ॥ २ ॥ स्वीयेयं
त्रालयेरम्येमुंबय्यांशीसकाक्षरः ॥ प्राप्तानन्याऽ
धिकाराभ्यांव्याख्याकर्तुःसकाशतः ॥ ३ ॥

समाप्तोयं ग्रंथः